शाक्यमुनि बुद्ध
(एक चीनी चित्रांकन)

चीनी बौद्धधर्म का इतिहास

लेखक

डा० चाउ सिआंग-कुआंग, एम० ए०, पी-एच० डी० (दिल्ली)

अध्यक्ष, चीनी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय

भूतपूर्व प्राध्यापक, इतिहास विभाग, दिल्ली-विश्वविद्यालय,

प्राध्यापक, चीनी इतिहास, इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस ट्रेनिंग स्कूल, भारत-सरकार

चीनी भाषा-प्राध्यापक, डिफेंस स्कूल ऑफ फारेन लैंगुएजेज़, भारत-सरकार

प्रिंसिपल, चीन स्कूल, कलकत्ता

प्रस्तावना-लेखक

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

अनुवादक

आत्मन्

अध्यक्ष, दर्शन-विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कालेज,

(प्रयाग-विश्वविद्यालय), प्रयाग

ग्रन्थ-संख्या २०९

प्रकाशक और विक्रेता

भारती-भंडार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

संवत् २०१३ वि०

मूल्य ७॥)

संशोधित मू० ९)

आमुख

आशा करता हूँ कि यह विनम्र पुस्तक, जो कि अब भारतीय पाठकों के लिए हिन्दी-संस्करण में उपलब्ध है, हमारे दो महान् देशों के मध्य नवीन सांस्कृतिक संबंध का युग स्थापित करेगी। पण्डित नेहरू के शब्दों में—'हम पुनः हों एक प्रकार के नवीन पथिक और उनको पृथक् करनेवाले पर्वतों को पारकर या उड़ान भर कर उनके हर्ष तथा सद्भावना के संदेश को लाकर मित्रता की नवीन कड़ियों को स्थापित करें, जो कि अटल हों।'

पाठक देखेंगे कि डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान-परिषद्, ने प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की कृपा की है। मेरे लिए यह असम्भव है कि मैं यथेष्ट रूप में उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन कर सकूं।

मेरा कर्त्तव्य पूर्ण न होगा यदि मैं प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रो० आत्माराम शाह, जो प्रस्तुत पुस्तक के हिन्दी-अनुवादक हैं, तथा डा० जगदीश गुप्त, जिन्होंने पुस्तक के मुखपृष्ठ पर चित्र प्रस्तुत किया है और लीडर प्रेस के श्री बी० पी० ठाकुर, सर्वश्री वाचस्पति पाठक तथा श्री एन० जी० पटवर्द्धन, जिनके सहयोग से पुस्तक सुन्दर तथा स्वच्छ रूप में छप पाई है; साथ-ही-साथ डा० जी० टूची, अध्यक्ष ओरिएण्टल स्टडीज, रोम-विश्वविद्यालय, आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के प्रो० लाओनेल गिल्स, वाशिंगटन-विश्वविद्यालय के करसुन चांग, जिनकी सम्मतियों का उपयोग किसी-न-किसी रूप में अत्यधिक मूल्यवान रहा है, इन सभी सज्जनों के प्रति अपना आभार प्रकट न करूँ।

१।८ जवाहरलाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद (भारत)
अक्टूबर १०, चीन-प्रजातंत्र
का ४५वां वर्ष

—चाउ सियांग क्वांग

प्रस्तावना

प्रो० चौ श्यांग-कुआंग ने, जो भारत में अनेक वर्षों से रह रहे हैं, इस पुस्तक को लिखकर, जिसका अंग्रेजी-संस्करण १९५५ में प्रकाशित हुआ था, हम भारतीयों को चिर-कृतज्ञ किया है। मुझे प्रो० चौ को कई वर्ष से जानने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, और मैं उनके चीन तथा भारत-संबंधी विषयों एवं चीनी तथा भारतीय विचारधारा के इतिहास के विस्तृत ज्ञान का प्रशंसक हूँ। उन्होंने भारत को लगभग अपना घर ही बना लिया है। वे दिल्ली-विश्वविद्यालय में कई वर्ष तक इतिहास के प्राध्यापक पद पर तथा कतिपय राजकीय एवं अन्य संस्थाओं में अध्यापन-कार्य कर चुके हैं, और आज-कल प्रयाग-विश्वविद्यालय में चीनी भाषा पढ़ा रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में चीन में बौद्धधर्म के इतिहास का विशद सर्वेक्षण किया गया है। इस विषय पर यूरोपीय और भारतीय विद्वानों के कई उत्कृष्ट और प्रामाणिक ग्रंथ निकल चुके हैं, जिनमें स्व० प्रोफेसर फणींद्रनाथ वसु और स्व० डाक्टर प्रबोधचंद्र बागची की पुस्तिकाएं भारत में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। प्रो० वसु ने अपनी पुस्तक में चीन जाने वाले भारतीय विद्वानों का विवरण दिया है, और डा० बागची ने चीन-भारत के संबंधों तथा चीन में बौद्ध-धर्म के प्रसार का विस्तृत सिंहावलोकन किया है। प्रो० चौ ने अपने ग्रंथ में इस संपूर्ण विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया है, और इस विषय पर जितनी भी पुस्तकें मैं जानता हूं, उनमें उनकी कृति सर्वाधिक विस्तारमय है।

प्रो० चौ की पुस्तक के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह प्रधानतया चीनी सामग्री पर ही आधारित है। प्रो० चौ ने हमें बतलाया है कि कैसे उनका जन्म तथा पालन-पोषण एक बौद्ध वातावरण में हुआ। उनसे हमें यह भी ज्ञात होता है कि उनका अपना चे-क्यांग प्रांत बौद्ध-स्मृतियों से भरपूर है और बौद्ध-परंपरा वहाँ अब भी अक्षुण्ण है। भारतीय अथवा चीनी बौद्धधर्म पर विदेशी लेखकों के संपर्क में आने के पूर्व वे तत्संबंधी चीनी साहित्य का पूर्ण अवगाहन कर चुके थे। इस चीनी सामग्री का अध्ययन करने के अतिरिक्त प्रो० चौ ने जिन ग्रंथों को चीनी भाषा में पढ़ा, उनमें से प्रायः सभी के तथा ग्रंथ में वर्णित दार्शनिक आंदोलनों के मूल भारतीय रूपों का भी अनुशीलन करके अपने ज्ञान को समृद्ध किया है।

भारत और चीन दो महान् पड़ोसी राष्ट्र हैं और समस्त मानवता की आधी जनसंख्या उनमें निवास करती है (भारत से हमें अब के विभक्त भारत और पाकिस्तान की दो राजनीतिक सत्ताओं का अर्थ न लेकर अविभक्त भारत की भौगोलिक इकाई का अर्थ ग्रहण करना चाहिए) । भारत और चीन दोनों देशों में एक ऐसी जीवन-शैली और जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण विकसित हुआ, जो संसार में अनुपम है। इन दोनों देशों की सभ्यता कृषि-प्रधान है और परिवार की स्थिरता उनके सामाजिक आदर्शों की आधार-शिला है। इसके अतिरिक्त भारतीयों और चीनियों ने बहुत आरंभ में ही जीवन, जगत् और शाश्वत सत्ता के संबंध में कुछ ऐसे विचार विकसित कर लिए थे, जिनमें बड़ी समानता है। मुख्यतया एक ही मानव-वंश—मंगोल—और दक्षिण तथा मध्य चीन में आस्ट्रिक आधार के मिश्रण से उत्पन्न होने के कारण चीनवासियों में हमें जातिगत एकरूपता दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत भारत अनेक मानव-जातियों और उपजातियोंके मिलन और मिश्रण का स्थल रहा है। भारतीय जाति के निर्मायक घटक विविध मानव जातियों के मनुष्य रहे हैं, जिनकी कम-से-कम चार 'भाषा-संस्कृतियां' थीं, यथा—आस्ट्रिक, मंगोल या चीनी-तिब्बती (अथवा भारतीय-चीनी), द्रविड़ और आर्य (अथवा भारतीय-योरोपीय) । भारत और चीन के रक्त में सम्मिलित आस्ट्रिक और मंगोल उपादान ही उनमें प्रस्फुटित कुछ विशेष कल्पनाओं का कारण हो सकता है। जैसे विश्व-प्रपंच में सक्रिय एक ऐसी महान् आत्मिक शक्ति की कल्पना, जिसका तात्त्विक स्वरूप तो मनुष्य के लिए अगम्य और अगोचर है, किंतु जो अपने को इस जगत् में एक क्रियाशील शक्ति के रूप में विविध प्रकार से व्यक्त किया करती है। इस शक्ति को चीन के दार्शनिकों ने 'ताओ' (Tao) अथवा 'मार्ग' की संज्ञा दी ; और भारतीय तत्त्वज्ञों ने इसे 'ऋत्', 'ब्रह्म', 'परमात्मा' अथवा 'धर्म' आदि नाम दिये। इसके अतिरिक्त जगत् में सक्रिय धनात्मक और ऋणात्मक उपादानों की भी कल्पना की गई (जिन्हें 'पुरुष' और 'प्रकृति' रूप भी कहा गया है), जिनसे चीन में 'यांग' (yang) अथवा 'प्रकाश एवं ताप' और 'यिन' अथवा 'छाया' और 'ठंडक' तथा भारत में 'पुरुष' और 'प्रकृति' (अथवा 'शक्ति') की धारणाओं का विकास हुआ।

किंतु चीन और भारत ने अपने व्यक्तित्व का विकास अपने-अपने ढंग से किया। दोनों देशों ने अपनी संस्कृतियों के आधारिक उपादानों या अंगों को अब से लगभग २५०० वर्षाधिक पूर्व स्थिर कर लिया था, और इसके अनंतर लगभग

२००० वर्ष पूर्व वे एक दूसरे के निकट संपर्क में आए। बौद्धधर्म के माध्यम से (जिसे इस विषय के सर चार्ल्स ईलिअट (Sircharles Eliot) जैसे अधिकारी विद्वान् ने "हिन्दू धर्म के बाहरी प्रचार का रूप" माना है), भारत चीन के और चीन भारत के सम्पर्क में आया। दोनों देशों के मध्य बौद्धधर्म के द्वारा प्रथम ऐतिहासिक संपर्क प्रथम शती ईसवी में स्थापित हुआ, किंतु वे इसके पूर्व ही, लगभग दूसरी शती ई० पू० में एक दूसरे से परिचित हो चुके थे।

चीन ने बौद्धधर्म के माध्यम से भारत से बहुत कुछ प्राप्त किया। चीन ने जो मौलिक बातें भारत से पाईं, उनका वर्णन प्रो० चौ ने अपनी पुस्तक की भूमिका में किया है। हम उन्हीं के कथन को उद्धृत कर रहे हैं :—

"भारतवर्ष से इस प्रकार हमने क्या-क्या प्राप्त किया है ? हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। आध्यात्मिक क्षेत्र में उसने हमें दो महत्त्वपूर्ण बातों की शिक्षा दी है।

"(१) भारत ने हमें पूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धान्त को अपना लेने की शिक्षा दी है ; मनकी उस मौलिक स्वतंत्रता को, जिसके द्वारा वह (मन) अतीत की परम्परा, आदत और किसी युग-विशेष की सम-सामयिक रूढ़ियों की शृंखलाओं को विच्छिन्न करने में समर्थ हो पाता है ; तथा उस आत्मिक स्वतंत्रता को जो मनुष्य को भौतिक सत्ता का दास बना डालने वाली शक्तियों का निराकरण करती है। संक्षेप में, स्वतंत्रता के इस ध्यान में उसका वह निषेधात्मक पक्ष ही निहित नहीं था, जिसके द्वारा हम अपने को बाह्य दासता और अत्याचार से मुक्त करते हैं, वरन् वह पक्ष भी था, जिससे व्यक्ति अपने अहंकार से मुक्ति पाकर मोक्ष, शान्ति और अभय प्राप्त करता है।

"(२) भारत ने हमें पूर्ण प्रेम या करुणा के आदर्श की भी शिक्षा दी है— प्राणिमात्र के प्रति ऐसी निर्मल करुणा की जो ईर्ष्या, द्वेष, अधैर्य, घृणा और स्पर्धा का निराकरण कर देती है और जो मूर्खों, दुष्टों और मूढ़ व्यक्तियों के प्रति गंभीर प्रीति और सहानुभूति के द्वारा अपने को व्यक्त करता है, ऐसे पूर्ण प्रेम की जो भूतमात्र को अविभाज्य मानता है, 'शत्रु और मित्र में समता', 'समस्त प्राणियों से मेरी अभिन्नता' में विश्वास करता है। बौद्ध त्रिपिटकों में यह महान् विचार अंतर्निहित है। उन सात सहस्र ग्रंथों की शिक्षा का सारमर्म एक वाक्य में सूत्रबद्ध किया जा सकता है—'प्रज्ञा द्वारा पूर्ण मुक्ति और करुणा द्वारा पूर्ण प्रेम को प्राप्त करने के लिए सहानुभूति और बुद्धि को विकसित करो'।"

उपर्युक्त उद्धरण के अतिरिक्त प्रो० चौ ने चिंतन और साहित्य, कला और

विज्ञान के तथा भौतिक क्षेत्रों में भारत से चीन को प्राप्त होने वाले उपहारों का भी वर्णन किया है। इस बात को तो प्रायः हम सभी जानते हैं कि बौद्धधर्म और भारतीय चिंतन के माध्यम से प्रसूत चीनी-भारतीय संपर्कों के सुदीर्घ इतिहास में चीन अधिकांशतः आदान ग्रहण करने वाला शिष्य और भारत प्रदान करने वाला गुरु रहा है ; अतएव प्रो० चौ की पुस्तक में विषय के इस पक्ष का विस्तृत वर्णन होना स्वाभाविक था। प्रो० चौ ने अपनी पुस्तक में (अपूर्व ऐतिहासिक सत्यप्रियता के साथ, जो चीनी लेखकों की अपनी विशिष्टता है, समकालीन तथा अन्य प्रामाणिक प्रलेखों का उल्लेख करते हुए) इस बात का वर्णन किया है कि भारतीय विद्वानों द्वारा भारतीय बौद्धदर्शन तथा साहित्य जब चीन में पहुंचा, तब चीनवासियों ने किस प्रकार उसे बिल्कुल अपना ही मानकर उसको अंगीकार कर लिया और किस प्रकार स्वयं चीनी विद्वान् भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षा की खोज में हजारों मील लंबी जल और स्थल की खतरनाक यात्राएं करके और अभूतपूर्व जोखिमों को झेलकर भारत आए। प्रथम सदी ईसवी से लेकर वर्तमान पीढ़ी के समय तक, जिसमें चीनी-भारतीय संपर्कों के इतिहास की सर्वाधिक महत्त्व की घटनाओं में से एक, १९२४ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चीन-यात्रा के रूप में घटित हुई, डा० चौ ने भारतीय संपर्क की छाया में चीन की आत्मा की गतिविधि का विस्तृत वर्णन उपस्थित किया है।

इस इतिहास को पढ़कर प्रत्येक भारतीय निश्चय ही गर्व का अनुभव करेगा, किंतु थोड़ा रुककर हमें प्रश्न पर दूसरे पक्ष की दृष्टि से भी सोचना और विचार करना चाहिए। यदि चीन ने भारत से इतना ग्रहण किया है, तो दूसरे पक्ष का लेखा-जोखा कितना है ? चीनी सभ्यता संसार की सर्वोच्च और उन्नततम सभ्यताओं में से एक है। और चीनी जीवन-शैली मनुष्य द्वारा विश्वभर में कहीं भी और कभी भी पल्लवित स्वस्थतम और सुंदरतम जीवन-शैलियों में है। चीनी-भारतीय संपर्क की इन सुदीर्घ शताब्दियों में यदि चीन भारत से इतना अधिक ले सका, तो हम पूछ सकते हैं कि भारत ने चीन से क्या ग्रहण किया है ? यदि ईसा के प्रथम सहस्राब्द में चीनी-भारतीय संपर्क की महान् शताब्दियों में चिंतन और आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में भारत चीन की अपनी मौलिक सर्जना की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों को नहीं ग्रहण कर सका (मैं भौतिक सभ्यता के विषय में नहीं सोच रहा हूं, जो एक निम्नतर-स्तर की वस्तु है और जिसे ऐतिहासिक परिस्थिति के अनुसार कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र से ले सकता है), तो इसे भारत में ग्रहण-क्षमता का नितांत अभाव ही कहा जाएगा (उसे संस्कृति का अभाव

सक कहा जा सकता है); क्योंकि विचार और संस्कृति के क्षेत्र में किसी विदेशी राष्ट्र से लाभ उठा सकना निश्चय ही सभ्य कहलाने योग्य किसी भी राष्ट्र का एक मौलिक लक्षण है। भारत ने यूनान से विशेषतया विज्ञान के क्षेत्र में अनेक बातें ग्रहण कीं, उसी प्रकार उन शताब्दियों में, जिनमें उसकी सर्जना शक्ति विद्यमान थी, अपने महान् एशियाई मित्र और पड़ोसी से भी कुछ आत्मसात् करने की अपेक्षा उससे की जा सकती थी। वस्तुतः, इस संबंध में जो अनुसंधान हो रहा है, उससे प्रकट होता है कि चीनी-भारतीय संपर्क एक इकतरफा यात्रा की भाँति नहीं था। यदि चीन ने भारत से बौद्धधर्म तथा और बहुत-सी बातें लीं, तो अपनी पारी में भारत ने चीन से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। मैंने इस संबंध में अपने एक लेख में अन्यत्र कुछ प्रकाश डाला है।[१]

चीनी विद्वानों की भारतीय यात्राओं के अनंतर प्रकृति के सौंदर्यात्मक रसास्वादन और मूल्यांकन के क्षेत्र में भारतीय भावना चीन से प्रभावित हुई लगती है। लौकिक संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास में चीनी साहित्य के कुछ प्रभाव स्वीकार किए जा सकते हैं। गुप्तकालीन कला में भी कुछ चीनी प्रभाव मिल सकते हैं। यदि चीनियों ने बौद्धधर्म के दायाद-स्वरूप अनेक संस्कृत शब्दों को अंगीकार कर लिया, तो अनेक चीनी शब्द भी भारत में स्वीकृत होकर संस्कृत तथा भारत की अन्य प्राचीन बोलियों में खप गए। उदाहरणार्थ, 'चीन' और 'कीचक' (=एक प्रकार का हलका बाँस, जिससे बाँसुरी बनाई जाती थी), 'सिंदूर', अप्रचलित संस्कृत शब्द 'शय' (कागज) और 'तसर' (=एक प्रकार का रेशम), ऐसे शब्द हैं। अधिक खोज होने मात्र पर छः शब्दों की यह सूची निश्चय ही अधिक लंबी हो सकेगी। बौद्ध और ब्राह्मण तांत्रिक सिद्धांतों और अनुष्ठानों के कुछ विकसित रूपों में परवर्ती चीनी 'ताओवाद' के कुछ प्रकारों का प्रभाव संभव प्रतीत होता है। ऐसा मत स्वर्गवासी डा० प्रबोधचन्द्र बागची का भी था, जिन्होंने इस विषय पर खोज का कार्य आरंभ किया था। इस संबंध में "महाचीनाचार क्रम" जैसे संस्कृत के शाक्त तांत्रिक ग्रंथ से भारत में कुछ प्रमाण मिलता है, जिसमें यह वर्णन है कि ऋषि वसिष्ठ किस प्रकार

---

१ देखिये S. K. Chatterji कृत तथा 'मित्र एवं घोष, १०, श्यामाचरण दे स्ट्रीट, कलकत्ता' द्वारा १९४४ में प्रकाशित The National Flag : a collection of Cultural and Historical Papers, पृष्ठ १३–२५,—India and China.

महाचीन या चीन राष्ट्र गए, वहाँ बुद्ध को स्त्रियों से घिरा हुआ पाया और किस प्रकार उन्होंने उनसे वाममार्गी संप्रदायों का कुछ अनुष्ठान सीखा। चीनी संस्कृति और मनीषा के प्रति भारतीयों की प्रबल अभिरुचि का प्रामाण्य प्राचीन भारत में पाकर हमें कृतज्ञता का अनुभव होता है। यह स्वीकार किया जाता है कि लगभग ५२० ई० में चीन के भारत-यात्री सांग युन (Song Yun) ने (उत्तरी-पश्चिमी सीमांत समिति में स्थित उद्यान राज्य में) लाओ-त्जे कृत उपनिषद् 'ताओ तेह किंग' ग्रंथ पर प्रवचन दिया था, जो चीनी रहस्यवाद और दर्शन-शास्त्र की एक उत्कृष्ट रचना है और प्राचीन उपनिषदों के नितांत समकक्ष है। ७ वीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में प्राग्ज्योतिष (वर्तमान असम) के राजा भास्कर-वर्मन ने लाओ-त्ज़े के इस ग्रंथ का संस्कृत अनुवाद करवाने की उत्कंठा प्रकट की थी और वस्तुतः उसका संस्कृत भाषांतर चीन में तैयार भी किया गया था, क्योंकि चीनी ऐतिहासिक संग्रहों में हमें उसका उल्लेख मिलता है।

भारत में हम अपने इतिहास के प्रति कभी सजग नहीं रहे हैं, किन्तु चीन वालों में इतिहास के प्रति एक स्थायी और तीव्र जागरूकता सदैव रही है। परिणामतः जहां हम अपने इतिहास के प्रामाणिक लेखों के प्रति उपेक्षाशील रहे हैं और उनमें कभी रुचि प्रदर्शित नहीं करते, न उनको संरक्षित रखने का प्रयास करते हैं, चीन में इसके ठीक विपरीत होता रहा है और सभी राष्ट्रीय प्रामाणिक ग्रंथादि की रक्षा अत्यंत सावधानी से की गई है। इस सब से यही सिद्ध होता है कि भारत ने चीन से भी बहुत कुछ ऋण में लिया है और यह दो महान् राष्ट्र इतने पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए एक दूसरे से हाथ मिला सकते हैं। भारत ने चीन से क्या-क्या लिया है, इस विषय पर किसी दिन एक पुस्तक की रचना अवश्य संभव हो सकेगी, और तभी हम चीनी एवं संसारभर के विद्वानों के ऋण से, जिन्होंने चीन पर भारतीय प्रभाव के इतिहास का विशद वर्णन किया है, उऋण होने की स्थिति में हो सकेंगे।

प्रो० ची की पुस्तक लघु आकार में बौद्ध साहित्य के प्रसार से संबद्ध आवश्यक सामग्री प्रदान करती है। यह साहित्य अधिकांश में एक प्रकार की संकर संस्कृत भाषा में लिखा गया था, जिसे बौद्ध-संस्कृत नाम दिया गया है। चीन ने भारत से जो कुछ ग्रहण किया, उसका परिवर्धन भी किया और चीनी महायान के विकास के रूप में, जिसे भारत से जाने वाले आचार्यों और ग्रंथों से सतत बल मिलता रहा, उसने मानव-चिंतन को महान् योग प्रदान किया है। चीन से चलकर महायान एक ओर कोरिया और जापान, तथा दूसरी ओर वियतनाम

जा पहुंचा। आधुनिक युग में वह जगत् के पीछे रहने वाले परमतत्त्व की खोज करने और उसे अपने जीवन में सचेष्ट रखने के संबंध में मानवीय प्रयास को व्यक्त करने वाली एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सुसंगत विचारधारा है। प्रो० चौ ने ताई-ह्ज़ू और ऊ-यांग आदि विद्वानों द्वारा बौद्धधर्म के समकालीन पुनर्जागरण का वर्णन करके चीन में बौद्ध विचारधारा की जीवंत अविच्छिन्नता की पूर्ण कथा हम से कही है।

प्रो० चौ की पुस्तक गंभीर विद्वानों के लिए है और उसमें वर्णित कथानक भारत के प्रत्येक गंभीर पाठक के मन पर प्रेरणात्मक प्रभाव डालेगा। पहले इस पुस्तक को अंग्रेजी में—और अब उसका हिंदी-अनुवाद प्रकाशित करके उन्होंने भारतीयों की अभूतपूर्व सेवा की है। अंग्रेजी संस्करण मुद्रण संबंधी उन अशुद्धियों और उपेक्षा-जन्य उन त्रुटियों से रहित, जिन्होंने उसे कुरूप बना डाला है, कहीं अधिक आकर्षक रूप में प्रस्तुत किए जाने की पात्रता रखता था ; किंतु पुस्तक की विषय-वस्तु का महत्त्व उसके वाह्य रूप की कमियों की आवश्यकता से अधिक क्षति-पूर्ति कर देता है। हिंदी-संस्करण जो महत्तम राष्ट्रों के मध्य १००० वर्षों से भी अधिक समय तक अनवरत रूप से चलने वाले सांस्कृतिक संबंधों के महान् विषय की ओर हिंदी-भाषी पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर के अपने उद्देश्य में सफल होगा; और मैं आशा करता हूँ कि वह हमारे दोनों देशों के मध्य मैत्री के सूत्रों को पुष्ट करने में सहायक सिद्ध होगा।

कलकत्ता
२० सितम्बर १९२६
(बुद्ध-जयंती वर्ष)

—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

विषय-सूची

भूमिका

चीनी संस्कृति पर बौद्धधर्म का सामान्य प्रभाव

आज से कोई बीस वर्ष पूर्व एक चाँदनी रात में मेरी माँ ने घर के उद्यान में बैठकर मुझे कई बौद्ध कहानियाँ सुनाई थीं। पश्चिमी स्वर्ग के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए माँ ने बताया कि वहाँ की प्रत्येक वस्तु सोने-चाँदी की उत्कृष्ट कारीगरी से अलंकृत और अमूल्य रत्नों से जड़ी हुई है। वहाँ सुंदर वीथियों से घिरी स्वर्णिम सिकता में स्थित पवित्र जल के सरोवर कमल के बड़े-बड़े पुष्पों से आच्छादित रहते हैं। वह लोक हर प्रकार से परिपूर्ण और सुंदर है। वहाँ हर समय स्वर्गीय संगीत होता रहता है। दिन में तीन बार पुष्प-वृष्टि होती है। जो सौभाग्यशाली नर वहाँ जन्म पाते हैं, वे परलोक पहुँचकर वहाँ निवास करने वाले असंख्य बुद्धों के सम्मान में अपने वस्त्र लहराने और फूल बरसाने में समर्थ होते हैं। अंत में माँ ने बताया था कि जिसे हम लोग पश्चिमी स्वर्ग कहते हैं, वह आज का भारतवर्ष ही है। इन बातों का प्रभाव बचपन में मुझ पर बहुत पड़ा।

मिडिल स्कूल तक की शिक्षा समाप्त करने के बाद मैं विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ और वहाँ मैंने पुरातन चीनी उत्कृष्ट साहित्य और बौद्धधर्म का अध्ययन किया। विश्वविद्यालय में चार वर्ष व्यतीत करने के उपरांत मुझे यह स्पष्ट लगने लगा कि संसार भर में चीन और भारत ही केवल ऐसे दो प्राचीन देश हैं, जिनकी जीवंत सभ्यता एवं संस्कृति हमारी श्रद्धा की पात्र हो सकती है। इन दोनों देशों में अनेक शताब्दियों तक घनिष्ट संपर्क रहा है, लेकिन पिछले दो हज़ार वर्षों में भारतवर्ष ने चीन की किसी एक वस्तु पर भी लोलुप दृष्टि नहीं डाली, वरन् उसने हमें महामैत्री और स्वतंत्रता की साधना का आदर्श ही दिया है। उस महान् संदेश के साथ उसके साहित्य, कला और शिक्षण की संपदा भी हमारे देश में आई है। उसने संगीत, चित्रशिल्प, नाटक और काव्य के क्षेत्रों में हमें सदा प्रेरणा दी है। उसके धर्म-प्रचारक अपने साथ ज्योतिष, आयुर्वेद और शिक्षण-पद्धति के अमूल्य उपहार भी लाए ; किंतु उन्होंने इन तथा अन्य उपहारों के प्रदान में कभी संकोच या कृपणता नहीं प्रदर्शित की। बौद्धधर्म पर

आवृत गंभीर मैत्री और प्रेम की भावनाओं के साथ ही उन्होंने हमको अपने सारे वरदान दिए।

हमारे देश ने भारत से क्या-क्या प्राप्त किया है? हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। आध्यात्मिक क्षेत्र में उसने हमें दो अत्यंत महत्वपूर्ण शिक्षाएं दी है :—

(१) भारत की पहली शिक्षा है—पूर्णस्वातंत्र्य का सिद्धांत अंगीकार कर लेने की। यह मन की वह मौलिक स्वतंत्रता है, जिस के द्वारा व्यक्ति अतीत की परंपराओं, युग विशेष की सामयिक रूढ़ियों तथा अपने स्वभावजन्य संस्कारों की लौह-शृंखलाओं को विच्छिन्न कर सकता है। यही वह आत्मिक स्वतंत्रता है, जो मनुष्य को दास बना डालने वाली भौतिक शक्तियों का उच्छेद कर डालती है। इस स्वतंत्रता में उसका वह निषेधात्मक पक्ष ही सम्मिलित नहीं था, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य बहिरंग दासता और अत्याचार से अपने को मुक्त करने की चेष्टा करता है, वरन् वह पक्ष भी था, जिसके द्वारा वह स्वयं अपने को अहंता के पाशों से मुक्त करके मोक्ष, शांति और अभय प्राप्त करता है।

(२) भारत ने हमें दूसरी शिक्षा दी है—प्रेम की : प्राणिमात्र के प्रति ऐसे विशुद्ध प्रेम की, जो ईर्ष्या, द्वेष, असहिष्णुता और स्वार्थ से शून्य होता है, जो अपने को मूर्ख, दुष्ट, और दीन जनों के प्रति अविकल्प करुणा एवं सहानुभूति में व्यक्त करता है, जो समस्त प्राणियों की अनन्यता, 'आत्म और विश्व में समता', 'मेरी तथा अन्य सब वस्तुओं की एकता' में विश्वास करता है। भिक्षुकों में इसी वरदान की उपलब्धि होती है। उन सात सहस्र ग्रन्थों के उपदेश का सारांश एक वाक्य में केवल इतना है—'प्रज्ञा द्वारा पूर्ण मोक्ष और करुणा द्वारा पूर्ण प्रेम की सिद्धि प्राप्त करने के लिए बुद्धि और सहानुभूति का विकास करो।'

सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत ने हमारी अपूर्व सहायता की है। कोई दो हजार वर्ष पूर्व चीन और भारत के बीच संपर्क की स्थापना बौद्धधर्म के माध्यम से हुई थी; इसलिए चीन की संस्कृति पर भारत का प्रभाव इस माध्यम से पड़ना स्वाभाविक था। बौद्ध धर्मग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में हो जाने से हमको नए विचार और नए शास्त्र तथा हमारे साहित्य के लिए नई सामग्री प्राप्त हुई।

शब्दावली में समृद्धि

हान और तांग वंशों के राज्यकाल के मध्य लगभग ८०० वर्षों में चीन के बौद्ध विद्वानों ने ३५,००० से अधिक नए शब्दों और शब्द-संयोगों का निर्माण

किया। इस कार्य के लिए उन्होंने दो पद्धतियाँ अपनाईं। पहली विधि से दो अमिश्र चीनी शब्दों को संयुक्त करके नूतन अर्थ देने वाले शब्द बना लिये जाते थे, जैसे चिन-जु। 'चिन' का अर्थ है सत्तावन और 'जु' का अर्थ है संभाव्य। दोनों के संयोग से निर्मित शब्द चिन-जु का अर्थ हुआ भूत-तथता। महायान संप्रदाय में यह शब्द तात्त्विक महत्त्व रखता है और उसका अर्थ है, वह परम तत्त्व, जो इस गोचर जगत् का आदिकारण तथा लक्षण है। दूसरा उदाहरण है चुंग-सेन। चुंग का अर्थ है सर्व या बहु, सेन का अर्थ है उत्पन्न ; इन के संयोग से निर्मित शब्द चुंग-सेन का अर्थ हुआ सत्त्व, अथवा समस्त प्राणी। तीसरा उदाहरण है यिंग-युआन ; जिस में पहले शब्द का अर्थ प्रथम-कारण और दूसरे का द्वितीय-कारण है ; किंतु दोनों के संयोगज शब्द का अर्थ हेतु-प्रत्यय है।

दूसरी विधि में मूल संस्कृत शब्द को उसके उच्चारण के सहित अपना लिया जाता था। ऐसे शब्दों का एक उदाहरण है नि-पान, जो संस्कृत के निर्वाण शब्द का चीनी उच्चारण है। तत्कालीन बौद्ध अनुवादकर्त्ता शब्दावली का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखते थे कि शब्द स्पष्ट और अर्थ को यथासंभव व्यक्त करनेवाले हों।

चीनी लेखकों के क्षितिज का विस्तार

भारत के कल्पना-प्रचुर साहित्य ने गूढ़कल्पना-शून्य चीनी साहित्य के पंख मुक्त कर दिए। भारतीय लेखकों के पास सामग्री लेने के लिए रामायण और महाभारत महाकाव्यों के रूप में, जो संसार के समृद्धतम काव्य हैं, एक अक्षय निधि थी। बौद्ध महाकवि अश्वघोष के महाकाव्य का नाम बुद्धचरित-काव्य-सूत्र है। धर्मरक्ष प्रणीत उसके चीनी अनुवाद ने, चीनी बौद्धधर्म को ही नहीं, चीनी साहित्य को भी विशद रूप से प्रभावित किया। जैसा स्वर्गीय प्रोफेसर लिआंग चि-चाओ ने कहा है—'मो लांग की एक नायिका', और 'दक्षिणपूर्व की ओर उड़ता हुआ मयूर' जैसे हमारे प्रबंध-काव्यों की रचना बौद्ध-साहित्य की शैली में हुई हैं। तांग, सुंग, युआन और मिंग राज्यकालों के उपन्यास और नाटक बौद्धधर्म द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए।

तांग राज्यकाल में रचित 'एक तकिये का अभिलेख' नामक ग्रन्थ एक उत्तम उदाहरण है। यह ताओ मतावलंबी लू नामक व्यक्ति की कथा है। वह एक बार किसी सराय में ठहरा था। वहाँ एक विद्वान् से उसकी बातचीत हुई, जिसने अपनी दीन दशा पर दुःख प्रकट किया। अंत में लू ने अपने साथी को

एक तकिया देकर उससे सो जाने को कहा। वह दुखी विद्वान् तुरंत ही सो गया और जीवन-पर्यंत सुख-संपत्ति का स्वप्न देखता रहा। जगने पर उसने अनुभव किया कि जो-जो घटित हुआ था, वह सब मरीचिका थी।

सुंगकाल में लिखित लोकप्रिय उपन्यास 'स्वर्णिम बोतल का आलूचा' में सी-मेन-चिंग के युवा पुत्र की कथा है, जिसको पो-चेन नामक एक बौद्ध भिक्षु ने बुद्ध के आर्य-धर्म में दीक्षित किया था। युवक ने अपना गोत्रनाम त्सुंगाओं को त्याग कर अपना नया नाम मिंग-नु रख लिया और श्रमण होकर भिक्षु का अनुगामी बन गया।

आधुनिक चीन के एक प्रसिद्ध लेखक श्री चेंग चिन-तु, नाटक को तीन भागों में विभाजित करते हैं—(१) मध्य वस्तु, (२) सूक्ष्म विवरण और (३) स्थानीय रूपक। नाटकीय नृत्य और गायन की उत्पत्ति तो प्राचीन काल में ही हो चुकी थी; किन्तु दोनों का संयुक्त प्रयोग वाई और चिन राज्यकालों के उपरान्त तक नहीं हुआ था। जिस आरंभिकतम गीतिनाट्य का पता अभी तक चला है, उसका नाम है—पु-टौ (पच्चड़)। आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि गीतिनाट्य भारत से आया था। उत्तरी और दक्षिणी चीन के राजवंशों की समाप्ति तक कई वाद्ययंत्र भारतवर्ष से मध्य एशिया हो कर चीन में प्रचलित हुए। सुई वंश के सम्राट् यांग ने समस्त वाद्ययंत्रों को एकत्र कर के उनको नौ वर्गों में बाँटा। उनमें से कुछ भारत और खुतन के भी थे।

उन दिनों का लोकप्रिय वाद्ययंत्र कोन-हो था। यह तंतु युक्त यंत्र हान राज्यकाल में भारत से आया था। हान और तांग राज्यकाल में प्रचलित होने वाले एक महत्त्वपूर्ण वाद्ययंत्र का नाम पि-पा था, जो मिस्र, अरब और भारत की ओर से आया हुआ एक प्रकार का गिटार था। इन दृष्टांतों से यही प्रमाणित होता है कि भारत ने चीन के साहित्य और संगीत दोनों पर गंभीर प्रभाव डाला। वज्र-शिखर नाटक, 'एक तितली का स्वप्न', 'दक्षिणी नारियों का अभिनय,' 'प्रत्यावर्तन पथ पर एक आत्मा' आदि अनेक चीनी नाटकों के कथानक बौद्ध थे। चीनी निबंध-रचना की सान-वेन नामक एक शैली, जिसका अर्थ लघु-गद्य होता है, तुंग-हुआन गुफाओं से प्राप्त पुरातन साहित्य-संग्रह में मिली है। चीनी साहित्य में इस शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान था। अधुनातन चीनी लेखक श्री लो-चेन-यु इसको बौद्धगीति मानते हैं। 'पठनीय गद्य' और बौद्ध गीति में वस्तुतः कई अंतर हैं। बौद्धगीतियाँ संस्कृत से अनूदित धर्मगीत हैं, जो तांग-काल में लोक-प्रिय थीं। 'पठनीय गद्य' में, विमलकीर्ति के गद्य के समान, पठन और

गायन दोनों के लिए दो अंग होते थे। 'पठनीय गद्य' की शैली में रचित एक दूसरा लोकप्रिय ग्रन्थ 'अपनी माता को नरक से बचाने के लिए महामौद्‌गल्यायन का प्रयत्न' है, जिसमें इस बात का वर्णन है कि नरक से अपनी माता की रक्षा करने के लिए महामौद्‌गल्यायन ने मानवता को बुद्ध के विश्वप्रेम के पुनीत आदर्श से अनुप्राणित कर दिया।

चीन की साहित्यिक शैलियों का रूपांतर

पुरातन चीन के लिखित साहित्य में विन्यास पर बल नहीं दिया जाता था, इस कारण उसमें प्रतिपादन की स्पष्टता का अभाव मिलता है। बौद्ध-वाङ्मय के उत्कृष्ट ग्रन्थों के आगमन के अनंतर चीन में जो साहित्य लिखा गया, वह अधिक सुसंघटित था, और इस कारण अधिक बोधगम्य और तर्कनायुक्त था। भारतीय पद्धति शास्त्र तथा हेतुविद्या ने चीन में लेखन-कला के एक नए युग का प्रवर्तन किया। बौद्ध धर्मग्रन्थों का अनुवाद गद्य और पद्य दोनों में किया गया, जिससे चीनी साहित्य को एक नए क्षेत्र की प्राप्ति हुई। बौद्ध-साहित्य का अनुवाद सरल भाषा में किया जाता था, क्योंकि इस संबंध में प्रधान लक्ष्य ललित साहित्य की रचना न हो कर, मूल के अर्थ को असंदिग्ध रूप से स्पष्ट करना था। डा० हु-शिह ने अपनी पुस्तक 'चीन की जनपदीय भाषाओं के साहित्य क इतिहास' में लिखा है कि 'मंत्री जेन-पान की कथा' की रचना उस समय की एक क्रांतिकारी जनपदीय भाषा शैली में हुई। वह यह भी मानते हैं कि धर्मरक्ष और कुमारजीव का गद्य तत्कालीन पातोइस बोली में लिखा गया है। धर्मरक्ष और पाओ-युन ने अनेक बौद्ध सूत्रों का अनुवाद उस समय प्रचलित पहेली-शैली में किया, जिसमें लोकप्रिय जनगीतों के ध्वनि-तुकों का प्रयोग किया जाता था। उन्हीं दिनों में अनेक कवियों ने बौद्धधर्म से संबंधित विषयों पर कविताएँ लिखीं। उदाहरण के लिए हम तांग कालीन कवि ली-पो का नाम ले सकते हैं, जिसको उस के मित्रों ने 'निर्वासित देवता' का नाम दे रक्खा था, क्योंकि अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किसी दूसरे लोक से अवतीर्ण हुआ प्रतीत होता था, और साधारण मनुष्यों की पहुँच के बाहर के लोकों में प्रवेश करने की शक्ति रखता था। उसकी कुछ ध्यान संबंधी पंक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं :—

मैं इन हरे पहाड़ों में क्यों रहता हूँ ?
मैं हँसता हूँ, लेकिन उत्तर नहीं देता, मेरी आत्मा शांत है ;
वह किसी दूसरी धरती और दूसरे स्वर्ग में निवास करती है ,

जिन पर किसी अन्य मनुष्य का अधिकार नहीं है।
आड़ू के पेड़ फूले हुए हैं, और जल बह रहा है।

तदुपरांत ध्यान संप्रदाय और तथ्य-कलपगुनस वादियों द्वारा वह प्रयुक्त सूक्ति-शैली का विकास हुआ। यह भी बौद्ध साहित्यिक शैली से संबद्ध थी।

चीनी वर्णमाला का जन्म

चीनी लिपि बहुसंख्यक चिह्नों का समूह है, जो अपने विकास की प्रथम अवस्था में प्रतिक्रियात्मक थे। लिपि का यह रूप साहित्य की उन्नति के लिए एक रोड़ा जैसा था। अतः देश में बौद्धधर्म और संस्कृत का प्रवेश हो जाने पर, हमारी लिपि विषयक समस्या को सुलझाने के लिए भारतीय विद्वानों ने एक नई वर्णमाला तैयार करने का प्रयास किया। इस प्रकार की प्रथम नवनिर्मित लिपि में संभवतः १४ चिह्न थे। इसका नाम 'हौ यू हु शु' अथवा 'पश्चिम की विदेशी लिपि' और 'पा ला मान शु' अथवा 'ब्राह्मणी लिपि' भी था। तदुपरांत भारत से चीन आए हुए बौद्ध विद्वानों ने संस्कृत वर्णमाला के आदर्श पर ३६ अक्षरों की वर्णमाला बनाने में सहायता दी, और उनको उत्पन्न करने वाले ध्वनि अंगों का भी निरूपण किया। वर्णविन्यास में सहायता पहुँचाने के लिए उन्होंने कतिपय तालिकाएँ भी बना दीं। इस वर्णमाला का निर्माता शेन-कुंग नामक एक बौद्ध भिक्षु माना जाता है, और यु-पिएन अथवा 'भाषा विवेक' नामक कोष पहला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ था, जिसमें उसका प्रयोग किया गया। उसी समय देश में शेन-यो नामक एक प्रसिद्ध इतिहासकार भी थी, जिसको चार ध्वनियों का आविष्कार करने का श्रेय दिया जाता है। 'लिआंग वंश की पुस्तक' में दी हुई उसकी जीवनी में लिखा है—'जिस तथ्य को मनुष्य हजारों वर्ष तक नहीं समझ सका था, और जिस अद्भुत सत्य का ज्ञान केवल उस (शेन-यो) ने अपने हृदय की शांति में प्राप्त किया, उसी रहस्य को प्रकाशित करने के लिए उसने चतुःध्वनियों पर अपना निबंध लिखा।' १९११ ई० में प्रजातंत्र की स्थापना होने पर हमारी राष्ट्रीय सरकार ने देश में भाषा की वर्णमाला का प्रचार आरंभ किया। यद्यपि वह अपूर्ण और असंतोषजनक थी; पर भविष्य के लिए प्रयोग करने के निमित्त उसने हमें मूल्यवान सामग्री अवश्य दे दी।

बौद्धधर्म से अत्यधिक प्रभावित होने वाले कला के क्षेत्र में, भारतीय प्रभाव चीन में मध्य एशिया होकर पहुँचा, जहाँ आरंभिक हान काल में भारतीय सार्थवाहों के साथ हम लोग व्यापार किया करते थे। आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ताओं ने मध्य

एशिया के पुराने व्यापार-मार्ग में सर्वत्र बिखरे हुए भारतीय कला के अवशेषों को प्राप्त किया है। चीन की प्रायः सभी प्रमुख सांस्कृतिक चौकियों, जैसे बामिया, बैक्ट्रिआ, खुतन, मीरान, तुरफ़ान और तुंग-हुआंग में, बौद्ध गुफाओं, मूर्तियों, चित्रों आदि के अवशेष मिले हैं, जो चीन के साथ स्थायी सांस्कृतिक संबंधों की संवर्धना के निमित्त बौद्ध भारत के अपूर्व प्रयास के प्रमाण हैं।

अंततः बौद्धकला स्वयं चीन में भी जा पहुँची। उसमें अपने को वहाँ की राष्ट्रीय कला के ऊपर प्रतिष्ठित कर लेने की यथेष्ट शक्ति थी, और वह उसको शताब्दियों तक प्रभावित करती रही। मेरी धारणा तो यह है कि बौद्ध धर्म ने चीनी कला के विकास को नूतन जीवन प्रदान किया। इस कला ने चीन की पुरातन परंपरा का अनुसरण न करके, भारतीय और तथाकथित भारतीय तत्त्वों का ऐसा समन्वय किया, जो क्रमशः चीनी प्रतिभा के अनुकूल हो गया। चीन की विविध कलाओं के तत्संबंधी उदाहरण मैं नीचे दे रहा हूँ—

बौद्ध-मंदिरों के निर्माण की नई शैली

चीन में बौद्धधर्म पहुँच जाने के उपरांत भारतीय वास्तुकला ने भी उसका अनुगमन किया। तदुपरांत हमारे देश में बौद्धमंदिर, स्तूप, पर्वतीय गुफाएँ आदि अनेक नए प्रकार की इमारतें बनने लगीं। उनमें सब से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मंदिरों का था, क्योंकि उनमें सर्वसाधारण पूजा के लिए, तथा भिक्षुगण ध्यान करने के निमित्त जाया करते थे। हमारी परंपरा के अनुसार मंदिरों का निर्माण व्यक्तियों अथवा विशिष्ट भिक्षुओं द्वारा ही हुआ करता था। हमारे प्राचीन स्थापत्य के विषय में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। उस युग के गौरव को कथा कहने के लिए कुछ खंडहर ही अवशिष्ट हैं। लो-यांग के 'श्वेत-अश्व' मठ के निर्माण में कोशल राज्य के प्रसिद्ध अनाथपिंडाराम की शैली का अनुकरण किया गया। 'नानकिंग स्थित बौद्धमंदिरों के अभिलेख' में उन से संबंधित महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख हमें अवश्य मिलता है; किन्तु अन्य विवरण नहीं मिलते। किंतु 'लो-यांग स्थित मंदिरों के अभिलेख' में तत्संबंधी सामग्री अधिक है। इनमें वाई वंश की एक साम्राज्ञी द्वारा ५१६ ई० में निर्मित 'शाश्वत शांति मठ' के निर्माण के विषय में विस्तृत विवरण दिया हुआ है। यह नौ मंजिलों का एक विशाल स्तूप था, जिसकी ऊँचाई ९० चांग से अधिक (=लगभग ९०० फ़ीट) थी, और मंदिर १०० चांग ऊँचा था। सारी इमारत लकड़ी की थी, और १०,००० वर्गफ़ीट से अधिक भूमि पर बनी थी। यह स्थान राजधानी से लगभग

१०० ली (३० मील) की दूरी पर स्थित था, जहां से उसका स्तूप दिखाई पड़ता था। " शिखर-शीर्ष पर एक स्वर्ण पताका थी। " इस मंदिर का निर्माण भारतीय शैली में किया गया था, और भारतीय प्रभाव के पहले ऐसा कोई भी मंदिर यहां नहीं था। स्व० प्रोफेसर लिआंग चि-चाओ का कथन है कि हम प्रायः यह अनुभव नहीं करते कि ऐसे विशिष्ट प्रकार के स्थापत्य ने हमारे भू-प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य कितना अधिक बढ़ा दिया है। अब हम चीकिआग प्रांत में हानचाउ की पश्चिमी झील की कल्पना उसके दो पैगोडाओं—भव्य लुए-फ़ोंग (वज्र शिखर) और मनोरम पाओ-सु—के बिना नहीं कर सकते। पीकिंग की सबसे प्राचीन इमारत ' स्वर्गीय शान्ति ' मठ के समक्ष स्थित और छठी शती ई० के अंत में निर्मित पैगोडा है। पार्ट-हाइ के सुंग हुआग (पुरी हमग) द्वीप में शिखर पर स्थित श्वेत पैगोडा तथा नीचे बने छोटे बरामदे के सागअगन की सुंदरता देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। ऐसी महान् कलाकृति की सर्जना चीनी और भारतीय स्थापत्य के समन्वय से ही संभव हो सकती थी।[1]

गुफाओं की मूर्तिकला

बौद्धधर्म के आगमन के पूर्व हमारे यहां पत्थर में उत्कीर्णन तो होता था, परंतु त्रिआयामात्मक मूर्तियों का निर्माण कभी नहीं हुआ था। आधुनिक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि चीन में प्रस्तर मूर्तिकला का आरंभ वाई वंश के राज्यकाल में, बौद्धधर्म के प्रति कृपालु सम्राट् वेनचेन के समय से हुआ। तदुपरान्त धर्म के निमित्त बुद्ध की प्रतिमाओं से युक्त बौद्ध गुफाओं के निर्माण की चेष्टा परवर्ती सम्राट् और साम्राज्ञी भी करने लगे। ' प्रमुख पुरोहितों के संस्मरण ' से हमें ज्ञात होता है कि त्सिन कालीन ताइ आन-ताओ, जो सामान्यतः एक साहित्यिक और चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध था, मूर्तिकला में भी प्रवीण था। उसने तथा उसके भाई दोनों ने मिल कर बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा तैयार की, जिसको अपने समय में बड़ी ख्याति मिली। पट् राजवंशों और सुई तथा तांग कालों की प्रसिद्ध मूर्तियों के संबंध में भी अभिलेख प्राप्त हैं। किन्तु उत्तरी और दक्षिणी राजवंशों के मध्य गृह-युद्ध में तथा बौद्धधर्म विरोधी तीन सम्राटों के द्वारा स-संकल्प शिल्प-विध्वंसन के समय में तत्कालीन सभी मूर्तियां नष्ट हो गईं। वाई और त्सिन काल में निर्मित (लो-यांग के निकट) ई-सुए और

---

1 दे० लिआंग चि चाओ की ' कलेक्टेड राइटिंग्स ' (रचना संग्रह)

लुग-मैन होनेन स्थित, पर्वत शिला में काटकर बनाई हुई
बोधिसत्त्व की मूर्ति

बुद्ध-विहार
गुप्त-काल (३८६–५५६ ई०)

लुंग-मेन (नाग-द्वार) की तीन या चार हज़ार उत्कृष्ट गुफा-मूर्तियां अभी तक अवशिष्ट हैं। किंतु हमारी महान् निधि युन-कांग पर्वत पर स्थित छोटी और बड़ी लगभग एक हज़ार मूर्त्तियों का समूह (महासंघ) है। युन-कांग गुफाएँ वाई वंश की प्राचीन राजधानी पिग-चेन से ३० ली (लगभग १० मील) की दूरी पर स्थित थीं। युन-कांग वु-चाउ की चुआंग नदी के तट पर और ई-चुएन ई नदी के तट पर स्थित हैं। भौगोलिक दृष्टि से दोनों समान हैं ; इसलिए वाई काल में वे क्रमशः उत्तरी और दक्षिणी गुफाओं के नाम से प्रसिद्ध थीं। 'वाई-वंश की पुस्तक' के अनुसार तान-याओ नामक एक श्रमण ने राजधानी के पश्चिम वू-चाउ में पाँच गुफाएँ बनवाने की आज्ञा सम्राट् से प्राप्त की थी। उसने पर्वत के पत्थर में उत्कीर्ण दो विशाल बुद्ध प्रतिमाएँ बनवाईं, जिनमें एक ७० फ़ीट और दूसरी ६० फ़ीट ऊँची थी। इस प्रकार हमें पता चलता है कि गुफाओं की मूर्तिकला का समारंभ श्रमण तान-याओ द्वारा हुआ।

वाई-काल की मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि युन-कांग और लुंग-मेन की गुफाएँ हैं। युन-कुआंग के प्रथम अन्वेषक शैवेन्स के शब्दों में ही वहाँ का कला-वर्णन उद्धृत करना अधिक उपयुक्त होगा—

"उत्तरी वाई-काल की गुफाओं की बौद्ध-मूर्तिकला की सूक्ष्मता और सुकुमारता का मूल्यांकन करने के लिए मनुष्याकार मूर्तियों का अध्ययन आवश्यक है। उनकी भावाभिव्यक्ति में हमें एक ऐसी मृदुता और मुद्राओं में ऐसी सौम्यता मिलती है, जो परवर्ती मूर्तियों में फिर उसी सफलता के साथ अभिव्यंजित नहीं की जा सकी। इन प्रतिमाओं में बहुत-सी पद्मासन में एक दूसरे के सम्मुख बैठी हुई हैं। तांग-कालीन उत्कीर्ण प्रतिमाओं में यह आसन नहीं मिलता।"

किंतु उसके बाद अब यह स्वीकार किया जाता है कि युन-कांग और लुंग-मेन की कला में और भी बहुत कुछ था, जिसको शैवेन्स की दृष्टि नहीं पकड़ सकी।

ई-चुएह गुफाओं का निर्माण वाई सम्राट् हिआओ वेन ने उस समय करवाया था, जब उस वंश की राजधानी स्थानांतरित होकर लो-यांग में आ गई थी। ई-चुएह पर्वत के पश्चिम में लुंग-मेन है। उस पर्वत के पूर्व में हिआन पहाड़ियाँ हैं। युन-कांग की गुफाओं की भाँति इन दोनों पहाड़ियों पर भी अनेक बौद्ध गुफाओं का निर्माण हुआ।

युन-कांग गुफाएँ वाई राज्यकाल में पूर्ण हुईं। ई-चुएह (या लुंग-मेन) गुफाओं का निर्माण-काल वाई-वंश से लेकर तांग-वंश तक का समय है। वाई

सम्राट् हिआओमिंग के समय में एक गृह-युद्ध छिड़ जाने के कारण नई गुफाओं के निर्माण की ओर ध्यान कम जाना स्वाभाविक ही था। सांग सम्राट् ताई-त्सांग के समय में वाई-राज्य के ताउ नामक एक सामंत ने ई-न्याग के उत्तर में तीन गुफाएँ खुदवाईं, जो अभी तक वर्तमान हैं। चीन में बौद्ध मूर्तिकला का तीसरा प्रधान केन्द्र तुंग-हुआंग है, जो वहां की गुफाओं में बुद्ध की एक हजार प्रतिमाएं होने के कारण 'सहस्र बुद्ध गुफा' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। चीन के सीमांत, और मध्य एशिया के राजपथों के संधिस्थल पर स्थित होने के कारण, यहां की मूर्तिकला उन सभी पर-भारतीय लक्षणों से प्रभावित हुई, जो ख़ोतान, कूचा और तुरफान की कला में मिलते हैं।

इन गुफाओं का निर्माण-कार्य चौथी शताब्दी ईसवी में आरंभ हुआ था। किन्तु वत्सर अंकित प्राचीनतम गुफाओं का समय वाई-वंश तक जाता है। तुंग-हुआंग की कला के विकास को चार विभिन्न अवस्थाओं में बांटा जा सकता है—(१) वाई-वंश की कला (५ वीं और ६ ठीं शताब्दी ईसवी), (२) पूर्वकालीन तांग-वंश की कला (७ वीं शताब्दी), (३) उत्तरकालीन तांग-वंश की कला (सातवीं शताब्दी के मध्य से दसवीं शताब्दी तक), और (४) पुनः प्रतिष्ठापन तथा परिवर्धन का काल—(११ वीं शताब्दी ईसवी के अन्त तक)।[1]

स्तूप से चीनी मीनार का विकास

चीन में मीनारों का निर्माण बौद्धधर्म के प्रचार के बाद हुआ। भारतवर्ष में स्तूपों का निर्माण बुद्ध अथवा अन्य संतों के पवित्र अवशेषों को रखने के लिए किया जाता था। किंतु चीन में मीनारों का उपयोग केवल संतों के अवशेषों को रखने के लिए ही नहीं, प्रसिद्ध व्यक्तियों के स्मारक के रूप में भी होता था। चीन में पहला मीनार हान-काल में लो-यांग श्वेताश्व मठ में बनाया गया था। सुई-वंश के राज्यकाल तक मीनारों का निर्माण साधारण बात हो गई थी। उदाहरणार्थ, सुई-वंश के सम्राट् वेन-ती ने अपने राज्य के प्रथम वर्ष (६०१ ई०) में तीस चीनी भिक्षुओं को एक राजाज्ञा प्रदान की, और तदनुसार उन भिक्षुओं ने देश के विभिन्न जिलों में ऐसी मीनारों का निर्माण कराया।

चित्रकला

हमारे इतिहास के प्राचीनतम काल के चित्र नष्ट हो गए हैं। अनेक अभिलेखों

---

१ दे० पी० सी० बागची कृत 'इंडिया एंड चाइना' (भारत और चीन)

से हमें केवल इस बात का पता लगता है कि हान-वंश के पहले चित्रकला का अस्तित्व था। लगभग ५२६ ईसा पूर्व में जब कनफ्यूशस लो-यांग गए थे, तब वहाँ उन्होंने चाउ के ड्यूक का एक चित्र देखा था, जिसमें वह अपने शिशु भतीजे चिंग को गोद में लिये हुए था। बौद्धधर्म के चीन में आने के बाद हमारी चित्रकला को नूतन प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों को बौद्धधर्म ने नए भाव दिए। हमारे मंदिरों के भित्तिचित्रों तथा बौद्ध-चित्रों पर अजंता के भित्ति-चित्रों का प्रभाव हो सकता है। हमारे इतिहास के आरंभिक युग के सबसे प्रसिद्ध चित्रकार कुओ-तान-वाई और कुओ-हा-तो हैं। वे अपने बुद्ध के चित्रों के लिए प्रख्यात थे। ध्यान में मग्न अर्धोन्मीलित नेत्र और आंतरिक एकाग्रता से प्रशांत मुखमंडल युक्त बुद्ध का पद्मासनस्थ चित्र आरंभिक अभ्यासियों को ध्यान करने में सहायता पहुँचाता था। स्वर्ग अथवा मेघों में राजसी गति से गमन करती हुई किसी संत की यात्रा का चित्र जन-साधारण के मन को पवित्रता के सौंदर्य और प्रकाश से भर देता था। चीन में बहुत-से कलाकार मठों के शांत और एकांत वातावरण में रहते और वहाँ के मंदिरों की भित्तियों को बुद्ध अथवा अन्य सन्तों के जीवन की घटनाओं तथा पश्चिमी स्वर्ग के चित्रों से अलंकृत किया करते थे।

बौद्ध-चित्रकारों में सब से अधिक प्रसिद्ध वू-ताओ-तूज़े है, जो ईसा की आठवीं शती के पूर्वार्ध में हुआ था। वह बौद्ध था और उसने मठों में बहुत कार्य किया। मंदिरों की दीवारों पर उसने बहुत-से चित्र बनाए। यह पता लगा है कि उसने लगभग ३०० भित्ति-चित्र बनाए थे, किंतु दुर्भाग्यवश वे सब नष्ट हो गए हैं। संभवत: उसके छोटे चित्र भी विनष्ट हो गए, क्योंकि तांग-वंश के उपरांत हमें बहुत ही कम चित्र मिलते हैं। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण अपनी महत्तम पूर्णता को पहुँच गया, क्योंकि चीनी लोग सदा से प्रकृति के प्रेमी रहे हैं और अपने को उसके बहुत निकट अनुभव करते आए हैं। मेरे विचार में बौद्धधर्म ने उनके प्रकृति-प्रेम को और भी दृढ़ किया, क्योंकि स्वयं तथागत का कथन है—'वृक्ष और पादप, शिलाएँ और पत्थर, सभी निर्वाण प्राप्त करेंगे।'

इस प्रकार भारतीय विचार-धारा के प्रभाव से चीनी कला के अधिक उर्वर हो उठने के अनेक उदाहरण हमने प्रस्तुत किए हैं।

बौद्धधर्म का प्रभाव वैज्ञानिक क्षेत्र में भी पड़ा।

गणित, ज्योतिष और पंचांग

ईसा की आठवीं शती के पूर्वार्ध में राष्ट्रीय पंचांग को निश्चित करने के

लिए कुछ भारतीय भिक्षु नियुक्त किए गए। उन में से प्रथम भिक्षु गौतम (?) का उल्लेख मिलता है, जिसकी गणना-पद्धति को 'कुआंग त्से ली' (शुक्लपक्ष पंचांग) का नाम दिया गया। उसका प्रयोग केवल तीन वर्ष हुआ। तदुपरान्त सिद्धार्थ नामक एक अन्य भिक्षु ने एक नया पंचांग बनाकर ७१८ ई० में तांग सम्राट् हुआन-त्सुंग को दिया। यह नवग्रह सिद्धान्त अथवा चिउ चेली नामक पंचांग किसी भारतीय पंचांग का अनुवाद था। इसको अधिक सफलता मिली और उसका प्रयोग चार वर्ष हुआ। इसमें चंद्रमा की गति और ग्रहणों की गणना का वर्णन था। ७२१ ईसवी में यि-हिंग नामक चीनी बौद्ध ने स्पष्टतया भारतीय पद्धति पर आधारित गणना की एक नई प्रणाली निकाली, जिसमें भारतीय ज्योतिष की तरह नवग्रहों को, अर्थात् सूर्य, चंद्र, पंचग्रह और चंद्रमा के आरोह-अवरोह की स्थिति के निर्देशक राहु तथा केतु को मान्यता दी गई थी।

चीन में आयुर्वेद का आगमन

यथा समय भारतवर्ष का आयुर्वेद भी चीन में पहुंचा। इस संबंध में सब से पुराना उल्लेख ५ वी शताब्दी ई० के मध्यकाल का है। इस समय चिन-शेंग नामक एक चीनी बौद्ध सामंत खुतन गया था। उसने हमारे लिए अपनी एक कृति छोड़ी है, जो किसी भारतीय ग्रन्थ-विशेष का अनुवाद तो नहीं प्रतीत होती; किंतु विविध भारतीय मूल ग्रन्थों से संकलित अवश्य है। यह ग्रन्थ चिकित्सा पर है और उसका नाम चे-चान-पिंग-पी-याओ-फा (अथवा रोगोपचार-पद्धति) है।

तांग काल में सम्राटों और राजदरबार के सामंतों ने भारत को एक विशेष राजदूत, तांत्रिक योगियों की खोज में भेजा, जिनके लिए यह प्रसिद्ध था कि वे वृद्धावस्था के कुप्रभावों का उपचार करने के रहस्यों से अवगत होते हैं।

११ वीं शती ई० में रावण-कृत कुमारतंत्र नामक एक भारतीय आयुर्वैदिक ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। यह बाल-रोग-चिकित्सा का ग्रन्थ है। उसी काल में स्त्री-रोगों के चिकित्सा-संबंधी ग्रन्थ काश्यपसंहिता का भी अनुवाद हुआ। वस्तुतः चीनियों के पास स्वयं अपना चिकित्सा-शास्त्र था, किंतु समय-समय पर किसी भी बाहरी स्रोत से उसे समृद्ध करने के लिए वे पूरा प्रयत्न करते रहते थे।[५]

---

१ दे० वही

तांग-काल (६१८–९०७) के बौद्ध गायक और नर्तक।

९ वीं शताब्दी के मध्य बोधिसत्व मंजुश्री के लकड़ी पर खोदे गये चित्र का
एक प्राचीन चीनी मुद्रण।

ठप्पों से छपाई

प्राचीन काल में चीन में विद्या-प्रसार का एकमात्र साधन ग्रन्थों का प्रतिलेखन था। चिंग और हान-काल तक यही स्थिति रही। यद्यपि हमारे यहाँ प्रस्तर-फलकों द्वारा मुद्रण की एक विधि का आविष्कार हो चुका था, किंतु पत्थरों के भारी होने के कारण वह पुस्तकों की छपाई के लिए विशेष उपयोगी नहीं थी। काष्ठ के उत्कीर्ण ठप्पों से छपाई की विधि चीन में भारतवर्ष से सुई-काल में आई। तब से बौद्ध-भिक्षु भूत-प्रेत और रोग से रक्षा करने के लिए कागज़ के छोटे-छोटे यंत्र, जिन पर बुद्ध का चित्र छपा रहता है, जनता को देते रहे हैं। ज्ञान का प्रसार करने के उद्देश्य से पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ अधिक शीघ्र तैयार करने के लिए बौद्ध-भिक्षुओं ने मुद्रण की इस विधि का उपयोग किया, और अपने मठों के एकांत अवकाश में उस पर विविध प्रयोग करते रहे। इस पद्धति से पहली पुस्तक ८६८ ई० में मुद्रित हुई, जो बौद्धधर्म की पवित्र पुस्तक 'वज्रच्छेदिका प्रज्ञा पारमिता सूत्र' थी। इसकी एक प्रति अभी कुछ दिन पहले चीनी तुर्किस्तान के एक मंदिर की दीवारों पर चिपकाई हुई मिली है। यह संसार की सबसे पहली मुद्रित पुस्तक है। तांग और सुंग-कालों में मुद्रित अनेक ग्रंथ तुंग-हुआंग गुफाओं में प्राप्त हुए हैं। आगे चलकर काष्ठ-फलकों से छपाई की यह विधि यूरोप पहुँची और वहाँ सुंदर ताम्र-मुद्रण का विकास उसी से हुआ। आधुनिक काष्ठ चित्र-कला का आधार मुद्रण के यह ठप्पे ही हैं।

नवीन शिक्षण-पद्धति

चीन की पुरानी शिक्षण-पद्धति के विषय में हमें कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं है। इतना ही निश्चित है कि कनफ़्यूशस और मेनसिअस बहुसंख्यक श्रोताओं के समूहों को प्रवचन के माध्यम से शिक्षा देने की पद्धति का अनुसरण नहीं करते थे। अतः आधुनिक-काल की सुपरिचित व्याख्यान-पद्धति संभवतः भारत से आई होगी। सुंग, मिंग और चिंग-कालों में शु-युआन नामक अनेक ऐसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनका संचालन, अपने निकट बहुत-से शिष्यों को एकत्र कर, कोई प्रतिष्ठित विद्वान् किया करता था। यह संस्थाएँ भारत के प्राचीन आश्रमों और गुरुकुलों जैसी रही होंगी। शु-युआन में नैतिक आचरण और बौद्धिक विकास पर समान बल दिया जाता था, और विशेषकर बौद्ध योग-पद्धति पर आधारित विधियों से आत्मविकास का अभ्यास कराया जाता था। सुंग तथा मिंग-कालीन शु-युआन-

प्रणाली में आत्मविकास, ध्यान और अंत:निरीक्षण को बहुत महत्त्व दिया जाने लगा था। इससे तत्कालीन सामाजिक विचारों और रूढ़ियों को बदलने में बड़ी सहायता मिली। एक चीनी कहावत है कि हमारे पास अपना मन तभी तक रहता है, जब तक हम उसे दृढ़ता से पकड़े रहते हैं, ढील देते ही हम उसे खो बैठते हैं। हमारे देश की एक शिक्षा-पद्धति ने मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए इस मार्ग को अपनाया है, और पश्चिम के विद्वान् भी किसी ऐसी ही प्रणाली से मन की शक्तियों को सिद्ध करने की आशा करते हैं।

इसके अतिरिक्त, हमारी शिक्षण-पद्धति में विद्याओं के ज्ञान की ही नहीं, आत्मा की शिक्षा की भी व्यवस्था है। मिंग-कालीन नव्य-कनफ्यूशसवादी विद्वान्, चिन-युआन ने विद्वत्ता के विषय में कहा है :—

"विद्या मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जो जन्म से ही बुद्धिमान है, वह विद्या के बिना अपने इस नैसर्गिक वरदान को खो देगा। बिना उसके, कोई भी अपनी प्रतिष्ठा को बनाए नहीं रख सकता। बिना उसके, दुर्बलता का शक्ति में, अशुभ का शुभ में नैतिक रूपान्तर नहीं हो सकता। बिना उसके, प्रेम, शील, विवेक, प्रज्ञा और सत्य में पारमिता प्राप्त करना असम्भव है। बिना उसके इस जटिल सम्बन्धमय जगत् में अपने कर्त्तव्य का पालन सुचारुता से नहीं किया जा सकता।.........बिना उसके, कोई भी यह नहीं जान सकता कि कब क्या करना चाहिए।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चीन में शिक्षा की परिभाषा में ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति दोनों ही सम्मिलित हैं। और यही बौद्धधर्म का उपदेश है।

जो उद्धरण मैंने ऊपर दिया है, वह बौद्धधर्म से प्राप्त हमारी नैतिक संपदा का सार तत्त्व है, और मैं यह गर्व के साथ कह सकता हूं कि हमने इस संपदा का सदुपयोग किया है। भारतीय ज्ञान हमारे अनुभूति-जगत् में पूर्णतया समाहित होकर हमारी चेतना का अविभाज्य अंग बन गया है। बौद्ध-धर्म तो चीन का द्वितीय धर्म होने के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है। वह हमारे देश का सर्वाधिक प्रभावशाली धर्म सिद्ध हुआ, और उसने आदर-सम्मान में प्रथम पद प्राप्त किया। उसने चीन की कला, साहित्य और विज्ञान को ही नहीं, कनफ्यूशसवाद को भी प्रभावित किया, जो सुंग और मिंग-काल में

---

१ दे० ह्वांग त्सुंग-ही द्वारा संकलित 'मिंग-कालीन कनफ्यूशसवादियों की रचनाएं'

उसके साथ निमज्जित होकर नव्य-कनफ्यूशसवाद नामक सम्प्रदाय में परिवर्तित हो गया। नव्य-कनफ्यूशसवाद की शिक्षा भौतिक होने की अपेक्षा आध्यात्मिक और राजनीतिक होने की अपेक्षा दार्शनिक अधिक है। सुंग-काल में प्रारम्भ होकर, इसका अन्त मिंग-काल में हुआ।

भारत और चीन के मध्य, इस प्रकार, सांस्कृतिक सम्बन्धों के सूत्र लगभग दो हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रहे हैं। मैं भारत से प्रेम करता हूँ और उसका प्रशंसक हूँ। उसके पास अपना दर्शन है, जिसके बल पर वह वैदिक युग से लेकर आज तक संसार में अपना सिर ऊँचा किए खड़ा रह सका है। भारत-वासियों ने सदैव उन्हीं वस्तुओं को महत्त्व दिया है, जिनसे मानव की आत्मा जीवित रहती है और जो उसको ईश्वर के समीप ले जाती है।

मैं चीन को भी प्रेम करता हूँ, और उसका भी प्रशंसक हूं, इसलिए नहीं कि उसकी धरती में मैंने जन्म पाया है, वरन् इसलिए कि उसके पास भी एक ऐसा दर्शन है, जिसने देशवासियों को अपने व्यक्तिगत सुख की भावना का अनुसरण करने की शिक्षा कभी नहीं दी, और जो कनफ्यूशस, मेनसिअस, चौंग-त्जे तथा अन्य मनीषियों की प्राणवंत वाणी में मुखरित होकर घोर संकट-कालों में उसकी रक्षा करता रहा है। इस दर्शन का सार-तत्त्व है, सर्वव्यापी प्रज्ञा, शांति, कल्याण और प्राणिमात्र की एकता।

किन्तु दुर्भाग्यवश इधर कई शताब्दियों से चीन और भारत के सम्बन्ध-सूत्र विच्छिन्न रहे हैं। राजनीतिक और आर्थिक विदेशी प्रभावों से उनकी जीवन-शैली बहुत कुछ बदल गई है। लेकिन इधर एक ओर १९२४ ई० में डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर और १९३९ ई० में श्री नेहरू की चीन-यात्राओं तथा दूसरी ओर जेनेरलिज़िमो चिआंग काई शेक तथा परमपूज्य स्व० ताई-हु की भारत-यात्राओं ने दोनों देशों के परंपरीण सम्बन्धों के पुनरुज्जीवित करने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त, विगत महायुद्ध के बाद दोनों देश अपने विद्यार्थियों और विद्वानों का विनिमय करते रहे हैं। चीन की राष्ट्रीय सरकार (फारमोसा स्थित) ने संप्रति प्रो० तान युन शान को भारत में चीन का सांस्कृतिक प्रतिनिधि नियुक्त किया है। संसार में उनके परिवर्धनशील महत्त्व के कारण उनके मध्य घनिष्ट सम्बन्ध की आवश्यकता और भी अधिक हो गई है। इस सम्बन्ध में पंडित नेहरू के शब्द बहुत ही उपयुक्त हैं। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिसकवरी ऑफ इंडिया' (हिन्दुस्तान की कहानी) में उन्होंने कहा है :—

"भाग्य-चक्र ने अब अपनी पूर्ण आवृत्ति समाप्त कर ली है, और एक बार

फिर चीनी और भारत एक दूसरे की ओर देख रहे हैं, और पुरानी स्मृतियों से उनका मन उभड़ रहा है ; एक नए प्रकार के तीर्थयात्री उनको अलग करने वाले पर्वतों को लांघ कर या उड़ते हुए पार करके आनन्द और सद्भाव के संदेश ले जा रहे हैं और मैत्री के चिरंतन सूत्रों की सृष्टि कर रहे हैं।"

—लेखक

चीनी बौद्धधर्म का इतिहास

कांतुंग झील से लूशेन पर्वत का दृश्य, जहाँ धर्माचार्य हुई युआन ने चीन में बुद्धधर्म का पुंडरीक-सम्प्रदाय स्थापित किया था।

अध्याय १

हान-राज्यकाल में चीन और भारत का प्रथम संपर्क

(क) चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश

चीन और भारत के मध्य सम्बन्धों का प्रारम्भिक इतिहास चीन के पुरातन अभिलेखों के आधार पर विविध दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया जा सकता है। वाई और त्सिन-कालों में चीनवासियों और उनकी संस्कृति पर बौद्धधर्म का विशेष प्रभाव होने के कारण, तत्सम्बन्धी अभिलेख प्रचुर संख्या में मिलते हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि आरम्भ में चीनवासी बौद्धधर्म को एक विदेशी धर्म ही मानते थे। चीनी बौद्धधर्म के हमारे इस अध्ययन में उसके उत्कर्ष और पतन का परिचय देना आवश्यक है।

चीन में बौद्धधर्म के प्रथम पदार्पण की तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो सकी है, यद्यपि इस सम्बन्ध में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं। 'लिएह त्जे की पुस्तक' में उल्लिखित है कि एक बार वू राज्य के फाउ नामक मंत्री ने कनफ्यूशस से पूछा कि संसार का सर्वश्रेष्ठ महात्मा कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में कनफ्यूशस ने कहा, कि मैंने पश्चिमी जगत् में रहने वाले एक दिव्य महात्मा का नाम सुना है। 'पश्चिमी जगत्' से कनफ्यूशस का तात्पर्य भारत था। इस किवदंती के आधार पर अधिकांश चीनी बौद्धों की यह धारणा है कि कनफ्यूशस को बुद्ध के विषय में ज्ञान था। भिक्षु ताओ-आन द्वारा संकलित 'परीक्षित बौद्ध-ग्रन्थों की सूची' में लिखा है :—

"चिग सम्राट् शिह ह्वांग ती के राज्यकाल में अठारह विदेशी श्रमण रहते थे। उनमें से एक श्रीबन्धु नामक श्रमण सम्राट् के पास कुछ बौद्ध-सूत्रों को ले गया; किन्तु सम्राट् ने उन पर विश्वास नहीं किया और श्रमण को कारागार में बन्द करवा दिया। रात को साठ फीट से भी अधिक ऊँचा एक स्वर्ण-पुरुष प्रकट हुआ और उसने कारागार को तोड़कर श्रमण को मुक्त कर दिया। तब सम्राट् आश्चर्य से स्तम्भित रह गया और उसने श्रमण को धन्यवाद दिया।"

इसकेअतिरिक्त 'वाई-राजवंश में बौद्धधर्म और ताओवाद का अभिलेख'

के निम्नलिखित उद्धरण में यह स्वीकार किया गया है कि चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश हान सम्राट् वू-ती के समय (१४०–८७ बी० सी०) में हुआ :—

"चीन और मध्य एशिया में सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर चांग-चिएन नामक राजदूत ता-हिआ (बैक्ट्रिआ) से लौटा और अपने साथ यह समाचार लाया कि बैक्ट्रिआ की सीमा पर हिएन-तु नामक एक देश है, जो तिएन-चु के नाम से भी प्रसिद्ध है। बौद्धधर्म से सम्बन्धित जिस देश के विषय में हम सुनते रहते हैं, वह देश यही है।"

हान-काल में सुमा-चिएन द्वारा लिखित 'इतिहास के अभिलेख' में हमें फिर ज्ञात होता है कि केवल चांग-चिएन ही ऐसा एक व्यक्ति है, जिसने हिएन-तु का उल्लेख किया है, अन्य सब इतिहासकार बौद्धधर्म के सम्बन्ध में मौन हैं। लिऊ-सुंग काल (४२०–४७९ ई०) में फान-ये द्वारा लिखित 'उत्तरकालीन हान-वंश की पुस्तक' में लिखा है :—

"बौद्धधर्म का आरम्भ हिएन-तु में हुआ, किन्तु 'पूर्वकालीन हान-वंश की पुस्तक' में उसका उल्लेख नहीं मिलता। चीनी राजदूत चांग-चिएन ने केवल इतना विवरण दिया है कि वह देश पहाड़ी नहीं है। उष्ण और आर्द्र है तथा वहां के लोग हाथियों पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में जाते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश पूर्वकालीन हान-वंश के उपरान्त हुआ।

बौद्धधर्म के चीन में पदार्पण की तिथि के विषय में प्रथम ऐतिहासिक उल्लेख यू-हुआन द्वारा २२०–२६५ ई० के मध्य में लिखित 'वाई-लिआओ' नामक इतिहास-ग्रन्थ में मिलता है। उसमें चीन के पश्चिम स्थित देशों का इतिहास और बुद्ध के जन्म के विषय में संक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। उसमें यह भी लिखा है कि २ ई० में सम्राट् आई-ती ने राजकुमार युएह-ची के दरबार में अपने राजदूत चिंग-चिंग को भेजा। राजकुमार ने सम्राट् का अनुरोध स्वीकार कर अपने अनुचर ई-त्सुन को आज्ञा दी कि वह चिंग-चिंग को बुद्ध-सूत्र नामक पवित्र ग्रन्थ जबानी पढ़ा दे।

चीन और भारत के सम्पर्क का आरम्भ-बिन्दु प्रायः ६४ ई० माना जाता है। पुरोहित चिह् पांग द्वारा सुंग-काल (११२७–१२८० ई०) में रचित 'बुद्ध और महास्थविरों की वंशावलियों के अभिलेख' जैसे काल्पनिक इतिहास-ग्रन्थ में निम्नलिखित विवरण दिया हुआ है :—

"पूर्वी हान-वंश (उत्तरकालीन हान-वंश) के सम्राट् मिंग-ती ने अपने राज्य के सातवें वर्ष में एक बार स्वप्न में देखा कि एक स्वर्ण-पुरुष, जिसके कंठ के आस-पास चमकते हुए सूर्य की सी आभा थी, उड़ता हुआ राजमहल में आया। अगले दिन उसने अपने दरबारियों से इस स्वप्न का अर्थ पूछा। फूई नामक एक दरबारी ने बतलाया कि वह स्वर्ण-पुरुष पश्चिम के महात्मा बुद्ध थे, जो चाउ-वंश के समकालीन थे। सम्राट् अपने स्वप्न से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने सेनापति त्साई-यिन, विद्वान् वैद्य चिंग-चिग, वांग-त्सुन आदि कुल मिलाकर १८ व्यक्तियों के राजदूत-मंडल को बौद्ध धर्म-ग्रन्थों और भिक्षुओं को लाने के लिए भारतवर्ष भेजा। दो वर्ष उपरान्त मध्य एशिया के युएह-ची देश में इस मंडली की भेंट दो भारतीय भिक्षुओं से हुई, जिनके नाम (चीनी भाषा में) किआ-येह्-मो-तान तथा चु-फा-लान थे। इन भिक्षुओं से दूत मंडली ने बुद्ध की प्रतिमाएं और अनेक संस्कृत-ग्रन्थ, जिनमें ६० लाख से अधिक शब्द थे, प्राप्त किये। तदनन्तर वे इस संग्रह को तथा दोनों भिक्षुओं को सफेद घोड़ों पर बिठाकर ६४ ई० में लो-यांग ले गये। सम्राट् से भेंट करने और उसके प्रति अपना समादर व्यक्त करने के उपरान्त दोनों भिक्षु हो-लु मठ में रहने लगे। अगले वर्ष सम्राट् ने लो-यांग नगर के पश्चिमी द्वार के बाहर 'श्वेत-अश्व' नामक मठ के निर्माण की आज्ञा दी। उन्हीं दिनों किआ-यह्-मो-तान ने 'द्विचत्वारिंशत अर्थात् बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' का भाषांतर आरम्भ किया।"

किआ-यह्-मो-तान (काश्यप मातंग) मध्य भारत का एक ब्राह्मण था। युवावस्था में ही वह अपनी प्रखर बुद्धि के लिए विख्यात् हो गया था। उसने उत्कट अध्यवसाय के साथ विविध ग्रन्थों का अनुशीलन किया और उनका नूतन एवं गूढ़ अर्थ निकाला। दैवी शक्ति से प्रेरित होकर वह पश्चिमी भारत की ओर गया। वहां किसी लघु देश के निवासियों ने उससे प्रार्थना की कि वह उनके देश चले और उन्हें 'सुवर्ण प्रभास-सूत्र' का उपदेश करे। इसी समय एक पड़ोसी राज्य ने उक्त लघु देश पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसकी सेना सीमा पार करने में असफल रही। तब शत्रु ने यह सन्देह किया कि संभवतः कोई गुप्त सहायक उस देश की रक्षा कर रहा है। अपनी प्रगति में बाधक कारण का पता लगाने के लिए अपने गुप्तचर भेजे। दूतों ने वहाँ पहुंचकर देखा कि राजा और मंत्री लोग तो शांतिपूर्वक सुवर्ण प्रभास-सूत्र का उपदेश सुनने में तल्लीन हैं, और कोई अज्ञात दिव्य शक्ति उनके देश की रक्षा कर रही है। इस प्रकार उन लोगों ने भी बौद्धधर्म स्वीकार किया। उसी समय त्साई-यिन

आदि चीनी राजदूतों की भेंट काश्यप मातंग से हुई और वे उनको ६४ ई० में अपने सम्राट् के पास लिवा ले गए। वहां श्वेताश्व मठ में रहकर उसने बयालिस परिच्छेदीय सूत्र का अनुवाद पूर्ण किया। चू-फा-लान (धर्मरक्ष) भी मध्यभारत का निवासी था। उसने अल्पावस्था में ही असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया और बौद्ध साहित्य, विशेषकर विनय के प्रति अपनी अभिरुचि दिखाई। उसको सूत्रों के असंख्य शब्द कंठस्थ थे। लोगों ने उसकी सेवा और सत्कार मुक्त हृदय से करते रहने का वचन दिया; किन्तु उसको एक ही स्थान में रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं था। वह पर्यटन करके सत्य धर्म का प्रचार सर्वत्र करना चाहता था। अतः वहां के राजा की इच्छा के विरुद्ध वह चुपके से काश्यप मातंग के साथ चला गया, और उसी का सहयात्री होकर चीन पहुंचा। वहाँ उसने बयालिस परिच्छेदीय सूत्र के भाषान्तर कार्य में काश्यप की सहायता की। काश्यप मातंग की मृत्यु के बाद ६८ से ७० ई० तक उसने अकेले ही अन्य सूत्रों का अनुवाद किया, जिनकी सूची निम्नलिखित है :—

बुद्धचरित-सूत्र, ५ जिल्द
दशभूमि क्लेशच्छेदिक-सूत्र, ४ जिल्द
धर्मसमुद्र कोष-सूत्र, ३ जिल्द
जातक, २ जिल्द
२६० शीलभेद-संचय

इस भिक्षु के सम्बन्ध में 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' नामक ग्रन्थ में एक उल्लेख है। सम्राट् वू ती ने (१८० ई० पू०) में कुन मिंग झील को साफ करवाया। उससे निकले हुए कीचड़ में कुछ काली राख भी मिली, जिसके विषय में उसने तुंग-फांग शुओ से प्रश्न किया। शुओ ने कहा—"आप पश्चिमी तातारों से पता लगाइये।" धर्मरक्ष के आने पर सम्राट् ने उससे भी यही प्रश्न पूछा। उसने उत्तर दिया कि "यह राख पिछले कल्प में भस्मीभूत जगत् की राख है।"

लो-यांग आने पर धर्मरक्ष ने उज्जयिनी के राजा द्वारा निर्मित बुद्ध की चंदन काष्ठ प्रतिमा का चित्र बनवाया और उसको श्रद्धांजलि समर्पित की।

उपर्युक्त ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि हान सम्राट् मिंग ती को चीन में बौद्धधर्म के प्रवेश के सम्बन्ध में एक स्वप्न हुआ था। मिंग ती के शासन काल में ही बौद्ध धर्म के पदार्पण के विषय में इस किंवदंती का उल्लेख बौद्ध अभिलेखों में बारम्बार मिलता है।

(ख) चीनी भाषा में प्रथम बौद्ध-सूत्र

चीन में बौद्धधर्म के इतिहास का प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म-ग्रंथों के अनुवाद के समय से मानना चाहिए। इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम 'बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' है, जिसका भाषांतर काश्यप मातंग और धर्मरक्ष ने किया। लिआंग-काल (५०२–५५७ ई०) में हुई-चिआओ द्वारा रचित 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में यह उल्लेख मिलता है—"धर्मरक्ष और मातंग काश्यप उत्तरकालीन हान-वंश की राजधानी लो यांग में साथ-साथ पहुंचे। उन्होंने पांच सूत्रों का अनुवाद किया। तदुपरान्त राजधानी के हटने और कबीलों के आक्रमण-जन्य उपद्रवों के कारण उनके चार ग्रन्थ नष्ट हो गये। केवल बयालिस परिच्छेदीय सूत्र ही शेष रहा। चीनी भाषा में प्रथम बौद्ध-ग्रन्थ यही है और इसमें २००० से अधिक शब्द है।"

बौद्ध-ग्रंथों की एक दूसरी तालिका 'वू-वंशीय चाउ-राजवंश के तत्त्वावधान में (संगृहीत) बौद्ध धर्मग्रन्थों का संशोधित सूचीपत्र' में भी इस तथ्य का उल्लेख है कि बयालिस परिच्छेदीय सूत्र का अनुवाद काश्पय मातंग और धर्मरक्ष ने मिलकर लो-यांग के पाई मा स्ज़ू अथवा श्वेताश्व मठ में किया था। भारतवर्ष से चीन आने वाला यह प्रथम ग्रन्थ था और कम-से-कम दो कारणों से विशेष महत्त्व रखता है।

पहला कारण यह है कि यह ग्रन्थ भारत में शाक्यमुनि के निर्वाण से लेकर प्रथम शती ईसवी तक बौद्धधर्म के विकास पर कुछ प्रकाश डालता है। दूसरा यह कि इस ग्रन्थ में हमें प्रथम बौद्ध-प्रचारक के विचारों और सिद्धान्तों की एक झलक मिल जाती है। संभवत: यह ग्रन्थ अपने मूलरूप में संस्कृत में प्राप्त नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेधावी अनुवादक ने विविध प्रामाणिक बौद्ध-ग्रन्थों से अवतरणों को लेकर उनका संकलन एक साथ कर दिया। फाई चांग-फान द्वारा प्रणीत 'क्रमागत राजकुलों के समय में त्रिरत्न—बुद्ध, धर्म, संघ-सम्बन्धी अभिलेख' में लिखा हुआ है कि इस सूत्र का मूलरूप अनेक विदेशी ग्रंथों से संकलित सामग्री से तैयार किया गया था। इससे यह प्रकट होता है कि यह सूत्र संस्कृत के किसी एक ग्रन्थ का अनुवाद न होकर अनेक सूत्रों के विविध महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का संकलन था।

चूंकि, जैसा मैं बता चुका हूं, चीनी भाषा में अनूदित यह पहला बौद्ध-सूत्र था, उसका आगमन मुद्रण कला के आविष्कार के प्रथम हुआ और इस कारण उसकी प्रतिलिपियाँ हाथों से लिखकर तैयार की गई। मुद्रण के आवि-

ष्कार के बाद परिणामतः उसके अनेक और एक दूसरे से भिन्न संस्करण निकले। जहाँ तक मुझे ज्ञान है, 'बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' के लगभग दस संस्करण हुए और उनको तीन वर्गों में रखा जा सकता है :—

(१) कोरिया, सुंग, युआन और राजभवन संस्करण, जो प्रायः समान हैं।

(२) सम्राट् चेन-त्सुंग की टीका के सहित संस्करण, जिसका उपयोग सर्व-प्रथम नान-त्सांग अथवा मिंग-कालीन दक्षिणी पिटक में किया गया।

(३) सुंग-वंश के तत्त्वावधान में साउ-सुई की व्याख्या सहित संस्करण।

कोरियाई संस्करण दक्षिणी वंशों के पुराने मूल-ग्रन्थ पर आधारित है। चीन के इतिहास के अनुसार लिआंग के सम्राट् वू के समय में ताओ हुंग-चिन नामक एक ताओवादी था, जिसने चेन-काओ अथवा 'सत्य-विधान' नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसके साथ चेन मिंग सोउ पिएन ना ... भी संलग्न था। यह खंड लगभग संपूर्ण ही 'बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' की सामग्री पर आधारित था। यदि हम कहीं-कहीं से यही कुछ अंश लेकर उनकी तुलना करें, तो हम देखेंगे कि कोरियाई संस्करण मूल के बहुत निकट है : जैसे (१) कोरियाई संस्करण में 'दूसरों के साथ शिष्ट व्यवहार' वाले प्रकरण में एक वाक्यांश है 'आई-ई-लाई, आई शान वांग', जो 'संयुक्तागम' के ४२ वें अनुच्छेद और उसके सप्तम सूत्र के पहले तथा दूसरे अनुच्छेद में भी प्रयुक्त हुआ है। इन दोनों मूलों में ई लाई और शानवांग का भाव मिलता है। (२) "जल में काष्ठ का दृष्टांत" नामक प्रकरण में, कोरियाई संस्करण में प्रयुक्त शब्द यह है—पु त्सो चु आन शांग पु यु च्वु आन, जो संयुक्तागम के ४३ वें अनुच्छेद में किंचित् अन्तर के साथ मिलते हैं—पु चाउ तज़ु आन, पु चाउ पि आन। (३) कोरियाई संस्करण के अन्तर्गत "स्त्रियों की ओर न देख" वाला प्रकरण दीर्घनिकाय के महापरिनिर्वाणसुत्तांत में भी मिलता है और यदि हम भली भाँति इन ग्रन्थों के मूल की परीक्षा करें, तो हम देखेंगे कि कोरियाई संस्करण वास्तव में मूल पाठ के निकटतम है। (४) कोरियाई संस्करण में 'पशु दृष्टांत' प्रकरण के अन्त में प्रयुक्त शब्द हैं—वाई शेन ई त्सो, त्सु पु चिन चन। ठीक इसी प्रकार का वाक्य संयुक्तागम के ४३ वें अनुच्छेद में मिलता है; किन्तु उसका रूप त्सु पु चिन के सदृश है।

'बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' के चेन त्सुंग संस्करण के आरंभ में भिक्षु पु-कुआंग द्वारा युआन-वंशीय त्स्वांग चिंग के राज्य के प्रथम वर्ष में लिखित एक प्रस्तावना भी है। इस प्रस्तावना में केवल इतना कहा गया है कि यह संस्क-

रण पूर्ववर्ती राजवंश के तत्त्वावधान में तैयार किया गया था; किन्तु उसमें यह उल्लेख नहीं है कि सूत्र की व्याख्या सुंग सम्राट् ने की थी। 'चुन सुंग-चाई में अनुशीलन के परिपूरक अभिलेख' के लेखक चाओ ह्जी-पियेन ने अपनी कृति में लिखा है कि उसको सम्राट् की व्याख्या युक्त 'बयालिस परिच्छेदीय सूत्र' के वर्ष, मास और तिथि के विषय में कोई ज्ञान नहीं है। किन्तु 'बुद्ध और महा-स्थविरों की वंशावली' के ४५ वें अध्याय में लिखा मिलता है कि "चेन-त्सुंग के अधीन तिएन-ह्जी के तृतीय वर्ष (१०१९ ई०) में, आई-चिग-सान-त्सोंग फा-ह तथा अन्य व्यक्तियों ने यह प्रार्थना की कि 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' तथा 'ई चिआओ चिग' पर सम्राट् की व्याख्याओं को त्रिपिटक में सम्मिलित करने और वितरित करने की आज्ञा प्रदान की जाय। तदनुसार आज्ञा दी गई।" 'चिग यू ह्जिन-ह्जियू फा पाओ लू की पुस्तक' के १५वें अध्याय में सुंग-वंशीय सम्राट् चेंग-त्सुंग की व्याख्या युक्त 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' का उल्लेख मिलता है और उसके आगे यह कथन भी कि "वह त्रिपिटक में भी प्राप्य है।" इस प्रमाण के अनुसार चेन-त्सुंग ने 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' की व्याख्या ही नहो तैयार की, स्वयं वह सूत्र भी उस समय तक त्रिपिटक में सम्मिलित कर लिया गया था। इसके अतिरिक्त 'बुद्ध और महास्थविरों की वंशावली' में लिखा है कि "सुंग-वंशीय चेन-त्सुग के शासन के ता-चुंग-ह्जिआंग-फु-कालीन सप्तम वर्ष में सम्राट् ने फू-शिह के भिक्षु चुंग-चू से प्रार्थना की कि वह राजमहल में आकर 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' पर प्रवचन दें," और लगभग उसी समय में कु-शान के भिक्षु चिह-युआन ने इस सूत्र पर एकाध्यायी भाष्य लिखा। इस प्रकार स्पष्ट है कि चेन-त्सुंग के राज्यकाल में इस सूत्र का अध्ययन करने वाले लोगों की संख्या किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' का शाउ-सूइ संस्करण सुंग काल में सब से अधिक प्रचलित था और इस कारण चिह-हू, लिआओ तुंग, और ताओ-पाई आदि मिंग भिक्षुओं तथा हृ-फा आदि चिंग भिक्षुओं ने इस संस्करण के पाठ का आश्रय लिया। इसके अतिरिक्त, ताओ-पाई प्रणीत 'त्रिसूत्र मार्ग-दर्शक' में हमें यह लिखा मिलता है कि "हांगचाउ के निकट स्थित युन-ची मंदिर के प्रधान अध्यक्ष सदा कहा करते थे कि त्रिपिटक संग्रह में प्राप्त संस्करण असंतोषजनक है, अतः सदैव शाउ-सुई के संस्करण का ही प्रयोग होना चाहिये।" युन-ची मंदिर के प्रधाना-ध्यक्ष का नाम चु-हुंग था और वह एक विद्वान् तथा अत्यन्त प्रभावशाली मिंग-वंशीय भिक्षु था। उसके आदेशों का अनुसरण करने वाले लोग बहुत रहे होंगे।

इस सम्बन्ध में एक रोचक तथ्य यह है कि हांगचाउ के लिउ-हो पैगोडा में 'बयालिस अनुच्छेदीय-सूत्र' का एक ऐसा संस्करण उपलब्ध है, जो काओ-त्सुंग के शासन के शाओ हिंग काल के २९ वें वर्ष (११५९ ई०) में पत्थरों में उत्कीर्ण किया गया था। यह उत्कीर्ण संस्करण शाउ-सुई संस्करण के लगभग समान है। उत्कीर्ण पाठ के अन्त में बु-ई कृत एक पुष्पिका है, जिसमें कहा गया है कि "पहले चिआ-येह और चु-फा ने (इसका) संकलन किया। फिर चिह-युआन ने (इसकी) व्याख्या की। अन्त में लो-चेन ने (इसके लिए) प्रस्तावना तैयार की।"

कु-शान वासी चिह-युआन तियेन-ताई मत का अनुयायी एक भिक्षु था, किन्तु वह ध्यान-बौद्धधर्म से भी बहुत प्रभावित था। पुष्पिका में उसका उल्लेख संभवतः इसलिए किया गया है कि 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' का जो पाठ उसने प्रयुक्त किया, वह शायद ध्यान-परम्परा के अनुकूल था। पुष्पिका में आगे यह लिखा हुआ है कि "हमारा सूत्र ताई, लाओ और चुआंग के सूत्रों के सदृश है।" इस आधार पर, प्रो० लिआंग चि-चाओ ने उत्कीर्ण सूत्र को पढ़कर संदेह किया कि यह ताओवादी विद्वानों की जालसाजी है। उनका कहना है कि "इस सूत्र में महायान के सिद्धान्त हैं। इसका जाली रचयिता ताओवाद से अनुरंजित होने के कारण ताओवाद और बौद्धधर्म सिद्धान्तों का समन्वय करने की इच्छा से प्रेरित हुआ होगा।" यदि हम इस सूत्र के अन्य संस्करणों का अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि 'बयालिस अनुच्छेदीय सूत्र' के पुराने संस्करण में महायान और ताओवाद के सिद्धान्तों का लेश भी नहीं है।

(ग) आन शिह-काओ और चिह-चान

सत्तर से अधिक वर्षों के उपरान्त चीन में धर्म-प्रचार के निमित्त आने वाले भिक्षुओं की मंडली पश्चिम के देशों, अर्थात् मध्य एशिया, के वास्तविक सम्पर्क में आई। 'इतिहास के अभिलेख' में इस बात का उल्लेख है कि जब चांग-चिएन १२६ ई० पू० में चीन लौटा और उसने ह्वान सम्राट् वू ती को, हूणों के विरुद्ध भारत और यूची राज्य की संधि का समाचार दिया, तब तक चीन पश्चिम के भारतीकृत राज्यों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर चुका था। चांग-चिएन ने अपने विवरण में लिखा है—"मैंने बैक्ट्रिआ में बाँस और वस्त्र देखे और देखकर पहचान लिया कि वे हमारे प्रान्त स्जे चुआन के बने थे। मुझे

बहुत आश्चर्य हुआ और मैंने पूछा कि यहाँ इतनी दूर यह चीजें कैसे मिल रही हैं। व्यापारियों ने मुझे बतलाया कि वह चीजें सुदूर दक्षिण के सिन्धु नामक एक बहुत बड़े और समृद्ध देश से लाई गई हैं।" हमें ज्ञात है कि यह सिन्धु देश भारत के अतिरिक्त कोई और नहीं था तथा जो हिमालय पर्वत की श्रेणियों, तिब्बत के पठार और उत्तरी ब्रह्मदेश की रोगाक्रान्त घाटियों के कारण चीन से एक हजार वर्ष तक कटा रहा था। चांग-चिएन को बैक्ट्रिआ में चीनी बाँस और वस्त्र का मिलना यह प्रमाणित करता है कि भारत और सूजी चुआन के मध्य कोई व्यापार-मार्ग अवश्य रहा होगा। इस सूचना से उत्साहित होकर सम्राट् वू ती ने अपनी सेना सुसज्जित की और उसे योग्य सेनापतियों के साथ तत्काल पश्चिम की ओर भेजा। हान-वंश के उत्तरार्ध में मध्य एशिया में पान-चाओ (९७ ई०) और उसका सुयोग्य पुत्र पान-योंग नामक दो श्रेष्ठ सेनानी हुए। उन्होंने आततायी हूणों को पराजित कर के कारवाओं के पथ पर पश्चिम की ओर भगा दिया। इस प्रकार चीन का भारत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ ; किन्तु इस संपर्क से व्यापार-विनिमय की अपेक्षा सांस्कृतिक आदान-प्रदान में अधिक सहायता मिली।

बौद्धों द्वारा चीन में व्यवस्थित रूप से धर्म-प्रचार का कार्य दूसरी शताब्दी ई० के मध्य से आरम्भ हुआ। बहुत-से बौद्ध प्रचारक किंचित् भी भारतीय नहीं थे, वरन् मध्य एशिया के देशों से चीन आए थे। प्रारम्भिक बौद्ध-प्रचारकों में सब से अधिक प्रसिद्ध पार्थिआ का आन शिह-काओ था। उसका यह नाम संस्कृत के 'लोकोत्तम' का अनुवाद था। आन शब्द पार्थिआवासियों के लिए प्रयुक्त होने वाले चीनी शब्द आन्सी (आर्षक) का संक्षिप्त रूप है। आर्षक शब्द पार्थिआ में राज्यारूढ़ राजवंश का नाम (आर्सेकाइडीज) था और इसी नाम से वह देश भी प्रसिद्ध था।

भिक्षु कांग सोंग-हुई ने अपने ग्रन्थ 'आनापान सूत्र की प्रस्तावना' में लिखा है कि आन-शिह का दूसरा नाम शिह-काओ था। इस आर्षक राजकुमार ने अपना राज्य अपने चाचा को देकर सन्यास ले लिया और भिक्षु होकर चीन आया तथा राजधानी (लो-यांग) में रहने लगा। वह हान सम्राट् हुआंग-त्सी के राज्य के दूसरे वर्ष (१४८ ई० में) चीन पहुंचा, और लो-यांग में बीस से अधिक वर्ष, १७१ ई० (सम्राट् लिंग ती का राज्य-काल) तक रहा। अपने प्रवास के इन बाईस वर्षों में वह निरन्तर बौद्ध-

साहित्य के प्रचार में लगा रहा। जिन ग्रन्थों के अनुवाद का श्रेय उसे दिया जाता है, उनमें से अधिकांश हीनयानीय और ध्यान-सम्प्रदाय सम्बन्धी हैं। प्रसिद्ध भिक्षु ताओ-आन का कथन है कि आन शिह-काओ ने एक प्रवचन में ध्यान-सिद्धान्तों का वर्णन किया था। उसके द्वारा अनूदित तीस से अधिक सूत्रों की शब्द-संख्या दस लाख से ऊपर है। चर्या-मार्ग भूमि-सूत्र का अनुवाद उसने १६७ ई० में किया था। अन्य अनूदित सूत्रों के नामों का अब पता लग गया है। (दे० ताओ-आन कृत परीक्षित बौद्ध-ग्रन्थों की सूची)। सेन फा-तिआओ के अनुसार शिह काओ बौद्ध सूत्रों का अनुवाद लिखकर या बोलकर किया करता था। उसकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ, 'आगमों की मौखिक व्याख्या', 'चतुःसत्य-सूत्र', 'चतुर्दश चित्त-सूत्र' आदि हैं। त्सिआंग-कालीन सेंग-यू द्वारा संकलित 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख-संग्रह' में इन ग्रन्थों का उल्लेख है। इन कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आन शिह-काओ चीनी भाषा पर अवश्य ही अधिकार रखता होगा, क्योंकि ऊपर जैसा बताया जा चुका है, वह सूत्रों का केवल अनुवाद ही नहीं, उनकी मौखिक व्याख्या भी करता था। 'परीक्षित बौद्ध-ग्रन्थों की सूची' के अनुसार, जिसमें केवल उसके अनुवादों का ही उल्लेख है, उसने ४० जिल्दों में ३५ सूत्रों का अनुवाद किया था। किन्तु यह सभी अनुवाद असंदिग्ध रूप से उसके नहीं माने जा सकते। अतः भिक्षु ताओ-आन ने अनुवादों की शैली के आधार पर वास्तविक अनुवादकों का निश्चय करने का प्रयत्न किया। बौद्ध-ग्रन्थों की अनेक चीनी तालिकाओं में 'शाक्य मुनि उपदेश सम्बन्धी ग्रन्थों की काई युआन-काल (७१३-७४१ ई०) में संकलित सूची' भी है। इसमें ९५ ग्रन्थों का और नानजिओ की सूची में ५५ ग्रन्थों का उल्लेख है। किन्तु यह दोनों सूचियाँ अनुमानात्मक हैं। 'श्रमण भिक्षुओं के संस्मरण' भी, जिसमें ३९ ग्रन्थों का उल्लेख है, विश्वसनीय नहीं है। अपना अनुवाद-कार्य समाप्त करने के बाद, आन शिह-काओ ने, सम्राट् लिंग ती के राज्य के लगभग अन्त समय में लो-यांग तथा शेंसी प्रान्त में उपद्रव मच जाने के कारण, दक्षिण चीन की यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

आन शिह-काओ के चीन में आने के एक या दो वर्ष बाद लोकरक्ष नामक एक शक (यू ची) प्रचारक भी मध्य एशिया से आया। लो-यांग मठ में रह कर उसने अनुवाद-कार्य में आन शिह का सहायता दी। 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह' के अनुसार वह सम्राट् हुआंग-ती के राज्यकाल के अंतिम चरण में आया और सम्राट् लिंग ती के समय में लो-यांग मठ में रहा। उसने

दश-साहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता-सूत्र, अजातशत्रु कौकृत्य विनोदन, अक्षय तथागत व्यूह, आदि (?) से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद किया। इनके सम्बन्ध में बहुत दिनों तक कोई निर्णायक अभिलेख उपलब्ध न होने के कारण भिक्षु ताओ-आन ने सभी कृतियों की शैली का तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त यह घोषित किया कि इन सब के अनुवादक लोकरक्ष ही थे।

हान-कालीन दूसरा अनुवादक आन-हुआन भी मध्य एशिया से आया था। 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख' संग्रह के अनुसार वह सम्राट् लिंग ती के राज्यकाल के अन्त, १८१ ई० में, चीन आया था। युद्धकला में पारंगत होने के कारण वह चि-तु-वाई (अश्वारोही चमूपति) के पद पर नियुक्त किया गया। किन्तु वह बौद्धधर्म का भक्त था और चीनी भाषा जानता था। भिक्षुओं से वह धार्मिक विषयों पर विचार-विनिमय किया करता था। येन-फू-तिआओ नामक एक चीनी सहयोगी के साथ उसने संस्कृत के महत्त्वपूर्ण बौद्ध-ग्रन्थ 'उग्रपरिपृच्छा सूत्र का अनुवाद किया, जिसकी टीका कांग सेंग हुई ने की। टीकाकार ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि आन हुआन और येन-फु-तिआओ दोनों बौद्धधर्म के प्रचार में तल्लीन रहे। आन हुआन इस ग्रन्थ का अनुवाद मौखिक करता था, जिसे येन-फु-तिआओ लेखबद्ध कर लेता था। वह अपने जीवन के आरम्भ में ही भिक्षु हो गया था और निश्चय ही उसका स्थान चीन के श्रेष्ठतम धर्म-प्रचारकों में है।

(घ) हान-वंश के अंतिम चरण में बौद्धधर्म

बौद्धधर्म आरम्भ में इस प्रकार मध्य एशिया होकर चीन पहुंचा। युएह-ची, पार्थिआ और पश्चिम के अन्य देशों से वह हान-वंश के समय में चीन आया और उस वंश का अन्त होने तक देशभर में फैल गया। 'उत्तरकालीन हान वंश की पुस्तक' के अनुसार सम्राट् हुआंग ती ने बुद्ध और लाओ-त्जे की पूजा करने के लिए अपने राजमहल में एक मंदिर बनवाया। इस 'पुस्तक' में सम्राट् हुआंग ती की सेवा में हिआंग-चिएह द्वारा प्रेषित एक प्रतिवेदन का भी उल्लेख है, जो इस प्रकार था—"मैंने सुना है कि आपने ह्वांग-ती, लाओ-त्जे और बुद्ध की उपासना के निमित्त महल में एक मठ की स्थापना की है।[1]" यह इस बात की साक्षी है कि सम्राट् बुद्ध की पूजा करने लगा था।

---

१ दे० पान-कु कृत 'हान-वंश की पुस्तक में पश्चिमी देश के अभिलेख।'

चीन में बौद्ध मठों एवं प्रतिमाओं के निर्माण के आरम्भ का समय उत्तर-कालीन हान-वंश का राज्यकाल माना जाता है। 'वू राज्य के अभिलेखक लियू-हू का जीवन चरित्र' में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

"डान-यांग जिले के रहने वाले त्सी-युंग ने सौ आदमियों को लेकर हु-चाउ के मैजिस्ट्रेट, ताओ-चिएन का पीछा किया। परिणाम-स्वरूप मैजिस्ट्रेट ने त्सी-युंग को कुआन-लिंग और डान-यांग के मध्य चावल की ढुलाई के कार्य का अधिकारी नियुक्त कर दिया। किन्तु उसने अपने कार्य-काल में बहुत उत्पात मचाया, जिसको चाहा मार डाला, और कई जिलों में सरकारी सम्पत्ति पर भी अधिकार जमा लिया। अपने इन कुकृत्यों के निमित्त प्रायश्चित्त करने के लिए, अन्त में उसने बहुत-से बौद्ध-मठों का निर्माण करवाया, एक मीनार पर बुद्ध की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की, जिसके आगे धर्म-ग्रन्थों का पाठ करने के लिए तीन सौ से अधिक व्यक्तियों के बैठने योग्य विशाल चबूतरा बना था। इसके अतिरिक्त उसने अपने अधिकार-क्षेत्र में तथा उसके आस-पास रहने वाली समस्त प्रजा को आज्ञा दी कि सब लोग धर्मोपदेश सुनने आएँ। अतः दूर और निकट के सभी लोग वहाँ एकत्र हुए। पूजा के समय ५०,००० से अधिक व्यक्तियों ने इन दर्शनार्थियों के लिए मांस और मदिरा का प्रबन्ध किया, जिसकी व्यवस्था उसने सड़कों पर कई मील तक करवा रक्खी थी। इस समारोह का दर्शन करने और खाने के लिए १०,००० व्यक्ति आए, और पूरे आयोजन में एक लाख स्वर्ण-ताएल व्यय हुए।"

'इतिहास के अभिलेख' के अनुसार त्सी-युंग की मृत्यु सम्राट् हिएन-ती के हिन-पिंग-कालीन द्वितीय वर्ष (१९५ ई० में) हुई। उस समय यांग-त्जे नदी के क्षेत्र में अशांति फैली हुई थी और प्रजा दुखी थी। त्सी-युंग ने उनके लिए खाद्य पदार्थों के वितरण का प्रबन्ध किया, जिसमें उसके प्रति उनका आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था।

अध्याय २

तीन राज्यों में बौद्धधर्म

हान-वंश (२०६ ई० पू०–२२० ई०) के अन्त के बाद चीन गृह-युद्ध और विदेशी आक्रमणों से क्षीण होने लगा। साम्राज्य बिखरकर तीन खंडों, अथवा तीन राज्यों—सान कुओ—में बँट गया। प्रत्येक राज्य का राजा अपने को सम्राट् कहता था। इन तीनों में, वाई राज्य उत्तर में, शु राज्य पश्चिम में और वू दक्षिण में था। इस काल के आधार पर—जब राजाओं में प्रायः नित्य ही पारस्परिक युद्ध चला करता था और ओजस्वी घटनाएं घटा करती थीं—रोमांचकारी कहानियों तथा नाटकों की रचना अभी तक होती रहती है।

हमें यह ज्ञात है कि बौद्धधर्म के चीन में पदार्पण के अनन्तर बौद्ध-सूत्रों का मूल संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद होने लगा। लेकिन मठीय बौद्ध-धर्म का प्रचार वाई-काल में ही हुआ। वाई राज्य की राजधानी लो-यांग में ही रही (२२०–२६५ ई०), और वहां के श्वेताश्व मठ के शांतिमय वातावरण में बौद्ध-प्रचारक अपना कार्य करते रहे। बौद्ध-ग्रन्थों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चीनी तालिका, 'काई-युआन-काल (७१३–७४१ ई०) में संकलित शाक्य मुनि-उपदेश सम्बन्धी ग्रन्थ-सूची' में उल्लेख है कि वाई राज्यकाल में चार श्रेष्ठ बौद्ध-अनुवादक थे :—

(१) धर्मरक्ष, जो मध्य एशिया का निवासी था। उसने श्वेताश्व मठ में महासांघिक सम्प्रदाय के ग्रन्थ प्रतिमोक्ष का अनुवाद २५० ई० में किया।

(२) भिक्षु कांग-सेंग-काई, जो धर्मरक्ष का समकालीन था और चीन में २५२ ई० में आया था। उसके चीनी नाम से प्रकट है कि वह भारतीय नहीं था, वरन् सोगडिअन था। श्वेताश्व मठ में रहकर अनुवादों के द्वारा उसने भी बौद्धधर्म की सेवा की।

(३) धर्मसत्य एक पार्थिअन भिक्षु था। उसने २५४ ई० में श्वेताश्व मठ में काम किया और 'धर्मगुप्त निकायकर्मन' नामक ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

(४) धर्मभद्र भी पार्थिअन था। उसने वाई-राज्य में बौद्ध-साहित्य के प्रचार का कार्य किया।

उत्तर-कालीन हान-वंश के उपरान्त तीन राज्यों के समय तक चीन में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए भारतवर्ष से ही अनेक भिक्षु नहीं आए, वरन् बौद्ध ग्रन्थों की खोज में चीनी लोग भी भारत गए। चु शिह-हिंग पहला चीनी था, जो २६० ई० में चीन से खुतन गया, जहाँ उसने एक प्रज्ञासूत्र की प्रतिलिपि की, जिसमें ९० भाग हैं और जो चीन में 'पंचविंशति साहस्रिका प्रज्ञा पारमिता' के नाम से प्रसिद्ध है। 'त्रिपिटक-अनुवाद-अभिलेख संग्रह' के अनुसार चु शिह-हिंग ने भिक्षु होने के उपरान्त वाई-राज्य के सम्राट् [illegible] के राज्य के ५वें वर्ष में अनुवाद-कार्य से [illegible] ९० भागों की प्रतिलिपि की, जिनमें ६ लाख से अधिक शब्द थे। [illegible] सम्राट् [illegible] राज्य के तीसरे वर्ष (२८२ ई०) में उसने अपने शिष्य को [illegible] के साथ लो-यांग को वापस भेजा। लो-यांग से खुतन तक जाने में चु-शिह-हिंग ने दो हजार मील से अधिक लम्बी यात्रा की। वहाँ वह लगभग बीस वर्ष रहा और बौद्धधर्म-ग्रंथों को प्राप्त कर चीन भेजता रहा। वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। वस्तुतः उसकी आकांक्षा केवल बौद्ध-साहित्य का प्रचार करने की थी और उसने अपने शरीर की चिन्ता कभी नहीं की। चार सौ से अधिक वर्ष पश्चात् हुआन-त्सांग ने बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की खोज के निमित्त, चु-शिह-हिंग की भाँति, भारत-यात्रा की। यद्यपि दोनों को अपने कार्य में सफलता भिन्न-भिन्न परिमाणों में मिली; पर उनकी निष्ठा में कोई अन्तर नहीं था।

वू-राज्य (२२२–२८० ई०), जिसकी राजधानी [illegible] (जो आधुनिक नान-किंग का प्राचीन नाम है) में थी, लो-यांग के वाई राज्य का समकालीन था। इस समय तक बौद्धधर्म चीन के मध्य भाग में फैल चुका था। चिह-चिएन ने वू-राज्य में आकर दक्षिण चीन में भी बौद्धधर्म का प्रचार आरम्भ किया। 'त्रिपिटक-अनुवाद-अभिलेख संग्रह' के अनुसार चिह-चिएन [illegible] का एक यूएह-ची था, जो अपने पितामह फा-तु का अनुसरण करता हुआ चीन आया था। उसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि चिह-चियेन ने दस वर्ष की आयु में पढ़ना आरम्भ किया। उस छोटी अवस्था में भी उसकी बुद्धि की प्रशंसा अनेक विद्वान् किया करते थे। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने संस्कृत पर अधिकार प्राप्त कर लिया था तथा छः दूसरी भाषाएं सीख ली थीं। इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में चिह-चिएन केवल चीनी भाषा जानता था। चिन मिंग-तु के अनुसार चिह-चिएन का जन्म चीन में हुआ था, इसलिए उसके द्वारा लोकरक्ष के सम्पर्क में आने की कोई सम्भावना ही नहीं थी। उसने लोकरक्ष के शिष्य

चिह्-लिआंग से शिक्षा प्राप्त की। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में उल्लेख है कि वू-राज्य के शासक ने चिह्-चिएन को युवराज का शिक्षक नियुक्त किया और उसको पो-शिह (विद्वान्) की पदवी प्रदान की। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने संस्कृत पर अधिकार प्राप्त कर लिया था और इस कारण उसने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। चिह्-मिंग-तू कृत 'सुरांगम-सूत्र टीका' के अनुसार चिह्-चिएन ने दक्षिण चीन में बौद्ध सूत्रों के अनुवाद का कार्य २२० ई० से आरम्भ किया।[1] उसने ४८ खंडों में लगभग ३६ सूत्रों का अनुवाद किया है। दश साहस्रिक प्रज्ञापारमिता, विमलकीर्ति निर्देश, वत्स-सूत्र और ब्रह्मजाल-सूत्र आदि उसकी सब से महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

'वू-राज्य के अभिलेख' के अनुसार वाई राज्य के सम्राट् वेन-ती के शासन के द्वितीय वर्ष, २२१ ई० में, प्रथम वू-सम्राट् सुएन-कियुएन ने अपनी राजधानी कुंगआन से हटाकर वु-चांग में स्थापित की। तीन वर्ष के उपरान्त विघ्न नामक एक भारतीय भिक्षु ने धर्मपद का अनुवाद अपने निवास-स्थल वु-चांग में किया। 'धर्मपद-प्रस्तावना' में लिखा है कि विघ्न नामक भारतीय भिक्षु २२४ ई० में चीन आया और वु-चाग में रहा। उसके साथ चु-चांग-येन नामक एक दूसरा भिक्षु भी था, जिसने धर्मपद का अनुवाद करने में उसकी सहायता की। इस ग्रन्थ के मूल में २६ परिच्छेद हैं; परन्तु अनुवाद पूर्ण होने पर उसमें चीनी भाषा में लिखित १३ परिच्छेद और जोड़ दिए गए। इस प्रकार कुल मिलाकर ३९ परिच्छेद और ७५२ श्लोक उसमें हो गए। प्रत्येक चीनी भिक्षु को मठ में अपनी शिक्षा आरम्भ करने पर यह सूत्र पढ़ना पड़ता है। इसमें एक बौद्ध साधक के लिए निम्नलिखित प्रकार के आदेश हैं :—

"प्रातःकाल जगने पर तुम्हें सोचना चाहिए :—
मेरा जीवन बहुत दिन नहीं चलेगा।
यह कुम्हार के घड़े की तरह जल्दी ही फूट जाने वाला है।
मरने वाला लौटकर फिर नहीं आता।
इसी आधार पर हम मानव-मात्र से बुद्ध का धर्म ग्रहण करने का आग्रह करते हैं।"[2]

कांग-सेंग-हुई एक सोगडिअन था, जिसका परिवार भारत में रहता था।

---

१ दे० चिह मिंग तु कृत 'सुरांगम-सूत्र अभिलेख'
२ दे० एड्किन कृत 'चाइनीज बुद्धिज्म' (चीनी बौद्धधर्म)

उसका पिता एक वणिक था, जो अपने परिवार को व्यापारिक कारणों से चिआओ-चिह (हिन्द-चीन के वर्तमान टोंकिन) लेता गया था। सेंग-हुई का जन्म टोन-किंग में हुआ और सम्भवतः उसने चीनी शिक्षा पाई। जब वह दस वर्ष का हुआ, तब उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई। इनका प्रभाव उसके ऊपर इतना पड़ा कि वह घर छोड़कर भिक्षु बन गया और बौद्धधर्म के अध्ययन में संलग्न हो गया।

कांग-सेंग-हुई २४७ ई० में चीन आया और वू-राज्य की राजधानी चिएन-ये (वर्तमान नानकिंग) में रहने लगा। आरम्भ में वू-सम्राट् सुएन-कियुएन की आस्था बौद्धधर्म में नहीं थी ; किन्तु कुछ समय पश्चात् वह एक उत्साही बौद्ध हो गया और उसने एक पैगोडा बनवाया तथा चिएन-चु मठ की स्थापना की। सुएन-कियुएन के उत्तराधिकारी सुएन-हाओ को भी बौद्धधर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। सेंग-हुई की मृत्यु २८० ई० में हुई।

कांग-सेंग-हुई को चौदह ग्रन्थों की रचना का श्रेय दिया जाता है। इन ग्रन्थों का उल्लेख चीनी बौद्धधर्म-साहित्य के सब से महत्त्वपूर्ण संग्रह 'विभिन्न राज-वंशों के तत्त्वावधान में त्रिरत्न विषयक अभिलेख' में किया गया है। किन्तु 'काइ-युआन-काल में संकलित शाक्य-मुनि उपदेश सम्बन्धी ग्रन्थसूची' के अनुसार उसने केवल सात ग्रन्थों को ही लिखा है।

इस समय तो केवल उसके द्वारा अनूदित षट्पारमिता-संग्रह सूत्र ही उपलब्ध है। इस कृति का अध्ययन पश्चिमी विद्वानों ने बड़े मनोयोग से किया है। हमारी धारणा यह है कि षट्पारमिता संग्रह-सूत्र इतनी उत्कृष्ट साहित्यिक शैली में लिखा हुआ है और उसका सामञ्जस्य चीन के दार्शनिक सिद्धान्तों से इतना अधिक है कि वह किसी संस्कृत-ग्रन्थ का अनुवाद न होकर, कांग-सेंग-हुई द्वारा रचित एक मौलिक कृति ही है।

सेंग-हिउ और चिह्-चिएन मध्य एशियाई थे, किन्तु उनका जन्म चीन की भूमि में हुआ था। इसलिए उन पर चीन की राष्ट्रीय संस्कृति का बहुत प्रभाव पड़ा। अपने अनुवादों में उन्होंने चीनी पारिभाषिक शब्दों और भावों का प्रयोग किया है। इस कारण उनकी शिक्षा पश्चिमी बौद्धधर्म मात्र नहीं थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल के आरम्भ में चीन की संस्कृति शासकों की 'पश्चिमी संस्कृति' से मिश्रित हो चुकी थी।

तीन राज्यों के शासन-काल में बौद्धधर्म का प्रवेश शु राज्य में नहीं हो पाया था।

अध्याय ३

पश्चिमी त्सिन-वंश के राज्यकाल में बौद्धधर्म

समय की गति के अनुसार वाई, शु और वु-वंशों के तीनों राज्यों का अधःपतन होने पर, उनके स्थान में पश्चिमी त्सिन-वंश (२६५–३१७ ई०) का उदय हुआ। इस वंश ने (शेंसी प्रान्त की वर्तमान राजधानी) चांग-आन से, जहाँ के मठों और मंदिरों ने बौद्ध-संस्कृति की ज्योति अखंड जलती रक्खी थी, अपने साम्राज्य पर लगभग एक अर्ध शताब्दी तक राज्य किया। इस अवधि में प्रज्ञा-साहित्य देश में इतना लोकप्रिय हुआ कि चीनी भाषा में उसके अनेक अनुवाद किए गए और उस पर कतिपय श्रेष्ठ विद्वानों ने कार्य किया। उनमें से कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

(१) **चिह-तुन**—उसका दूसरा नाम ताओलिन था। उसका मौलिक गोत्र-नाम कुआन था और वह चेन-लियु का रहने वाला था। कई पीढ़ियों से उसका परिवार बौद्धधर्म में भक्ति रखता आया था और स्वयं उसे अनित्यता के सिद्धान्त की सत्यता का अनुभव जीवन के आरम्भ में ही हो गया था। पचीस वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु हो गया। उसने एक ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम 'चि-से-यु-ह्जुअन लुन' अथवा 'स्वतः पदार्थ से वियुक्त हुए बिना रहस्य-लोक में पर्यटन' है। उसके अनुसार पदार्थ स्वतः अपने में रिक्त—अर्थशून्य—है। इसी कारण वह स्वतः पदार्थ से बिना अलग हुए रहस्य-लोक में पर्यटन की बात कहता है। श्वेताश्व मठ में वह 'चुआंग त्जी की पुस्तक में सुखद-भ्रमण नामक अध्याय' पर, लियू ही-चिह तथा अन्य लोगों से प्रायः वार्त्तालाप किया करता था। किसी ने एक बार कहा कि "प्रत्येक व्यक्ति का अपने स्वभाव के अनुसार चलना ही सुख है।" चिह-तुन ने इसका विरोध किया और कहा कि चिएन तथा चाउ (दो अत्याचारियों) का स्वभाव विध्वंस और विनाश करना है। और यदि सुख केवल अपने स्वभाव के अनुसार चलने में ही निहित है, तब तो वे पूर्ण सुख को प्राप्त कर चुके हैं। इसलिए वह उनके पास से चला आया और 'सुखद पर्यटन' पर एक टीका लिखी, जिसकी प्रशंसा और अनुसरण सभी विद्वानों ने किया। उसकी मृत्यु तिरपन वर्ष की अवस्था में त्सिन-वंशीय सम्राट् फी-ति के राज्य के त-आई हो-काल के प्रथम वर्ष, ३६६ ई० में हुई।

(२) चु फाया—यह हो-चिएन का रहने वाला था। अपने यौवनकाल में उसने सांसारिक विद्याओं का अध्ययन बड़ी कुशलता से किया। प्रौढ़ होने पर उसने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को समझा। उस समय उसके पास जो विद्यार्थी थे, उनको केवल बौद्धेतर ग्रन्थों का ही ज्ञान था, बौद्ध सिद्धान्तों का नहीं। अतः फाया ने कांग-फा-लांग तथा अन्य विद्वानों की सहायता से बौद्धेतर साहित्य और बौद्ध सूत्रों की विषयवस्तु में समानताओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जिससे विषय को समझने में सहायता देने वाले उदाहरण मिल सकें। इस विधि को सादृश्य-प्रणाली का नाम दिया गया। पी-फाउ और हिआंग-तान आदि अन्य विद्वानों ने भी अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने में इसी प्रणाली का उपयोग किया। फा-या की प्रणाली उदार थी और वह प्रश्न पूछने तथा उत्तर देने में बहुत कुशल था। इस प्रकार बौद्धेतर साहित्य और बौद्ध सूत्रों की शिक्षा साथ-साथ चलने लगी, क्योंकि इस पद्धति में एक की शिक्षा दूसरे की शब्दावली में दी जाती थी।

(३) चु ताओ-चिएन—इसका दूसरा नाम फा-शेन था। उसका पहले का गोत्रनाम वांग था और वह लांग-या का निवासी था। अठारह वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु हो गया था। दार्शनिक चर्चा करते समय वह कहा करता था—"असत् क्या है? एक निराकार शून्य, किन्तु फिर भी जिससे असंख्य वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। यद्यपि सत् उत्पादनशील है, असत् में ही सब वस्तुओं को उत्पन्न करने की शक्ति है। बुद्ध ने इसी कारण ब्रह्मचारी से कहा था कि चार महान् तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) शून्य से उत्पन्न हुए हैं।" उसकी मृत्यु सिन-सम्राट् हिआओ-वु के राज्य के निंग-कांग काल के द्वितीय वर्ष, ३७४ ई० में ८९ वर्ष की आयु में हुई।

प्रज्ञा-साहित्य के अन्य प्रमुख विद्वानों में चिह-हिआओ-लुंग, ताउ-फा-लु, कांग-सेंग-युंग, और चु-शिह हिंग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। जब कुमारजीव चीन आया, तब उसने पंचविंशति-प्रज्ञापारमिता का पूरा अनुवाद चीनी भाषा में किया। उसी समय उन ग्रन्थों का भी चीनी भाषा में अनुवाद हुआ, जो 'चार शास्त्रों' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) नागार्जुन कृत प्राध्यमूल-शास्त्र टीका (४ जिल्दों में)
(२) देवबोधिसत्व कृत शत-शास्त्र (२ जिल्दों में)
(३) नागार्जुन कृत द्वादशनिकाय-शास्त्र (१ जिल्द में)
(४) नागार्जुन कृत महाप्रज्ञापारमिता शास्त्र (१०० जिल्दों में)

इस प्रकार अनेक बौद्ध विद्वानों के अध्यवसाय के फलस्वरूप चीन में धर्मलक्षण सम्प्रदाय का सूर्य उदित हुआ।

चु-फा-हु—हान-वंश के उत्तर-काल में अनेक प्रसिद्ध भिक्षु अनुवाद-कार्य कर रहे थे। आन शिह-काउ और चिह-चियू ने तीन राज्यों के समय में और चु-फा-हु ने पश्चिमी त्सिन-वंश के शासनकाल में अपना कार्य किया।

चु का मूल नाम धर्मरक्ष था और वह तुखोर का एक युएह्-ची था। उसके माता-पिता आधुनिक कान्सू प्रान्त के तुंग-हुऐंग जिले में रहते थे। जब वह आठ वर्ष का था, तब श्री मित्र नामक एक भारतीय भिक्षु से प्रभावित होकर उसने घर त्याग दिया और प्रव्रज्या ले ली।[1]

वह कठोर परिश्रम करने वाला था और नित्य सहस्रों सूत्र वाक्यों को पढ़कर उन्हें कंठस्थ कर लेता था। उसका चरित्र बहुत ही ऊंचा और आचरण अत्युत्कृष्ट था। बौद्धधर्म के प्रति उसकी लगन बहुत ही गहरी थी। वह किसी भी श्रेष्ठ आचार्य की खोज में निकट या सहस्रों मील दूर के स्थानों की यात्रा करने के लिए प्रस्तुत रहता था। तदुपरान्त उसने कनफ्यूशिअन मत के छ: धर्म-ग्रन्थों तथा चीन के प्रत्येक सम्प्रदाय के साहित्य का अध्ययन किया। त्सिन-वंशीय सम्राट् वू-ती के समय में बौद्ध-मंदिरों और बुद्ध की मूर्तियों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था और उनका पूजन होता था। मध्य एशिया में वर्तमान वैपुल्य-सूत्र नामक ग्रन्थ ने चु-फाहु को आकर्षित किया और उसके सम्मुख बौद्धधर्म का नवीन पक्ष प्रस्तुत किया। उन सूत्रों का अध्ययन और प्रचार करने के उद्देश्य से उसने मध्य एशिया तक अपने गुरु का अनुसरण किया, अनेक राज्यों के मध्य यात्रा की, छत्तीस भाषाएं सीखीं और बहुत-सी पांडुलिपियों का संग्रह किया। वह २८४ ई० में चीन वापस आया और चांग-आन में स्थायी रूप से रहने लगा।[2] चीनियों ने उसे 'तुंग-हुआंग बोधिसत्त्व' का नाम दिया है।

उसके ग्रंथों का वर्णन या उसके अनुवादों की गणना करना असम्भव है। 'परीक्षित बौद्ध-ग्रन्थसूची' के अनुसार उसके द्वारा अनूदित ग्रंथों की संख्या १५० है; 'क्रमागत राजवंशों के तत्त्वावधान में संकलित त्रिरत्न सम्बन्धी अभिलेख'

---

१ दे० 'काई युआन-कालीन शाक्यमुनि-उपदेश-सूची'

२ दे० 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख-संग्रह'

के अनुसार २११ है ; और 'काई-युआन-कालीन शाक्यमुनि उपदेश-सूची' के अनुसार ३५४ जिल्दों में १२५ है।

अब चीनी त्रिपिटिकों में वे ९५ की संख्या में ही उपलब्ध है। उसकी प्रमुख कृतियों की सूची निम्नलिखित है :—

१. पंचविंशति-साहस्रिक-प्रज्ञापारमिता
२. ललितविस्तर
३. विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
४. सद्धर्म पुंडरीक-सूत्र
५. दशभूमि-सूत्र
६. रत्नकूट—परिपृच्छा
७. धर्मध्यान-सूत्र
८. अशोकदत्त-व्याकरण
९. महाकाश्यप-निदान सूत्र
१०. चतुर्विद आत्महानि-सूत्र

उत्तरी चीन की राजनीतिक परिस्थिति से विवश होकर उसे अपने शिष्यों सहित चैंग-अन छोड़ना पड़ा, जहाँ से वह शेंग-चिह की ओर गया और वहीं ७८ वर्ष की आयु में, ३१७ ई० में उसका देहान्त हुआ।

यु-फ़ालान और यु ताओ-सुइ—यु-फ़ालान काओ-यैंग का निवासी था। उसने पन्द्रह वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर बौद्धधर्म का अध्ययन करने के लिए प्रव्रज्या ले ली थी। २० वर्ष की आयु में वह प्रसिद्ध हो गया था। पर्वतों से विशेष प्रेम होने के कारण वह चांग-आन पहाड़ी पर स्थित चु-फाहू मठ में चु फा-हु के साथ रहा करता था।[1] आगे चलकर वह सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध सेन जिले को चला गया। वहाँ कुछ समय बिताने के उपरान्त उसके मन में यह विचार आया कि यद्यपि देश में धर्म का प्रचार व्यापक रूप से हो गया है ; किन्तु सूत्रों और शास्त्रों के सम्बन्ध में सच्चे ज्ञान का अभाव अब भी है। "यदि मैं बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लूं, तो मैं शान्तिपूर्वक मर सकूंगा", ऐसा उसने सोचा। अतः ज्ञान की जिज्ञासा से प्रेरित होकर उसने मध्य एशिया की ओर प्रस्थान किया ; परन्तु दुर्भाग्यवश हिआंग-लिन में उसकी मृत्यु हो गई।

---

१ दे० 'धर्मोपवन का मुक्ता-उद्यान

यू ताओ-सुई तुंग-हुआंग जिले का निवासी था और यू फ़ा-लान से प्रभावित होकर सोलह वर्ष की अवस्था में ही भिक्षु हो गया था। उसने 'हेत्वात्मक संघात के उभय पक्षात्मक सत्य पर निबन्ध' नामक एक ग्रन्थ लिखा, जिसमें उसने यह प्रतिपादित किया है कि सत् की उत्पत्ति हेतुओं के संयोग से होती है और इसलिए उसको व्यावहारिक सत्य कहा जाता है। इन हेतुओं के उच्छिन्न हो जाने पर असत् की उत्पत्ति होती है और वही परम सत्य है। इस युक्ति के अनुसार सभी वस्तुएँ और सभी धर्म अनेक हेतुओं के संघात के परिणाम होते हैं; हेतुओं के उच्छिन्न हो जाने पर वस्तुओं की सत्ता समाप्त हो जाती है; जैसे किसी घर की सत्ता उसके निर्मायक घटकों के संयोग की अवधि पर ही निर्भर करती है। अपने गुरु की कठिन यात्रा में वह उनके साथ जा रहा था; किन्तु बीच में ही बीमार पड़ जाने के कारण ३१ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु कोचिन में हो गई। उसके सम्बन्ध में निश्चित तिथियाँ अज्ञात हैं।

यू-फा-लान का दूसरा शिष्य यू-फ़ा-काई था। उसने 'संचित संस्कारों' का सिद्धान्त स्थापित किया। उसके अनुसार यह गोचर जगत् दीर्घरात्रि का निवास-स्थल है और मन तथा चेतना विशाल स्वप्न के उत्स हैं। जब हम उस स्वप्न से जगते हैं, तब उस दीर्घ रात्रि का स्थान दिन ले लेता है, भ्रान्तियों को उत्पन्न करने वाली चेतना बुझ जाती है और गोचर जगत् शून्य हो जाता है। तब मन को अपने उद्भव के लिए किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती, और ऐसा कुछ नहीं रह जाता जिसको वह उत्पन्न न कर सके।

चू फा-ताई तुंग वुआन (शान तुंग प्रान्त के आधुनिक यि-शुई) का निवासी था। अपनी किशोरावस्था में वह ताओ-आन का सहपाठी था और यद्यपि वाद-विवाद करने की प्रतिभा में उसके समकक्ष नहीं था, लेकिन अपने शीलाचार में उससे कहीं बढ़कर था। उसका समकालीन ताउ-हांग नामक एक बौद्ध भिक्षु भी था, जो (हुपेह प्रान्त के) चिन-चाउ नगर में मन की असत्यता के सिद्धान्त का उपदेश दिया करता था। चु-फा-ताई का कहना था कि "यह एक ऐसा पाखंड है, जिसका खंडन अवश्य किया जाना चाहिए।" अतः उसने प्रसिद्ध बौद्धों की एक बड़ी सभा का आयोजन किया और उसमें अपने शिष्य तान-यि को इस मत का खंडन करने की आज्ञा दी। तान-यि ने बौद्ध-सूत्रों पर आधारित सिद्धान्त सामने रक्खे और वाद-विवाद में क्रमशः अधिकाधिक गर्मी आती गई। किन्तु ताओ-हेंग हार मानने के लिए तैयार नहीं था, इसलिए वह तर्क पर तर्क देता गया। संध्या होने पर, दूसरे दिन प्रातःकाल फिर शास्त्रार्थ करने का निश्चय करके

सभा विसर्जित हुई। हुई-युआन भी सभा में उपस्थित था और उसने कई बार ताओ-हेंग का खंडन किया। पक्ष-विपक्ष वालों में आक्रोश बढ़ता जा रहा था। ताओ-हेंग ने स्वयं अनुभव किया कि उसकी तर्कना दोषयुक्त है। उसका मानसिक संतुलन भंग हो गया, वह अपनी गलमुछियाँ मेज पर पटकने लगा, और प्रश्नों के उत्तर देने में झिझकने लगा। तब हुई-युआन ने कहा—"यदि तुम शीघ्रता से शंकाओं का समाधान करके जल्दी नहीं कर सकते, तो अपनी इस ढरकी को बेकार क्यों हिला-डुला रहे हो ?" सभा हंस पड़ी और फिर उसके बाद मन की असत्यता के सिद्धांत की चर्चा किसी ने नहीं सुनी। उसकी मृत्यु ६८ वर्ष की अवस्था में, त्सिन सम्राट् हिआओ वू-ती के राज्य के ताई-युआन काल के बारहवें वर्ष, (३८७ ई०) में हुई।

चु शु-लान—धर्मरक्ष द्वारा पंचविंशसाहस्रिक प्रज्ञापारमिता का अनुवाद पूर्ण होने के नौ वर्ष बाद, लो-यांग के चीनी बौद्ध पंडित चु-शु-लान ने मोक्षल की सहायता से ४०२ ई० में, 'ज्योति प्रदान (पर प्रथम अध्याय-युक्त) प्रज्ञा-पारमिता का अनुवाद किया। इस सूत्र की संस्कृत-पांडुलिपियां को पुण्यधन २९१ ई० में लो-यांग लाया था।

चू शु-लान संभवतः भारतीय और मोक्षल मध्य एशिया का निवासी था। दोनों ही संस्कृत के पंडित थे। शु-लान चीनी भाषा जानता था, किन्तु उसे शिकार तथा मद्यपान का व्यसन लग गया था। एक बार नशे की हालत में सड़क के किनारे पाए जाने पर लो-यांग के जिला मैजिस्ट्रेट ने उसे गिरफ्तार कर लिया था, किन्तु बाद में वह छोड़ दिया गया। मोक्षल के साथ उपर्युक्त ग्रन्थ का अनुवाद करने के अतिरिक्त उसने स्वतंत्ररूप से दो प्रसिद्ध ग्रन्थों—पृथक् विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र और सुरांगम-ध्यान-सूत्र—का अनुवाद किया, जो अनुपलब्ध हैं।

पाई फ़ा-त्सु—उसका मूल नाम पाई-युआन था और वह होनाई का रहने वाला था। वह बचपन में ही बहुत कुशाग्र बुद्धि था। और उसकी जिद के कारण उसके पिता ने उसको भिक्षु हो जाने की आज्ञा दे दी थी। उसने वैपुल्य-सूत्र का अध्ययन करके उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। वह संस्कृत जानता था। उसने अनेक बौद्ध-ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया और सुरांगम-ध्यान-सूत्र पर टीका लिखी। उसके छोटे भाई फ़ात्सो ने 'बाह्य-विद्या' पर एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। फ़ा-त्सू ने चांग-आन में एक मठ बन-वाया और बहुत-से शिष्यों को एकत्र किया। उसके बाद उसने अपने को बौद्ध-

धर्म के गुह्य साहित्य के अध्ययन में लगाया। चांग-आन का तत्कालीन राज्य-पाल वांग-युआंग उसका बहुत आदर करता था। फा-त्सु शास्त्रार्थ करने में दक्ष था और उसने लाओवादी वांग-फू को अनेक बार पराजित करके बौद्धधर्म की श्रेष्ठता स्थापित की थी। वांग-फू ने आगे चलकर बौद्धधर्म की निन्दा करने के उद्देश्य से 'लाओ त्जे ह्वा हू चिंग' नामक एक पुस्तक लिखी। पश्चिमी त्सिन-वंशीय सम्राट् हुई-ती के शासन के यांग-हिंग-काल के प्रथम वर्ष में यांग-आन के तत्कालीन राज्यपाल ने फ़ात्सू से धर्मकार्य को छोड़कर अपने अधीन सरकारी नौकरी स्वीकार कर लेने के लिए कहा; किन्तु उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और वह मार डाला गया।

श्रीमित्र—फ़त्सू की मृत्यु के थोड़े दिन बाद श्रीमित्र के रूप में एक अन्य विशिष्ट व्यक्तित्व का आविर्भाव हुआ। वह त्सिन-सम्राट् हु आई-ती के राज्य-काल (३०७-३१२ ई०) में चीन आया था; किन्तु उत्तर चीन में फैले तत्कालीन उपद्रवों के कारण वह दक्षिण चला गया और वहाँ नानकिंग में ३१७ ई० से ३२३ ई० तक रहा। उस अवधि में उसने मंत्र-शास्त्र पर अनेक गुह्य ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसकी प्रमुख कृति 'महा मयूरी विद्याराज्ञी-सूत्र' है, जिसने चीनी बौद्धधर्म में योगाचार संप्रदाय की नींव डाली।

बुद्धदान—यह मध्य एशियावासी था; किन्तु यह तथ्य नितांत निर्विवाद नहीं है, क्योंकि 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' के अनुसार उसका जन्म कियू-त्जी जिले में हुआ था। प्रसिद्ध विद्वानों से बौद्धधर्म का अध्ययन करने के लिए वह दो बार किपिन (वर्तमान कश्मीर) गया। सम्राट् हुआई-ती के राज्य के चतुर्थ वर्ष, ३१० ई० में वह एक मठ स्थापित करने के उद्देश्य से लो-यांग आया; किन्तु उपद्रवों के कारण सफल नहीं हो सका। शिह-लाई नामक एक सेनापति ने ३१२ ई० में को-पो में अपना पड़ाव डाला। वहाँ की प्रजा के प्रति उसने बहुत क्रूर और पाशविक व्यवहार किया, जिससे उनके लिए शांतिपूर्वक जीना कठिन हो गया। बुद्धदान पुरानी शांतिपूर्ण व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से वहाँ गया। वह अपने प्रयास में सफल हुआ और वहाँ की जनता में बुद्ध के संदेश का उपदेश किया। शिह-लाई ने उसको अपना गुरु मानकर उसका आदर किया। शिह-लाई के उत्तराधिकारी शिह-हू ने भी उसका उतना ही आदर किया। उससे धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए फू-तिआओ और सुभूति जैसे अनेक प्रख्यात भिक्षु भारत और सोंगदिआ से आया करते थे। फा-

शाउ, ताओ-आन, ताओ चिन आदि शिष्य चीन के ही थे। उनकी मृत्यु येट राजभवन के मठ में ३४८ ई० में हुई।

प्रारंभिक भिक्षुणियां—पाओ चांग कृत 'भिक्षुणियों की स्मृतियां' में जिन दो भिक्षुणियों—चिंग-चिएन और आन-लिंग-शाउ—का उल्लेख है, वे दोनों बुद्ध-दान से संबद्ध थीं। आन-लिंग-शाउ का धर्मपरिवर्तन बुद्धदान ने ही किया था।

भिक्षुणी चिंग-चिएन ने ३१६ ई० के प्रथम एक मन्दिर का निर्माण अवश्य करवाया था, लेकिन ३५७ ई० के प्रथम तक उसका प्रव्रज्या-संस्कार नहीं हुआ था। अतः इस दीक्षा-संस्कार को उसकी उपस्थिति में धार्मिक मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी। उसकी मृत्यु ७० वर्ष की आयु में ३६२ ई० में हुई।

भिक्षुणी आन-लिंग-शाउ का मूल गोत्रनाम हु था और वह तुंग-हुआन की रहने वाली थी। उसका पिता उत्तरी चीन के अवैधानिक चाओ राज्य की प्रांतीय सेना में उप-सेनापति था। उसको सांसारिक जीवन में रस नहीं मिलता था और स्वभाव से ही उसका झुकाव निवृत्ति की ओर था। वह बौद्धधर्म के अध्ययन में तल्लीन रहती थी और नहीं चाहती थी कि उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए वर की खोज करें। उसने अपने केश कटवा डाले और भिक्षु बुद्धदान और भिक्षुणी चिंग-चिएन से प्रव्रज्या ग्रहण की। उसने चाओ राज्य की तत्कालीन राजधानी ह्सिआंग-कुओ (होनाई प्रांत के आधुनिक हिंग-ताई जिले के दक्षिण-पश्चिम) में उसने चिएन-हि्एन मठ का निर्माण कराया। वह सब विषयों की पुस्तकों का गंभीर अध्ययन किया करती थी और अनवधानता में, एक बार पढ़ने के बाद, उसे प्रत्येक पुस्तक याद हो जाती थी। गंभीरतम गूढ़ सिद्धान्तों की गहराई तक पैठ सकने की उसमें प्रतिभा थी और उसकी आत्मा अदृश्य तथा सूक्ष्म विषयों को भी आलोकित कर देती थी। बौद्ध-धर्मियों में ऐसा कोई भी नहीं था, जो उसमें श्रद्धा न रखता हो। तातार सेनापति शिह-हु ने उसको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी और उसके पिता हु-त्संग को, पदोन्नति करके हो-नाई प्रांत के चिंग हो जिले का मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया।

पश्चिमी त्सिन-वंश के राज्यकाल में बौद्धधर्म दूर-दूर तक फैल गया और अनेक मठों तथा मूर्तियों का निर्माण हुआ। 'लो-यांग मंदिरों के अभिलेख' के अनुसार त्सिन-काल में चालीस मठ थे। पश्चिमी त्सिन-वंश की राजधानी लो-यांग में ही निम्नलिखित दस मठ थे:—

१. श्वेताश्व मठ
२. बोधिसत्त्व मठ

३. पूर्वी गौ मठ
४. प्रस्तर पैगोडा मठ
५. परिपूर्ण जल मठ
६. पान-त्जे पर्वत मठ
७. महा बाजार मठ
८. वंशोपवन मठ
९. भूततथता मठ
१०. मिंग-हुआई राजकुमार बुद्ध मठ

अध्याय ४

पूर्वी त्सिन-वंश में बौद्धधर्म

(क) प्रारंभिक चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में ताओ-आन का स्थान

पश्चिमी त्सिन-वंश (२६०–३१७ ई०) के पतन के उपरान्त उत्तरी चीन में बहुत-से छोटे-छोटे तातार-राज्यों का उदय हुआ। उस समय किसी भी एक शासक को चीन का सम्राट् नहीं माना जाता था। ३१७ ई० में दक्षिण चीन के त्सिन-वंश ने, जिनकी राजधानी नानकिंग में थी, सम्राट् पद के पैतृक सम्मान का दावा किया। इस वंश का राज्य ४२० ई० तक रहा। पूर्वी त्सिन वंश के सभी सम्राट् बौद्धधर्म के प्रति सद्भाव रखते थे और नानकिंग तो वू-राज्य में (२२२-२८० ई०) बौद्ध प्रचारकों का एक महान् केन्द्र रह चुका था। जब तक त्सिन वंश का शासन रहा, चीनी बौद्धों के हृदय में श्रद्धा का दीप पूर्णता के साथ प्रज्ज्वलित रहा। चीन का महान् बौद्ध-भिक्षु ताओ-आन (३१२–३८५ ई०), जिसका जन्म सम्राट् हुआइ-ती के शासन के योंग-ची काल के छठवें वर्ष, और देहांत सम्राट् ह्जिआओ वू ती के शासन के तआई-यु आन-काल के दसवें वर्ष हुआ, उस युग की प्रेरक आत्मा और गुरु था। उसका संक्षिप्त जीवन-चरित नीचे दिया जा रहा है :—

(१) उत्तरी चीन में ताओ-आन—ताओ-आन का मूल पारिवारिक नाम वाई था। वह फू-लिऊ जिले का निवासी था और उसने एक कनफ्यूशसवादी विद्वान के घर में जन्म लिया था। जब वह सात ही वर्ष का था, उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई और तब उसके चचाजात भाई ने उसे गोद ले लिया। पांच वर्ष बाद एक ग्रामीण बौद्ध-मंदिर में वह भिक्षु हो गया और बौद्ध-साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। अत्यन्त मेधावी होने के कारण वह ग्रन्थों का अर्थ बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेता था। जब वह चौबीस वर्ष का हुआ, तब उसके गुरु ने उसे आगे पढ़ने के लिए बुद्धदान के पास नानकिंग भेजा। त्सिन-सम्राट् आई-ती के राज्य के तृतीय वर्ष, ३६४ ई० में, एक तातारी सेनापति, मू-जुग-के ने, होनान प्रान्त पर आक्रमण किया और सरकारी सेना को हरा दिया। चीनी सेनापति ने भागकर लो-हुन नगर में शरण ली और ताओ-आन अपनी समस्त शिष्य-

मंडली सहित दक्षिणी चीन चला गया। 'शिह्-शुओ की पुस्तक' में भी उसके विषय में निम्नलिखित विवरण मिलता है :—

"ताओ-आन हिआंग-यांग को जाना चाहता था। जब वह उत्तरी चीन से हिन-येह पहुँचा, तब उसने अपने शिष्यों से परामर्श करके कहा—हमने अपने समय के भीषण उपद्रवों का सामना कर लिया; किन्तु मुझे भय है कि यदि हम इस वंश के सम्राट् का अनुसरण नहीं करते, तो हमारे सारे प्रचार-कार्य का कोई मूल्य नहीं रहेगा। अतः मैं अपने सब शिष्यों को देश के हर भाग में जाने की आज्ञा देता हूँ और विशेषकर चु फा-ताई को दक्षिणी चीन के यांग चाउ जाने के लिए नियुक्त करता हूँ।"

'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में लिखा है कि हुई-युआन ने ताओ-आन का अनुसरण करके फान और मियेन जिलों के मध्य यात्रा की। तातार सेनापति फ़ू-पाई हिआंग-यांग पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना मैदान में ले आया। ताओ-आन बन्दी हो जाने के कारण दक्षिण चीन नहीं जा सका और अन्त में उसने अपने शिष्यों को कहीं अन्यत्र भेजने का निश्चय किया। हुई-युआन अन्य शिष्यों सहित दक्षिण की ओर चलकर चिन-चौ पहुँचा और वहाँ उन्होंने 'महा उज्ज्वलिमा' मठ में आश्रय लिया।

(२) **हिआंग-यांगमें ताओ-आन**—हिआंग-यांग पहुँचने पर ताओ-आन कुछ समय तक (३६५ ई०) श्वेताश्व मठ में रहा और आगे चलकर तान-धारा मठ में रहने लगा। इस समय उत्तरी चीन के चिन और येन राज्यों में भयंकर युद्ध हो रहा था; किन्तु हिआंग-यांग में कुछ काल तक शान्ति बनी रही। वहाँ ताओ-आन, ३६५ ई० से ३७९ ई० तक, १५ वर्ष रहा। जब तातार सेनापति फ़ू-पाई ने हिआंग-यांग पर अधिकार कर लिया, तब ताओ-आन वहाँ से चांग-आन चला गया। बौद्धधर्म के प्रचार में जितना कार्य ताओ-आन के लिए उत्तर में करना संभव था, उससे भी अधिक कार्य उसने यहाँ किया। उसने बौद्ध-साहित्य पर तीन महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखे[१]।

(क) **'ग्रन्थ-परीक्षा'**—ताओ-आन ने अनुभव किया कि पुराने बौद्ध-ग्रन्थों के चीनी अनुवादों में विभिन्न लेखन-शैलियों के कारण बहुत-सी अशुद्धियाँ आगई हैं। मूल संस्कृत-शब्दों के दुरूह होने के कारण चीनी विद्वानों द्वारा उनका अनुवाद स्पष्ट नहीं हो पाया था। ताओ-आन ने प्रत्येक प्राचीन ग्रन्थ की भलीभाँति

---

१ दे० 'प्रमुख भि० सं०'

परीक्षा की और उनमें प्रयुक्त शब्दों का विस्तृत विवेचन किया। साथ ही उसने अनेक दुर्लभ बौद्ध-ग्रन्थों का संग्रह किया। ताओ-आन के समकालीन, उत्तरी चीन में रहने वाले, चु ताओ-हु नामक बौद्ध-भिक्षु ने उसके पास 'द्वादशनिकाय-शास्त्र' की एक प्रति भेजी। आगे चलकर ताओ-आन हिआंग-यांग गया, जहाँ उसको लिआंग-चाउ (वर्तमान कान्सु प्रांत) निवासी हुई-चांग से प्रज्ञापार-मिता-सूत्र, सुरांगम-सूत्र आदि ग्रन्थों की एक-एक प्रति प्राप्त हुई। उसने आर-म्भिक हान-काल से लेकर त्सिन-काल तक के बौद्ध-ग्रन्थों का संग्रह भी किया और उन पर टिप्पणियां लिखीं। ताओ-आन की ग्रन्थ-परीक्षण-संबंधी यह कृति चीनी भाषा में 'त्सुंग लि त्सुन चिंग मी लू' अथवा 'परीक्षित बौद्ध-ग्रन्थ-सूची' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पूर्ण होने का समय पूर्वी त्सिनवंशीय सम्राट् हिआओ वूती के राज्य-काल में, ३७४ ई०, माना जाता है[1]।

(ख) शील और विनय की स्थापना—ताओ-आन के विचार में भारतवर्ष से चीन में आए हुए विनय ग्रन्थ पूर्ण नहीं थे। 'दश भूमिक सूत्र भूमिका' को उद्धृत करते हुए 'त्रिपिटक-अनुवाद-अभिलेख समुच्चय' में यह कहा गया है कि विनयों का संकलन बौद्धधर्म के ५०० शीलों से किया गया था। चीन में बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए ताओ-आन को विनय-ग्रन्थों के चारों (अर्थात् सर्वास्ति-वादी, धर्मगुप्त, सांघिक और महिशासक) पाठों का सम्पूर्ण अध्ययन आवश्यक लगा। 'भिक्षुणी शील पुस्तक की भूमिका' का कथन है :—

"ताओ-आन और फ़ा-ताई जैसे कतिपय प्रमुख चीनी भिक्षु शील और विनय की खोज में संलग्न हैं। पूर्वी त्सिन-वंश के मध्यकाल में विनय-ग्रन्थों को प्राप्त करने के उद्देश्य से फ़ा-हिएन ने भारत की यात्रा की।" अतएव, उसने बौद्ध-मठों में अनुशासन के लिए सामान्य शील का एक प्रारूप तैयार किया।

'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में उसके विषय में निम्नलिखित विवरण दिया हुआ है :—

"ताओ आन ने भिक्षुओं के लिए विनय का एक प्रारूप तीन अध्यायों में तैयार किया, जिसका प्रयोग देश-भर में होने लगा।"

हमें इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है कि शील सम्बन्धी यह तीन अध्याय कितने दिन प्रचलित रहे; किन्तु हम यह अवश्य मानते हैं कि भिक्षुओं के लिए प्रयुक्त कौटुम्बिक नामों का जो विधान ताओ-आन ने बनाया था, वह अभी तक

---

१ दे० 'त्रिपिटक अ० अ० स०'

प्रचलित था। उसी ग्रन्थ में यह उल्लेख भी मिलता है :—

"वाई और त्सिन-वंशों के आरम्भ से प्रत्येक भिक्षु का नाम उसके गुरु के कौटुम्बिक नाम के अनुसार रक्खा जाता था और इस कारड भिन्न-भिन्न भिक्षुओं के नाम भिन्न-भिन्न कौटुम्बिक नामों से अलंकृत रहते थे। अतः ताओ-आन ने यह किया कि श्रमणों का कौटुम्बिक नाम, बौद्धधर्म के संस्थापक, शाक्यमुनि के नाम के आधार पर एक ही होना चाहिए। आगे चलकर उसने एकोत्तर आगम से यह प्रमाण खोज निकाला कि जिस प्रकार समुद्र में मिल जाने पर नदियों का अपना अस्तित्व और अपने नाम समुद्र में खो जाते हैं, उसी प्रकार (भिक्षुओं) के मौलिक नाम शेष रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस भांति भारतीय श्रमणों के चारों कुल अपने नाम शाक्यमुनि से ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार ताओ-आन के विधान ने आगम का समर्थन किया और भिक्षु लोग उसका पालन अब तक कर रहे हैं।"

(ग) सुखावती व्यूह में श्रद्धा—हुई-चिआओ लिखित 'ताओ-आन के जीवन की रूप-रेखा' के अनुसार, फ़ा यु आदि अपने शिष्यों को लेकर ताओ-आन मैत्रेय की प्रतिमा के समीप तुषित-स्वर्ग में जन्म पाने का संकल्प करने की शपथ लेने के लिए जाया करता था। उन्हीं दिनों उत्तरी चीन के तातारी सरदार सेनापति फ़ु-चिएन ने मैत्रेय बुद्ध के परम भक्त ताओ-आन के पास उनके इष्टदेव का चित्र हिआंग-यांग भेजा। ताओ-आन के समय के पहले अनेक मैत्रेय-सूत्रों का अनुवाद चीनी भाषा में हो चुका था, जिन में प्रमुख 'मैत्रेय व्याकरण' था। मैत्रेय बुद्ध, बौद्ध मसीहा अथवा आगामी बुद्ध के विषय में यह माना जाता है कि वह अभी तुषित-स्वर्ग में निवास कर रहे हैं और शाक्यमुनि के निर्वाण के ५,००० वर्ष बाद उनका अवतरण होगा; अथवा, एक दूसरी गणना के अनुसार, चार हजार देव-वर्षों के बाद, जो ५ अरब ६७ करोड़ मानव-वर्षों के बराबर हैं, अवतीर्ण होकर मनुष्य की आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करने के लिए वह मानव-समाज के मध्य ही रहेंगे। सांसारिक झंझटों से मुक्ति पा जाने के उद्देश्य से ताओ-आन मैत्रेय के निकट तुपित-स्वर्ग में जन्म पाने की आकांक्षा करता था।

ताओ-आन के शिष्य सेंग-जुई ने अपनी रचना 'विमलकीर्ति-सूत्र-भूमिका' में लिखा है कि वह (ताओ-आन) जीवन की समस्याओं का समाधान पाने के लिए मैत्रेय की प्रतिमा के सम्मुख ध्यान किया करता था। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में लिखा है कि एक बार ताओ-आन ने स्वप्न में श्वेत केश, लंबी दाढ़ी और घनी भवोंयुक्त एक भारतीय भिक्षु के दर्शन किए। उस भिक्षु ने ताओ-आन

से कहा कि उस (ताओ-आन) ने सूत्रों की जो व्याख्या की है, वह बहुत ठीक है। उसने यह भी कहा कि निर्वाण-पद प्राप्त न करने का संकल्प करके उसने पाश्चात्य जगत् में रहने और ताओ-आन के जीवन-कार्य में सहायता करने का निश्चय किया है। आगे चलकर ताओ-आन को उस स्वप्न-भिक्षु के विषय में यह मालूम हुआ कि वह षोडश अर्हतों में प्रथम, पिंडोल भारद्वाज, था। १९१६ ई० के जर्नल एशिआतीक के अनुसार, पिंडोल भारद्वाज ने निर्वाण-पद अस्वीकार कर के मानवमात्र को बोधिप्राप्ति में सहायता करने के लिए उस अनित्य, सीमित जगत् में रहने का संकल्प किया था। मैत्रेय व्रत के आदर्श के अनुसार उसका यही कर्तव्य था।

(३) चांग-आन प्रवास-काल में ताओ-आन का अनुवाद-कार्य—ताओ-आन अपने शिष्य ताओ-ली के साथ, त्सिन-सम्राट् हिआओ वू-ती के ताई-युआन-कालीन चौथे वर्ष (३७९ ई० में) चांग-आन पहुंचा। वहां तातार सेनापति फु-चिएन ने उसका बड़ा सत्कार किया। 'धर्मग्रंथों के प्रति अपने उत्कट प्रेम के कारण ताओ-आन बौद्धधर्म के प्रचार में तल्लीन हो गया। उस के द्वारा आमंत्रित विदेशी भिक्षुओं ने अनेक सूत्रों का भाषांतर किया, जिनकी शब्द-संख्या दस लाख से अधिक थी[1]।" फु-चिएन ने देश के सभी विद्वानों को आदेश दिया कि वे बौद्धधर्म का अध्ययन करने में ताओ-आन का अनुसरण करें। ताओ-आन ने चांग-आन में अपने जीवन के अंतिम सात वर्षों में अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया। उसने 'शिंग कुंग लुन अथवा (पदार्थों के) शून्य स्वरूप पर ' निबंध ' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा था। यद्यपि यह पुस्तक अब प्राप्य नहीं है, किन्तु नि-स्यांग के अनुसार उसका मूल भाव यह था कि सब धर्मों का "यथार्थ स्वरूप शून्य और शान्त है।"

हान और वाई-कालों में लो-यांग बौद्ध-ग्रंथों के अनुवाद-कार्य का प्रमुख केन्द्र था। भिक्षु-चु-फा-हु को भी भाषांतर का दायित्व देने के उपरांत चांग-आन भी इस कार्य का एक केन्द्र बन गया।

चांग-आन में ताओ-आन के प्रवास के समय वहां बौद्धधर्म के प्रबल समर्थक सेनापति फु-चिएन का चाओ-चेन नामक एक विद्वान् सचिव भी रहता था। वह फु-चिएन की मृत्यु के बाद शीघ्र ही बौद्ध हो गया और तब उसका नाम बदल कर ताओ-चेन रक्खा गया। अनुवाद-कार्य में उसने भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

संस्कृत-ग्रंथों से चीनी भाषा में अनुवाद अधिकतर चु-फ़ा-निएन की सहायता से किए जाते थे। वह पश्चिमोत्तर चीन के वर्तमान प्रांत कांसू में स्थित लिआंगचाउ का निवासी था।

उसके नाम के उपसर्ग चु से प्रतीत होता है कि वह संभवतः जन्मना एक भारतीय था। उसने मुख्यतया महायान संप्रदाय के बोधिसत्त्व-सिद्धांत-संबंधी ग्रंथों का अनुवाद किया, जिनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :—

(१) बोधिसत्त्वमाला-सूत्र

(२) बोधिसत्त्व-गर्भ-सूत्र

(३) बोधिसत्त्वमाला निदान-सूत्र

इनके अतिरिक्त, विनय निदान-सूत्र और अवदान-सूत्र फ़ू-निएन के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। यह कहा जाता है कि उसने ७४ खंडों में बारह ग्रन्थों का अनुवाद किया था।

इसी काल में काश्मीर से बहुत-से बौद्ध विद्वान् चीन आए। उनमें संघभूति, धर्मनन्दि, और संघदेव के नाम दोनों देशों में ज्ञात थे। वे ताओ-आन के समकालीन थे तथा उसके विचारों से प्रभावित हुए थे।

काश्मीर-निवासी संघभूति, फू कुल के पूर्वकालीन चिन-वंशीय सम्राट् चिएन युअन-राज्य के सत्रहवें वर्ष, ३८१ ई० में, उत्तर चीन में आया था। वह सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के सिद्धांतों का विशेषज्ञ था और अभिधर्म-विभाषा-शास्त्र वह ज़बानी सुना सकता था। ताओ-आन इस अवधि में चांग-आन में भी चार वर्ष रह चुका था। वहाँ तातार सरदार के सचिव चाओ-चेन ने उसका बड़ा स्वागत किया और उसी की प्रार्थना पर संघभूति ने अभिधर्म-विभाषा-शास्त्र, आर्य वसुमित्र-बोधिसत्त्व-संगीत-शास्त्र और संघरक्ष-संकार्य-बुद्धचरित-सूत्र आदि ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। संघभूति की प्रमुख कृति, अभिधर्म-विभाषा-शास्त्र में ताओ-आन लिखित एक भूमिका है, जिसके अन्तर्गत यह लिखा हुआ है कि :—

" उत्तरी चीन के पूर्व-कालीन चिन-वंशीय चिएन युअन के शासन के उन्नीसवें वर्ष में संघभूति नामक भारतीय भिक्षु काश्मीर से चीन आया और उसने सीतवनि-रचित अभिधर्म-विभाषा-शास्त्र को सुनाया। चाओ-चेन की प्रार्थना पर उसने इस शास्त्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया।"

धर्मनन्दि भारतीय न होकर युएह्-ची देशवासी एक तोख़ारी था और संस्कृत के आगम-साहित्य में पारंगत था। वह ३८४ ई० में चीन आया और उसने चाओ चेन के अनुरोध पर चार आगमों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। उसने

चु-फ़ा-निएन और हुई-सुंग की सहायता से एकोत्तरागम और अशोक-राजपुत्र-चक्षुर्भेद-निदान-सूत्र का अनुवाद संस्कृत से किया। इन ग्रंथों का अनुवाद करने में दो वर्ष लगे और ताओ-आन ने उनके गूढ़ अर्थ की व्याख्या की। आगम-साहित्य का वह भी प्रख्यात विद्वान् था।

संघभूति ३८३ ई० में काश्मीर से चांग-आन आया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धर्मनन्दि और संघभूति का निरंतर मित्र और सहयोगी था, क्योंकि कई बौद्ध अनुवादों पर इन तीनों के नाम मिलते हैं। उसकी समस्त कृतियों में सर्वश्रेष्ठ अभिधर्म-ज्ञान-प्रस्थान-शास्त्र ने, जो धर्मनंदि के ग्रन्थ का संशोधित और पूर्ण रूप लगता है, उसे अक्षय कीर्ति का भागी बनाया है। अपने अनुवाद-कार्य के संबंध में वह लु-शान और नानकिंग भी गया था और चीन में अपनी मृत्यु-पर्यंत रहा।

कुमारबोधि मध्य एशिया का निवासी और तुरफ़ान राज्य के राजा मि-लि का कुओ शिह था। 'अभिधर्म-शास्त्र की भूमिका' के अनुसार, उत्तरी चीन के (पूर्वकालीन चिन-वंशीय शासक चिएन-युआन के राज्य के १८वें वर्ष में तुरफ़ान में मि-लि नामक राजा राज्य कर रहा था, जिसने चांग-आन की यात्रा की। उसके गुरु कुमारबोधि ने महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र की एक संस्कृत प्रति प्रदान की और धर्मप्रिय, बुद्धरक्ष तथा भिक्षु हुई-चिन ने मिलकर उसका अनुवाद चीनी भाषा में किया।

उत्तरी चीन के पूर्वकालीन चिन-वंशीय राजा चिएन-युअन के शासन के ९ वें, वर्ष में त्सिन-सम्राट् की सेना ने फ़ु-चिएन को फ़ाई-शुई नामक स्थान पर पराजित किया। कुछ वर्षों के बाद फ़ु-चिएन मार डाला गया और ताओ-आन की भी मृत्यु हो गई। जिन दिनों उपद्रवों के कारण चांग-आन की स्थिति डांवाडोल रहती थी, फ़ा-निएन और फ़ा-यू ने ताओ-आन की शिक्षा का अनुसरण करते हुए धर्म-प्रचार का कार्य जारी रक्खा। उसके उपरांत कुमारजीव चीन आया और संघदेव प्रचार-कार्य के लिए दक्षिण चीन की ओर गया।

(४) **बौद्ध-साहित्य में ताओ-आन का स्थान**—हानवंश के उपरांत चीनी बौद्धधर्म, ध्यानधर्म और प्रज्ञापारमिता नामक दो शाखाओं में बंट गया था। ताओ आन इन दोनों शाखाओं का प्रतिनिधि है। वाई और त्सिन-काल में बौद्धधर्म के अन्तर्गत तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं—(क) रहस्यात्मक, जो सारे देश में फैल गई थी। प्रज्ञापारमिता और वैपुल्य संप्रदायों के सिद्धांत लगभग समान थे और इन दोनों का काफ़ी प्रचार था। ताओ-आन ने प्रधानतया धर्म-लक्षण संप्रदाय

को अपना योग दिया। (ख) ताओ-आन के आरंभिक जीवन के समय तक त्रिपिटिकों के संबंध में निश्चय हो चुका था। उनमें समाविष्ट बहुत-से ग्रन्थ काश्मीर के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के थे। ताओ-आन की मृत्यु के बाद उसके प्रमुख शिष्य हुई-युआन ने अपने गुरु की अपूर्ण कृतियों को पूरा किया और सर्वास्तिवाद तथा अभिधर्मवाद दोनों का प्रचार करता रहा। (ग) कुमारजीव ने चांग-आन आने पर महाप्रज्ञापारमिता, वैपुल्य और नागार्जुन के शून्यवाद का प्रचार किया। उस समय ताओ-आन जीवित था और वह तथा कुमारजीव एक दूसरे का आदर करते थे। ताओ-आन के विषय में पूर्वी त्सिन-काल के महान् विद्वान् सुन-चाओ ने कहा है कि वह एक प्रकांड पंडित था और उसने बौद्धधर्म के प्रत्येक ग्रन्थ पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। उसके संबंध में सुन-चाओ का कथन है कि :—

"उसके नाम से चि-एन और लुंग भलीभांति परिचित थे और उसकी ख्याति हुआई और हाई तक पहुंच गई थी। जैसे घास सूख जाती है, उसी तरह यद्यपि उसका शरीर नष्ट हो गया, परंतु उसकी आत्मा सदैव जीवित रहेगी।"

ताओ-आन के जीवन और कार्य के विषय में नीचे काल-क्रमानुसार एक तालिका दी जा रही है :—

१. उसका जन्म फ़ू-लियू जिले में, त्सिन-सम्राट् हुआई-ती के राज्य के योंगचिआ-काल के छठे वर्ष (३१२ ई०) में हुआ था।

२. त्सिन-सम्राट् चेन-ती के राज्य के ह्निज़एन-काल के प्रथम वर्ष (३३५ ई०) में ताओ-आन चौबीस वर्ष का था। उसी समय उत्तरी चीन के तातार सरदार शिह्-हू ने नानकिंग को अपनी राजधानी बनाया, और भिक्षु बुद्धदान राजधानी में आया। ताओ-आन ने उससे बौद्धधर्म की शिक्षा प्राप्त की।

३. त्सिन-सम्राट् मु-ती के राज्य के योंग-हो-काल के पाँचवें वर्ष (३४९ ई०) में ताओ-आन की आयु सैंतीस वर्ष हुई। तातार सेनापति शिह्-त्सुन ने उससे ह्वा लिन उपवन में निवास करने की प्रार्थना की। इसके उपरांत वह उत्तर चीन फिर लौट आया और वहाँ 'उड़ता अज़दहा' पर्वत पर रहा।

४. त्सिन-सम्राट् मु-ती के राज्य के योंग-हो-काल के दसवें वर्ष (३५४ ई०) में ताओ-आन बयालीस वर्ष का हुआ और उसने हेंग पर्वत पर एक मठ निर्मित करवाया। उन्हीं दिनों बौद्धधर्म के अंतर्गत पुंडरीक सम्प्रदाय के संस्थापक हुई-युआन ने उससे प्रव्रज्या ग्रहण की। उसके बाद राजा की प्रार्थना के अनुसार वह, त्सिन-वंश की राजनीतिक राजधानी वू-ई जिले में रहने चला गया।

५. सम्राट् मु-ती के राज्य ह्सिन-पिंग-काल के प्रथम वर्ष (३५७ ई०) में ताओ-आन की आयु ४५ वर्ष की हुई। उस वर्ष वह वू-ई से नानकिंग गया और वहाँ शाउ-तू मठ में रहा। उसके बाद वह लो-यांग के दक्षिण स्थित लू-हुन गया और कुछ समय तक वहां ठहरा।

६. त्सिन-सम्राट् आई-ती के राज्य के ल्युंग-हो-काल के तृतीय वर्ष (३६३ ई०) में ताओ-आन की आयु ५२ वर्ष की हुई। तातार सेनापति मू जुग-शिह के होनान प्रांत पर आक्रमण करने पर वह ह्सिआंग-यांग चला गया।

७. त्सिन-सम्राट् ह्सिआओ वू-ती के राज्य के ताई-युआन-काल के प्रथम वर्ष (३७६ ई०) में ताओ-आंन की आयु ६७ वर्ष की हुई। उस समय तक ह्सिआंग-यांग में रहते हुए उसे पंद्रह वर्ष हो चुके थे। उसके बाद वह चांग-आन वापस चला गया।

८. उपर्युक्त काल के चौथे वर्ष (३७९ ई०) में वह ७० वर्ष का हुआ और बुद्धदान के मठ की यात्रा करने के लिए वह नानकिंग गया।

९. उपर्युक्त काल के दसवें वर्ष (३८५ ई०) में ताओ-आन की आयु ७३ वर्ष की हुई और उसी वर्ष ४ फरवरी के लगभग उसकी मृत्यु हुई।

(ख) हुई-युआन और पुंडरीक-संप्रदाय

त्सिन-काल में चीनी बौद्धधर्म ने तीन महान् साहित्यिक सफलताएं प्राप्त कीं और वह हैं—देवशर्मन का अभिधर्मदर्शन, बुद्धभद्र का ध्यान और कुमारजीव के तीन सूत्र। दक्षिण चीन में उनका प्रवेश और प्रचार हुई-युआन ने किया। उसने पुंडरीक-संप्रदाय नामक एक नए संप्रदाय की स्थापना की, जिसका चीनी बौद्धधर्म के आरंभिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

(१) हुई-युआन का आरंभिक जीवन—हुई-युआन (गोत्रनाम—चिआ) का जन्म येन-मेन में ५३४ ई० में हुआ था। उसने कन्फ्यूशियसवाद का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया और लाओ-त्जे के सिद्धान्तों का भी अनुशीलन किया। तेरह वर्ष की आयु में अपने चाचा के साथ उसने लो-यांग और ह्सू-चाउ जिलों की यात्रा की। इक्कीस वर्ष का होने पर उसकी इच्छा उस समय के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् फान-शुआन से मिलने के लिए यांग-त्सी नदी पार करके पूर्व की ओर जाने की हुई; किंतु राजनीतिक उपद्रवों के कारण वह उधर नहीं जा सका। तब वह ताओ-आन के पास गया, जो उन दिनों हेंग पर्वत पर स्थित मठ में ठहर कर बौद्धधर्म का उपदेश कर रहा था। हुई-युआन ने उसे अपना गुरु

स्वीकार किया। उन्हीं दिनों उसने तथा उसके छोटे भाई हुई-चिह् ने ताओ-आन के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण की।[१] हुई-युआन ने बौद्धधर्म पर व्याख्यान देना आरंभ किया। एक बार उसके श्रोताओं ने उसके सत्ता संबंधी सिद्धांत पर शंका की। शंका-समाधान और वाद-विवाद से वे और भी अधिक भ्रम तथा संदेह में पड़ गए। तब हुई-युआन ने अपने सिद्धांत के समर्थन में उसी के सदृश चुआंग-त्ज़े के सिद्धांत का उल्लेख किया। और इस तरह वह सिद्धांत शंकालुओं की समझ में आ गया।

त्सिन-सम्राट् आई-ती के राज्य के हिन-निएन-काल के तृतीय वर्ष (३६५ ई०) में हुई-युआन की आयु बत्तीस वर्ष की हुई। उस समय तक ताओ-आन के साथ रहते हुए उसे दस वर्ष से अधिक हो चुके थे। ताओ-आन के साथ अपने छोटे भाई सहित वह भी दक्षिण की ओर गया। मार्ग में वे हिआंग-यांग पहुंचे। वहाँ से चू-फ़ा-ताई ने तो पूर्व की ओर अपनी प्रगति जारी रक्खी, किंतु बीमार पड़ जाने के कारण फ़ा-ताई को (चिन-चाउ-स्थित)थांग-कौ में अपनी यात्रा समाप्त कर देनी पड़ी। ताओ-आन ने हुई-युआन को चु-फा-ताई का स्वागत करने के लिए चिन-चाउ भेजा। उस समय ताओ-हेंग अचेतनता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में संलग्न था और चिन-चाउ के आस-पास सारे प्रदेश में उसका प्रचार हो गया था। चु-फ़ा-ताई ने अपने शिष्य तान-ई को इस सिद्धान्त के प्रचार को रोकने के लिए भेजा और हुई-युआन ने भी इस कार्य में आंशिक सहायता पहुंचाई। उन दोनों ने ताओ-हेंग को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया। उसके बाद हुई-युआन हिआंग-यांग को वापस चला आया। ताओ-आन का एक भक्त हुई-योंग नामक तरुण भिक्षु था। उसने हुई-युओंग के साथ कैन्टन की लोफ़ू-पहाड़ियों में ठहरने की व्यवस्था की थी; किंतु ताओ-आन ने हुई-युओंग को हिआंग में ही रहने की आज्ञा दे रक्खी थी। अतः हुई-योंग ने अपनी यात्रा अकेले ही जारी रक्खी और वह ह्नुन-यांग पहुंचा। वहाँ ताओ-फ़ान ने उससे रुकने के लिए प्रार्थना की। अंततः वह पश्चिमी 'उद्यान' मठ में स्थायी रूप से रहने लगा।[२]

त्सिन सम्राट् हिआओ वू-ती के शासन के तआई-युआन-काल के द्वितीय वर्ष (३७७ ई०) में उत्तरीचीन के सेनापति फ़ू-पाई ने हिआंग-यांग पर आक्रमण किया। इस कारण ताओ-आन दक्षिण की ओर नहीं जा सका। और उसने अपने

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'
२ दे० वही

सारे शिष्यों को चीन के दूसरे भागों में भेज दिया। तभी हुई-युआन का साथ अपने गुरु ताओ-आन से सदा के लिए छूटा और फिर वे जीवन-भर कभी नहीं मिल सके।

(२) अपने छोटे भाई हुई-चिओ के साथ हुई-युआन हिआंग से चिन-चाउ की ओर गया। यांग-त्ज़ी नदी पार करने के बाद वे कुछ दिनों तक 'श्रेष्ठ-ज्योति' मठ में रहे। हुई-युआंग हुन-यांग को एक बार फिर गया। लु-शान पर्वत के सौंदर्य और चित्रमयता से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ और वह स्थान सचमुच किसी बौद्ध धर्मावलंबी के एकांत वास के लिए आदर्श था।[1]

पहले वह 'अजदहा-धारा' मठ में रहा। तदुपरांत हुन-यांग के मैजिस्ट्रेट ने उसके लिए ३८६ ई० में एक मन्दिर लु-शान में बनवा दिया, जिसका नाम 'पूर्वी-उद्यान' मठ रक्खा गया।

तब हुई-युआन स्थायी रूप से लु-शान में रहने लगा और वहां उसने तीस से अधिक वर्ष बिताए। अपने स्थान को छोड़कर वह अन्यत्र कभी नहीं जाता था। उसके दर्शनार्थी और भक्त उसके पास प्रचुर संख्या में आया करते थे। उसके १२३ शिष्य थे, जिन में हुई-कुआन, सेंग ची, फा-आन और तान-युंग-ताओ-स्यु आदि प्रसिद्ध व्यक्ति सम्मिलित थे। उसके साथ उसका भाई हुई-चिह, सहपाठी हुई-आन, और यौंग भी उस समय रहते थे।

(३) **हुई-युआन और कुमारजीव**—कुमारजीव मध्य एशिया से ४०१ ई० में चांग-आन आया था। उसके आने के चार वर्ष बाद हुई-युआन ने उसके विषय में याओ-हिंग से सुना और अभ्यर्थना करते हुए तत्काल उसको एक पत्र लिखा। कुमारजीव ने अपने उत्तर में बौद्धधर्म के परिवर्धन में उसको पूरी सहायता देने का वचन दिया। फ़ा-शिह् के उत्तर से लौटने पर कुमारजीव ने स्वदेश जाने की इच्छा उससे प्रकट की। हुई-युआन ने कुमारजीव से बौद्धधर्म संबंधी अनेक प्रश्न पूछे, जिनका उसने सविस्तार उत्तर दिया। हुई-युआन और कुमारजीव के मध्य यह विचार-विनिमय 'महायान का स्वर्णिम अर्थ' नामक ग्रन्थ के अठारह अध्यायों में संगृहीत है।

हुई-युआन संस्कृत का पंडित था, किन्तु उसने किसी भी बौद्ध ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में नहीं किया। उसने केवल ग्रन्थों की टीकाओं का संकलन

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

किया। उसके प्रस्ताव करने पर ही संपूर्ण सर्वास्तिवादी विनय का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया था।

यद्यपि जन-समाज से दूर रहने के उद्देश्य से वह लू-शान में स्थायी रूप से रहने लगा था, लेकिन सदा पश्चिम से आए हुए बौद्ध-पंडितों की खोज में रहता था और उनसे भेंट भी किया करता था।

संघदेव और बुद्धभद्र भी कुछ दिन हुई-युआन के साथ लू-शान में रहे थे। कुमारजीव की मृत्यु के बाद चांग-आन में बहुत दिनों तक राजनीतिक उपद्रव होते रहे और इसलिए बहुत-से भिक्षु वहां से दूसरे स्थानों को चले गए।

चांग-आन छोड़कर जाने वाले भिक्षुओं में चु ताओ-शेंग भी था, जो दक्षिण की ओर गया। इस बात का उल्लेख मिलता है कि हुई-युआन के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही उस समय प्रतिमोक्ष, शास्त्रत्रय, सद्धर्म पुंडरीक-सूत्र और सत्यसिद्धि-शास्त्र का प्रचार दक्षिण में हुआ।

(४) **हुई-युआन और अमिताभ का स्वर्ग**— हुई-युआन इस सिद्धान्त में विश्वास करता था कि आत्मा अनिरोध है और मानव जन्म-मरण केवल रूपांतरण की प्रतिक्रिया। वह स्वयं अमिताभ के स्वर्ग में जन्म पाने के लिए प्रार्थना किया करता था। त्सिन-सम्राट् आन-ती के शासन के युआन-हिन-कालीन प्रथम वर्ष (४०२ ई०) में हुई-युआन ने, लिउ यू-मिंग, चाउ हू-चिह, पी यिन-चिह और त्सुन पिन आदि अपने शिष्यों के साथ अमिताभ बुद्ध की प्रतिभा के सम्मुख यह शपथ ली कि वे उस पवित्र लोक में जन्म पाने की आकांक्षा रखते हैं, जहाँ निर्वाण के स्थान पर अमरत्व प्राप्त होता है। हुई-युआन के साथ उसके १२३ शिष्यों ने यह शपथ ली थी। उनमें से अठारह शिष्यों को चुनकर उनके साथ उसने लिएन-त्सुंग अथवा पुंडरीक-संप्रदाय नामक एक मत की स्थापना की। हमारे परंपरागत इतिहास के अनुसार इन अठारह शिष्यों में दो भारतीय थे, जिनका नाम बुद्धयशस और बुद्धभद्र था।

सुंग-वंश के पुरोहित ताओ-चांग के अनुसार हुई-युआन द्वारा संस्थापित पुंडरीक-संप्रदाय बहुत प्राचीन है। यह तथ्य अमिताभ-सूत्र और सुखावती-व्यूह-सूत्र के त्सिन-कालीन कुमारजीव कृत अनुवादों की तिथियों की प्राचीनता से सिद्ध होता है। अमिताभ-स्वर्ग का वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

"यह सुखभूमि स्वर्ण, रजत और अमूल्य रत्नों द्वारा अत्यन्त सुंदरता से अलंकृत है। स्वर्णिम सिकता में पवित्र जल के सरोवर मनोरम वीथियों से घिरे हुए हैं। स्वर्गीय संगीत हर समय कानों में पड़ा करता है; दिन में तीन बार

फूलों की वर्षा होती है ; वहां उत्पन्न प्राणी परलोक जाने और वहां निवास करने वाले असंख्य बुद्धों के सम्मान में फूल चढ़ाने तथा अपने वस्त्र लहराने में समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त, उस स्वर्ग में मयूर, मैना कलविंक आदि सभी प्रकार के पक्षी हैं, जो हर चौथे घंटे पर अपने स्वर मिलाकर धर्म की स्तुति में गाते हैं, जिससे श्रोताओं के मन में बुद्ध, धर्म और संघ की स्मृति हरी हो जाती है। वहां नरक का नाम कोई नहीं जानता, किसी का भी जन्म दुष्ट योनि में नहीं होता, न किसी को ऐसा जन्म पाने का भय है। पक्षी धर्म की स्तुतियां गाया करते हैं ; जब वहां वृक्ष और घंटियों की मालाएं वायु के झोंकों से हिल उठती हैं, तब उनसे अनेक मधुर और मनोहर ध्वनियां निकलती हैं, जो समस्त श्रोताओं के मन में धर्म के भाव प्रस्फुटित कर देती हैं। इन बुद्ध को अमिताभ क्यों कहते हैं? इसलिए कि इन बुद्ध की तथा वहां जन्म पाने वालों की आयु अमित होती है। और इसलिए कि उन बुद्ध की आभा अमित-अनंत है, और वहां उनके पास असंख्य, अगण्य पवित्र तथा श्रद्धास्पद आत्माएं निवास करती हैं ; अतएव उस स्वर्ग में जन्म पाने के लिए सब प्राणियों को कातर प्रार्थना करना चाहिए। इसमें सफल मनोरथ होने के लिए उनको सत्कर्मों द्वारा अर्जित पात्रता की आवश्यकता नहीं है, उनको केवल अमितायु का नाम हृदय में रखकर, एक, दो, तीन, चार, पांच, छः अथवा सात रातों तक, निश्चल मन से उसका जप करना चाहिए। मृत्यु के निकट होने पर अपने अनेक साधुमना अनुचरों सहित अमिताभ बुद्ध उनके सम्मुख प्रकट होंगे और पूर्ण शांति छा जाएगी ; अतएव प्रत्येक व्यक्ति के पुत्र और पुत्री को अमिताभ बुद्ध के स्वर्ग में जन्म पाने के लिए प्रार्थना करना चाहिए।" और इसी तरह यह वर्णन काफ़ी दूर तक चलता है।

एक दूसरे अर्थ में यह स्वर्ग पूर्ण, शुद्ध और शांत नैतिक प्रकृति का प्रतीक माना जाता है। "अमिताभ का अर्थ है निर्मल और बोधिप्राप्त चित्त। स्वर्ग की वृक्षावलियां चित्त के द्वारा पालन किए जाने वाले सद्गुणों की प्रतीक हैं। संगीत चित्त का सामंजस्य है। पुष्प (विशेष कर पद्म) चेतना और प्रज्ञा के प्रति उन्मुख चित्त के प्रतीक हैं। सुन्दर पक्षियों का अर्थ है परिवर्तित और पुनर्निर्मित चित्त।" इस प्रतीकात्मक व्याख्या का उद्देश्य संभवतः सुखावती (पवित्र लोक) संप्रदाय को उस अश्रद्धा से मुक्त करना था, जिसका पात्र वह निर्वाण के आदर्श को छोड़कर भोगविलास-युक्त स्वर्ग को अपना ध्येय बनाने के कारण हो गया था।

(५) **हुई-युआन का जीवन और कार्य**—हुई-युआन के जीवन और कार्य का विवरण कालक्रम के अनुसार नीचे दिया जा रहा है :—

१. त्सिन-वंशीय सम्राट् चेन-ती के राज्य के हिएन-हो-कालीन नवें वर्ष (३३४ ई०) में हुई-युआन का जन्म येन-मेन में हुआ।

२. त्सिन-सम्राट् मु-ती के राज्य के योंग-हो-कालीन दसवें वर्ष (३५४ ई०) में, बीस वर्ष की अवस्था में, उसने ताओ-आन (जो उस समय हेंग पर्वत में निवास कर रहा था) के चरणों में बैठकर प्रव्रज्या ग्रहण की।

३. त्सिन-सम्राट् आई-ती के राज्य के हिन-निएन-कालीन तृतीय वर्ष (३६५ ई०) में, बत्तीस वर्ष की अवस्था में वह अपने गुरु ताओ-आन के साथ हिआंग-यांग गया।

४. त्सिन-सम्राट् ह्विआओ वू-ती के राज्य के ताई-युआन-कालीन तृतीय वर्ष (३७८ ई०) में, पैंतालीस वर्ष की अवस्था में, ताओ-आन का स्थान छोड़कर वह पूर्व की ओर गया। वहां पहले वह चिन-चाउ में रहा और उसके बाद लु-शान पर्वत स्थित 'अजदहा धारा' मठ में।

५. उपर्युक्त-कालीन दशम वर्ष (३८५ ई०) में, जब वह बावन वर्ष का हुआ, उसके गुरु ताओ-आन की मृत्यु चौंग-आन में हुई।

६. उसी काल के १६ वें वर्ष (३९१ ई०) में, जब वह अट्ठावन वर्ष का था, संघदेव लु-शान पर्वत स्थित 'दक्षिण पर्वत विहार' में निवास कर रहा था। हुई-युआन ने अभिधर्म हृदय-सूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद करने का अनुरोध उससे किया।

७. त्सिन-सम्राट् आन-ती के शासन के लुंग-आन-कालीन तृतीय वर्ष (३९९ ई०) में, हुन-यांग के मैजिस्ट्रेट हुआंग हुअन लु-शान आया और हुई-युआन के लिए 'पूर्वी-उद्यान-मठ' का निर्माण कराया।

८. उपर्युक्त काल के पंचम वर्ष (४०१ ई०) में मध्य एशिया से कुमारजीव चांवा-आन आया और हुई-युआन ने उसका स्वागत करते हुए उसे पत्र भेजा।

९. त्सिन-सम्राट् आन-ती के शासन के युआन-हिंग-कालीन प्रथम वर्ष में, ६९ वर्ष की अवस्था में हुई-युआन ने अपने शिष्यों सहित अमिताभ बुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख खड़े होकर पश्चिमी स्वर्ग में जन्म पाने की आकांक्षा करने की शपथ ली।

१०. त्सिन-सम्राट् आन-ती केई-ह्जी-कालीन प्रथम वर्ष (४०५ ई०)

में, ७२ वर्ष की अवस्था में तत्कालीन सम्राट् का एक पत्र हुई-युआन ने प्राप्त किया।

११. उपर्युक्त काल के सातवें वर्ष (४११ ई०) में बुद्धभद्र चांग-आन से लू-शान पर्वत को गया और हुई-युआन ने उससे ध्यान-सूत्रों का चीनी भाषा में अनुवाद करने की प्रार्थना की।

१२. उसी काल के नवें वर्ष (४१३ ई०) में कुमारजीव का देहांत चांग-आन में हुआ।

१३. उसी काल के बारहवें वर्ष (४१६ ई०) में हुई-युआन की मृत्यु लू-शान पर्वत-स्थित 'पूर्वी-उद्यान-मठ' में हुई, जहां वह तीस वर्ष से अधिक समय तक रहा था।

(ग) फ़ा-हिएन की भारत-यात्रा

३८५ ई० में ताओ-आन की मृत्यु के उपरांत चीन में ऐसे अनेक बौद्ध विद्वान् और भिक्षु हुए, जो अपने धर्म के निमित्त बौद्धधर्म-तीर्थों के दर्शन करने और प्रसिद्ध बौद्ध-आचार्यों को खोजकर अपने साथ चीन लाने के लिए भारत-वर्ष की कठिन यात्रा करने के इच्छुक थे। भारत जाने वाले चीनी भिक्षु विद्वान् और बौद्धधर्म के सिद्धांतों से अवगत होते थे। इस कारण अपने देश में बौद्ध-मत के प्रचार तथा चीनी बौद्ध-संस्कृति को समृद्ध करने में उन्होंने पर्याप्त योग दिया।

ऐसे साहसी भिक्षुओं में प्रथम स्थान फ़ा-हिएन का है। वह भारतवर्ष में ऐसे कई स्थानों को गया, जहां उसके प्रथम न चांग-चिएन पहुंच सका था और न हान-कालीन कान-यिंग। फ़ा-हिएन के पहले एक और प्रसिद्ध चीनी बौद्ध विद्वान् चु-शिह-हिंग ने भी पश्चिम की यात्रा की थी, किन्तु वह खुतन तक ही जा सका था। फ़ा-हिएन के पूर्व हुई-चांग, चिन-हिंग और हुई-पिएन आदि कई भिक्षु भारत की ओर गए तो थे, लेकिन लौटकर वापस नहीं आए। फ़ा-हिएन भारतवर्ष के एक बड़े भाग की यात्रा पूर्ण करने वाला पहला चीनी यात्री था। उसने वहां बौद्धधर्म का अध्ययन किया और अपने साथ बहुत-से बौद्ध-ग्रन्थों को ले गया।

शिह-फ़ा-हिएन का गोत्र-नाम कुंग था और वह पिंग-याग (शान्सी प्रांत के एक भाग) में स्थित वु-यांग का निवासी था। वह तीन वर्ष की अवस्था में ही भिक्षु हो गया था। उसके संघीय नाम फ़ा-हिएन का अर्थ 'धर्म-विख्यात' है। शिह शब्द शाक्यमुनि का संक्षिप्त रूप और लगभग बौद्ध-शब्द के समान है। बीस वर्ष का होने पर उसने अपनी श्रामणेर अवस्था पूर्ण की और

बौद्ध-संघ के मठीय संगठन में प्रविष्ट हुआ। अपने अपूर्व साहस, कुशाग्र बुद्धि और आचार के कठोर संयम के कारण वह प्रसिद्ध हो गया। वह चांग-आन में रहता था और वहाँ के बौद्ध ग्रन्थों के संग्रह की जीर्ण तथा अपूर्ण दशा से दुखी अनुभव किया करता था। उसने त्सिन-सम्राट् आन-ती के शासन के लुंग-आन-कालीन तृतीय वर्ष (३९९ ई०) में भारत-यात्रा के निमित्त चीन से प्रस्थान किया। तब से लगभग दस वर्ष पूर्व ताओ-आन का देहांत हो चुका था और कुमारजीव के चांग-आन पहुंचने के दो वर्ष पहले फ़ा-हिएन भारतवर्ष पहुंचा।

फ़ा-हिएन ने विनयपिटक की संपूर्ण प्रतियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत-यात्रा की थी। हुई-चिंग, ताओ-चेन, हुई-यिंग और हुई-वाई इस यात्रा में उसके साथ गए थे। चांग-आन से चलकर लुंग ज़िला होते हुए वे चांग-येह के बाजार में पहुंचे, जहाँ उनकी भेंट चिह-येन, हुई चिएन, सेंग शाओ, पाओ युन और सेंग-चिंग से हुई। यह लोग भी फा-हिएन के दल में शामिल हो गए और सब मिलकर आगे बढ़े। तुंग-हुआंग पहुंचने पर वहाँ के मैजिस्ट्रेट ली-हाओ ने उनके मार्ग में पड़ने वाली 'बालू की नदी' पार करने के साधनों की व्यवस्था कर दी। पाओ-युन और चिह-येन से चलने के कुछ समय बाद जब फ़ा-हिएन और उसके चार साथी एक दूसरे से बिछुड़ गए, तब उनको गरम हवा तथा अन्य आपत्तियों का सामना करना पड़ा। न आकाश में कहीं एक पक्षी दिखाई पड़ता था और न धरती पर कहीं एक पशु। उस रेगिस्तान में सही मार्ग पर रहने की चिन्ता उनको सदैव ही रहती थी ; किन्तु पथ-चिह्नों के रूप में उनको इधर-उधर बिखरी हड्डियां ही नजर आती थीं।

रेगिस्तान पार करके शान-शान राज्य होते हुए वे वू-आई देश में पहुंचे और वहाँ दो मास रुके। वहाँ पाओ-युन तथा अन्य साथी उनको फिर आ मिले। चिह-येन, हुई-चिएन और हुई-वाई यात्रा सम्बन्धी सुविधा मिलने की अपेक्षा कर के काओ-चांग की ओर गए, किन्तु फ़ा-हिएन तथा अन्य लोगों ने फू-कुंग-सुन की उदारता के कारण सीधे दक्षिण-पश्चिम की ओर यात्रा जारी रक्खी। जिस देश में होकर वे जा रहे थे, वह निर्जन था। नदियों को पार करने में जिन कठिनाइयों तथा अन्य आपत्तियों का सामना उन्हें करना पड़ा, वे यात्रा के इतिहास में अद्वितीय हैं। सौभाग्यवश, वे खुतन पहुंचने में सफल हुए। तब हुई-चिंग, ताओ-चेन और हुई-ता, यह तीन व्यक्ति चिएह-चा नामक देश की ओर अग्रसर हुए। (इस देश के आधुनिक नाम के विषय में निश्चय नहीं हो सका है। जेम्स लेज के अनुसार वह लद्दाख या उसके निकट कोई प्रसिद्ध स्थान था)। अपने अन्य साथियों

के साथ फा-ह्निएन त्जी-हो राज्य की ओर गया और फिर दक्षिण के त्सुंग-लिंग पर्वतों की तरफ जाकर यू-मो देश पहुंचा, और सिएह-चा पहुंचने पर उसे हुई-चिंग तथा उसके दो साथी फिर मिल गए। उसके उपरान्त उन्होंने गर्मी और जाड़ों में सदा बर्फ से ढकी रहने वाली त्सुंग-लिंग पर्वतमालाएं पार कीं। यह पर्वत विषधर सर्पों से भरे हुए थे, जो उत्तेजित हो जाने पर सांस द्वारा विषैली वायु उगलने लगते थे, और बर्फ की वर्षा तथा बालू और पत्थरों की आंधियां उत्पन्न कर देते थे। उस देश के निवासी इन पर्वतमालाओं को 'हिम का पर्वत' कहते थे। इन्हीं पर्वतों के पार उत्तर भारत के मैदान थे।

इस पर्वतमाला में दक्षिण-पश्चिम की ओर चलने पर तो-ली नामक एक छोटा-सा राज्य पड़ता था। वहां के पर्वत बहुत ही ऊबड़-खाबड़ और अत्यन्त ढालू थे। चट्टान की एक सीधी दीवार की तरह, नीचे से १००० हाथ की ऊंचाई तक खड़े थे। उनके किनारे पहुंचने पर आंखें अस्थिर हो जाती थीं। चट्टानों को काटकर लोगों ने उनमें रास्ते और जीने बना रक्खे थे। उनकी संख्या कुल मिला कर ७०० थी और उनके नीचे रस्सियों से बना एक लटकता हुआ पुल था। इस पुल के द्वारा नदी पार की जाती थी, जिसके दोनों किनारों के बीच का फासला ८० कदम था। इन स्थानों का वर्णन 'नौ दुभाषियों के अभिलेख' में दिया हुआ है। चांग-चिएन और कान-यिंग में से कोई भी उस स्थान तक नहीं पहुंच पाया था। नदी को पार करने पर वू-चांग नामक देश मिलता था, जो वस्तुतः उत्तर भारत का ही एक अंग था। वहां तक पहुंचने पर हुई-चिंग, हुई-ता और ताओ-चेन-लो नागर देश में 'बुद्ध की छाया' की ओर आगे बढ़ गए, किन्तु फा-हिएन तथा उसके अन्य साथी वू-चांग में रुक गए और उन्होंने वहाँ ग्रीष्म-ऋतु का एकांत मौनव्रत संपन्न किया।

ग्रीष्म-ऋतु का एकांतवास समाप्त होने के बाद, वे दक्षिण की ओर उतरकर सू-हो-तो राज्य में पहुंचे। वहां से पूर्व की ओर जाकर वे गांधार देश में आए, जहाँ अशोक का एक वंशज, धर्मविवर्धन राज्य कर रहा था। गांधार से दक्षिण की ओर चलकर वे पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) पहुंचे। हुई-चिंग के बीमार पड़ जाने पर उसकी देख-भाल करने के लिए ताओ-चेन उसके साथ रह गया; हुई-ता पेशावर तक आया और अन्य साथियों से मिला और उसके बाद पाओ-युन तथा सेंग-चिंग के साथ वह चीन को लौट गया। हुई-चिंग ने 'बुद्ध कमंडलु मठ' में अपने प्राण त्यागे और इस घटना के बाद फा-ह्निएन नागर देश की ओर अकेला ही गया और वहाँ उसे हुई-चिंग तथा ताओ-चेन फिर मिले। दक्षिण की

ओर चलते हुए उन्होंने लघु हिमालय को पार किया। पर्वत के उत्तर एक छाया-युक्त स्थल में उन्हें ठंडी हवा का सामना करना पड़ा, जिससे वे काँपने लगे और मूक हो गए। हुई-चिंग और आगे नहीं बढ़ सका। उसके मुंह से सफेद फेन निकलने लगा और उसने फ़ा-हिएन से कहा—"अब मैं जीवित नहीं रहूंगा। आप लोग यहाँ से तुरन्त चले जाइए, जिससे हम सब यहीं न मर जाएं।" फ़ा-हिएन ने उसके शव को थपथपाया और करुणार्द्र होकर चिल्ला पड़ा—"हमारी मौलिक योजना.......असफल हो गई। यह भाग्य है। हम कर ही क्या सकते हैं?" तब अपने को नए उत्साह से भरकर वह फिर आगे बढ़ा और पर्वत को सफलतापूर्वक पार करके उसके दक्षिण की ओर स्थित लो-आई राज्य में अपने साथियों सहित पहुंचा। सिन्धु नदी पार करते समय पू-ना राज्य में होकर वे पी-तू देश में आए। वहाँ से मो-तौ-लो राज्य होकर पू-ना नदी पहुंचकर उन्होंने मध्यभारत में प्रवेश किया।

फा-हिएन ने मध्य भारत के एक बड़े अंश में यात्रा की और बौद्ध तीर्थ-स्थानों में पूजन-अर्चन किया। उसका मूल उद्देश्य विनय-ग्रन्थों की खोज करना था। इस निमित्त पाटलिपुत्र में वह दीर्घकाल तक रहा; किन्तु उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों में उसने देखा कि वहाँ शिक्षा मौखिक प्रणाली से दी जाती थी और इस कारण लिखित रूप में ऐसे ग्रन्थ बहुत कम उपलब्ध थे, जिनकी प्रतिलिपि वह कर लेता। अतएव वह मध्यभारत की ओर गया। वहाँ किसी महायान-मठ में उसे विनय की एक ऐसी प्रति मिली, जिसमें प्रथम बौद्ध-संगीति का वर्णन दिया हुआ था। इसके अतिरिक्त फा-हिएन ने अग्रलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त कीं—सात सहस्र गाथाओं में वर्णित सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के नियम, छः सहस्र गाथाओं युक्त संयुक्ताभिधर्म हृदय, २५०० गाथाओं वाला एक अन्य सूत्र—परिनिर्वाण वैपुल्य-सूत्र का एक अध्याय, जिसमें पाँच सहस्र गाथाएं थीं और महासांघिक अभिधर्म। परिणामस्वरूप फा-हिएन ने वहां तीन वर्ष रहकर संस्कृत-भाषा तथा संस्कृत-ग्रन्थों का अध्ययन किया और विनय-सूत्रों की प्रतिलिपि की।

जब ताओ-चेन मध्यदेश में आया और वहाँ उसने भिक्षुओं को अनुशासन के नियमों का पालन करते और प्रत्येक स्थिति में सामाजिक आचरण के उच्च स्तर को देखा, तब उसे खिन्नता के साथ अपने चिन देश के भिक्षु-समाज में प्रचलित अनुशासन की अपूर्ण और विकृत दशा का स्मरण हो आया, और उसने यह प्रार्थना की—"आज से लेकर बुद्ध-पद प्राप्त करने तक मेरा जन्म किसी

सीमांत देश में न हो।" और तदनुसार वह भारत में ही रहा, हान के देश को वापस लौटकर नहीं गया।

किन्तु फ़ा-हिएन ने, जिसका लक्ष्य संपूर्ण विनयों को हान के देश में ले जाना था, गंगा की धार का अनुसरण करते हुए, ग्रन्थों की खोज में समुद्र-तट तक पहुंचा और वहाँ से लंका गया और वहां दो वर्ष रहा। वहां वह महिशासक सम्प्रदाय का विनयपिटक, दीर्घागम और संयुक्तागम-सूत्र, और सम्यक्तत्व सन्निहार आदि ग्रन्थों की प्रतियां प्राप्त करने में सफल हुआ। यह सारे ग्रन्थ चीन में अज्ञात थे।

इन संस्कृत-ग्रन्थों को प्राप्त करने के उपरान्त उसने जहाज से यात्रा आरम्भ की। मार्ग में जहाज को प्रचंड और प्रतिकूल वायु का सामना करना पड़ा, उसमें छेद हो गया और वह खतरे में पड़ गया। तूफान कई दिन और रात चलता रहा। अन्त में तेरहवें दिन जहाज एक द्वीप के किनारे लगा। ज्वार के उतरने पर दरार खोजकर मरम्मत की गई और जहाज ने यात्रा फिर आरम्भ की। ९० दिन तक चलते रहने के बाद वे यवद्वीप नामक देश में पहुंचे। वहां से उत्तरपूर्व की ओर चलकर कैंटन की तरफ गए। उनको एक बार फिर प्रचंड वायु, वर्षा और तूफान का सामना करना पड़ा, जिसमें उनकी खाद्य सामग्री और पेय जल लगभग समाप्त ही होने को आ गया। अकस्मात् वे समुद्रतट की ओर जा निकले और वहां की सब्जियां देखकर समझ गए कि यह हान देश ही है। दो शिकारियों से उनको यह ज्ञात हुआ कि वह स्थान त्सिन-साम्राज्य के चिंग-चाउ का एक भाग और चांग-कुआंग के निकट की सीमा पर था। वहां का अधिकारी ली-आई उनको राजधानी में ले गया। फा-हिएन की इच्छा शीघ्र ही चांग-आन पहुंच जाने की थी; किन्तु अपने प्रस्तुत कार्य के महत्त्वपूर्ण होने के कारण वह दक्षिण की राजधानी नानकिंग को गया। अपनी यात्रा में फा-हिएन लगभग तीस देशों में हो आया था। चांग-आन से चलने के उपरान्त मध्यभारत पहुंचने में उसे छः वर्ष लगे थे, और वहाँ वह छः वर्ष से अधिक रहा। वापसी यात्रा में चिंग-चाउ पहुंचने में उसको तीन वर्ष लगे। इस प्रकार अपनी भारत-यात्रा में पन्द्रह वर्ष व्यतीत कर के वह ४१२ ई० में चीन लौटा।

इस लम्बी यात्रा में फ़ा-हिएन के साथ चिह्-येन, पाओ-युन, फ़ा-यांग तथा कुछ अन्य व्यक्ति थे। चिह्-येन पश्चिमी लिआंग-चाउ का निवासी था और उसका लक्ष्य भी बौद्ध-ग्रन्थों का संग्रह करना था। पाओ-युन भी चिह्-येन के स्थान का रहने वाला था और उसका उद्देश्य भारत के तीर्थ-स्थानों का दर्शन करना था।

वे हुई-चिएन, सेंग शाओ, और सग-चिंग के साथ पश्चिम की ओर यात्रा पर जा रहे थे। वे फा-हिएन को, त्सिन सम्राट् आन-ती के शासन के लुंग-आन-कालीन चतुर्थ वर्ष (४०० ई०) में, चांग-येह जिले में मिले। तुंग-हुआंग पहुंचने पर चिह-येन और पाओ-युन वहां कुछ दिन ठहरे। किन्तु वू-आई देश से वे फ़ा-हिएन के साथ फिर हो गए और चिह्-येन, हुई-चिएन और हुई-वाई यात्रा सम्बन्धी सुविधाओं को प्राप्त करने की आशा से काओ-चांग की ओर वापस गए। पाओ-युन और फ़ा-हिएन ने खुतन होकर त्सुंग-लिंग पर्वत को पार किया। वहां से वे पुरुषपुर पहुंचे जहाँ फ़ा-हिएन कुछ समय, ४०२ ई० तक, ठहरा और पाओ-युन चीन वापस चला गया। चिह्-येन पश्चिम की ओर यात्रा करके काश्मीर पहुंचा। वहाँ उसने तीन वर्ष (४०१–४०३ ई०) तक ध्यान-सम्प्रदाय का अध्ययन किया और बुद्धभद्र के साथ चीन वापस चला गया। फ़ा-हिएन का यात्रा-विवरण 'बौद्ध राज्यों के अभिलेख' के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि उस समय भारतवर्ष चीन में बुद्धदेश के नाम से प्रख्यात था।

फ़ा-हिएन और पाओ-युन के भारत जाने के बाद चीन में दो प्रसिद्ध भिक्षु हुए। इनमें से प्रथम चिह्-मेंग था, जो पीकिंग के ह्जि़न-फोंग का निवासी था। उसने बुद्धदेश के तीर्थों और वैपुल्य-सूत्र के विषय में सुनकर भारत जाने का निश्चय करके ४०४ ई० में चांग-आन से भारत की ओर प्रस्थान किया। उसके दल में १४ चीनी भिक्षु थे। भारत पहुंचने तक उनमें से केवल पाँच जीवित बचे और शेष मार्ग में ही चल बसे। भारत में चिह्-मेंग का दल पाटलिपुत्र में ठहरा। उसने महापरिनिर्वाण और सांघिक-विनय सम्बन्धी ग्रन्थों का संग्रह किया और अपने आने वाले मार्ग से वापस जाकर ४२८ ई० में चीन पहुंचा। ४३७ ई० में चिह्-मेंग चेन-तु गया और वहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। दूसरा भिक्षु फ़ा-योंग था, जिसका गोत्र-नाम ली था। वह पू-चाउ स्थित हुआंग-लुंग का निवासी था और उसने अपना नाम संस्कृत में धर्माकर रख लिया था। फ़ा-हिएन के उदाहरण से प्रेरित होकर उसने भी अपने प्राणों की चिन्ता छोड़कर भारत-यात्रा करने का संकल्प किया। उसने चौबीस भिक्षुओं के साथ चीन से प्रस्थान किया। वे मध्य भारत की ओर स्थलमार्ग से गए ; किन्तु पच्चीस में से बीस की मृत्यु रास्ते में ही हो गई। काश्मीर में फ़ा-योंग को अवलोकितेश्वर-महास्थान-प्रपाल-व्याकरण-सूत्र की पांडुलिपि प्राप्त हुई। उसके उपरान्त जल-मार्ग से दक्षिण भारत होते हुए वे कैंटन पहुंचे।

१. वू चांग—संस्कृत के उज्जैन का अनुवाद, जिसका अर्थ उद्यान या उपवन

है। ठीक उत्तरी पंजाब, जो अपने वनों, पुष्पों और फलों के लिए प्रसिद्ध शुभ-वस्तु—स्वात—के निकट था।

२. श्री वैटर्स के अनुमान के अनुसार यु-मो आधुनिक नक्शों का ऐक्टैश्क था।

३. सू-हो-तो सिन्धु नदी और स्वात के मध्य स्थित था।

४. 'लघु हिमालय' संभवतः कोहाट दर्रे की ओर का 'सफेद कोह' था।

५. लो-आई अफगानिस्तान का एक भाग था।

६. पि-तु, श्री आइटेल के अनुसार, भारत का वर्तमान पंजाब था।

७. मो-तोउ-लो भारत के उत्तर प्रदेश में स्थित मथुरा था।

(घ) कुमारजीव

कुमारजीव चीन में ४०१ ई० (याओ कुल के उत्तरकालीन चिग-वंशीय शासक हुंग-शिह् के राज्य के तृतीय वर्ष) में आया था और उसकी मृत्यु ४१३ ई० (उसी वंश के हुंग-शिह् के राज्य के पन्द्रहवें वर्ष) में हुई। तातार सेनापति ने उसे भारत से प्राप्त बौद्धधर्म-ग्रन्थों का अनुवाद करने का आदेश दिया। आज भी अनेक प्रमुख प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों के प्रथम पृष्ठ पर उसका नाम देखा जा सकता है।

(१) आरम्भिक जीवन—कुमारजीव का जन्म कियू-त्सी में ३४३ ई० में हुआ था। चीन में त्सिन सम्राट् कांग-ती राज्य कर रहा था। उसका पितामह भारतवर्ष से आकर कियूई-त्सी में बस गया था। उसका पिता कुमारयान अपनी जीवन-शैली में भारतीय बना रहा। वह सुशिक्षित, ईमानदार और दानशील था। उसने अपने दत्तक देश में बौद्धधर्म का तन्मयता के साथ प्रचार किया। एक उच्च सरकारी पद त्यागकर वह भिक्षु हो गया और त्सुंग-लिंग पर्वत जाकर वह कियू-त्सी राज्य में रहने लगा। यहाँ के सरदार की जीव नामक बीस वर्ष की एक बहिन थी, जो बहुत ही बुद्धिमती और उच्च चरित्र वाली थी। कुमारयान ने उससे विवाह कर लिया। जीव के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम कुमारजीव रक्खा गया, जिसने आगे चलकर चीनी बौद्ध-धर्म के इतिहास में अक्षय कीर्ति अर्जित की। कुमारजीव के नाम में उसके माता पिता दोनों के नाम सम्मिलित हैं।

कियू-त्सी राज्य में बौद्धधर्म के प्रवेश का समय अनिश्चित है। 'काई-युआन काल (७१३-७४१) में संकलित शाक्यमुनि के उपदेशों की सूची' के अनुसार पाई-येन नामक एक बौद्ध-अनुवादक वाई-काल में उस राज्य में रहता था। पश्चिमी त्सिन-वंश के धर्मरक्ष ने अपरिवर्त्य-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा

कुमारजीव

अवलोकित बोधिसत्त्व

में किया था ; किन्तु उसकी मूल संस्कृत प्रति कियू-त्सी राज्य से प्राप्त हुई थी। उसने विश्वप्रभास-सूत्र का अनुवाद भी पाई-फ़ा-चू के सहयोग से किया था। उसके अतिरिक्त पाई श्री मित्र नामक एक और प्रसिद्ध भिक्षु था, जो पूर्वी त्सिन-काल में चांग-आन से दक्षिण चीन आया था। कियू-त्सी से आने वाले भिक्षु अपनी राष्ट्रीयता का निर्देश करने के लिए अपने नाम मे 'पाई' शब्द का प्रयोग करते थे, और चीनी लेखक यह शब्द सदैव उनके नाम के आगे लिखा करते थे। इस से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कियू-त्सी में बौद्धधर्म का आगमन पश्चिमी त्सिन-काल में हुआ।

कुमारजीव अपनी माता के साथ उस बौद्ध-मंदिर में रहने के लिए चला गया, जिसमें वह स्थायी रूप से रहने लगी थी। सात वर्ष की आयु में उसने प्रति दिन एक सहस्र श्लोकों के हिसाब से बौद्धधर्म का अध्ययन आरम्भ किया। जब वह नौ वर्ष का हुआ, तब काश्मीर के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् बंधुदत्त, जो वहाँ के महाराजा का भाई था, से मिलने जाते समय कुमारजीव की माता उसको अपने साथ कियू-त्सी से काश्मीर ले गई। बंधुदत्त के विषय में कहा जाता है कि वह प्रतिदिन एक सहस्र श्लोक लिख सकता था और धर्मग्रन्थों के इतने ही श्लोक प्रतिदिन पढ़ सकता था। कुमारजीव ने उसके चरणों में बैठकर मध्यम आगम और दीर्घ आगम का अध्ययन किया, जिनमें चालीस लाख से अधिक शब्द हैं। जब वह बारह वर्ष का हुआ, तब उसकी माता उसे कियू-त्सी वापस ले गई। घर की ओर जाते समय युएह्-ची के उत्तर ओर के पर्वतों के निकट लोगों ने आग्रह करके उन्हें कुछ समय के लिए रोक लिया। कुमारजीव की अद्भुत प्रतिभा देखकर एक अर्हत चकित रह गया और बालक की रक्षा बहुत सावधानी से करते रहने का परामर्श उसकी माता को दिया, क्योंकि भविष्य में उसके द्वारा बौद्ध-धर्म की महान् सेवा होना निश्चित था। काशगर पहुंचने पर कुमारजीव की माता ने पुत्र सहित वहाँ एक वर्ष रहने का निश्चय किया। कुमारजीव ने अभिधर्म और एकोत्तम आगम का पाठ जाड़े की ऋतु में किया और वहाँ के राजा ने उससे धर्मप्रवर्तन-चक्र-सूत्र पर प्रवचन करने की प्रार्थना करके उसे सम्मानित किया। इस प्रकार कुमारजीव के माध्यम से काशगर और कियू-त्सी राज्यों में मैत्री का सूत्रपात हुआ।[१]

उस समय काशगर में बौद्धधर्म प्रचलित था। राजा और राजकुमार त्रिरत्न

---

१ दे० 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह'

में विश्वास करते थे और उन्होंने एक बौद्ध संगीति का आयोजन किया, जिसमें ३,००० भिक्षु सम्मिलित हुए थे। दक्षिण होकर भारत की ओर जानेवाले और उत्तर होकर कियू-त्सी जाने वाले मार्गों के महत्त्वपूर्ण अंश काशगर के अधीन थे। इसके अतिरिक्त पश्चिम में यगह-ची से मिले होने के कारण वहां वैपुल्य-सूत्र का प्रचार चीन के हान-काल में हो गया था। काशगर के पूर्व में सो-ची राज्य था, जहाँ से लोग महायान सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र खुतन की ओर जाते थे। खुतन के पश्चिम में कुवयार-राज्य था, जहां कि अधिकांश जनता महायान-सम्प्रदाय की अनुगामी थी। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि कुकार-राज्य चीनी तुर्किस्तान के आधुनिक यारकंद के स्थान पर था। सो-ची खुतन के अत्यन्त निकट होने के कारण काशगर में कुमारजीव को सो-ची के अनेक महायानी भिक्षुओं से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां अध्ययन करते समय कुमारजीव ने हीनयान के वैपुल्यवादी सिद्धान्त में अपना विश्वास त्याग दिया।[1]

'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में कुमारजीव के विषय में निम्नलिखित विवरण दिया हुआ है :—

"सो-ची राज्य के दो राजकुमार भिक्षु होना चाहते थे। उनमें से बड़े का नाम श्रीयान भद्र और छोटे का श्रीयान सोम था। यह कहा जाता है कि छोटा भाई बहुत विद्वान् और महायान-सम्प्रदाय का अनुयायी था। श्रीयान भद्र तथा अन्य विद्वानों ने उनसे बौद्धधर्म का अध्ययन किया। कुमारजीव ने भी उसके चरणों में बैठकर उससे शिक्षा पाई और उससे बहुत प्रभावित हुआ। सोम ने कुमारजीव को अनवलप्त (?) सूत्र समझाया। तब से कुमारजीव ने हीनयान को त्याग देने का निश्चय और वैपुल्य, प्राध्यमिक शास्त्र टीका तथा द्वादश निकाय-सूत्र का गम्भीरता से अध्ययन करने का संकल्प किया।"

तदुपरान्त कुमारजीव किपू-त्सी गया। वहां कुछ दिन ठहरकर वह लि-आंग-चाउ पहुंचा।

तातार सेनापति फू-चिएन ने ३५७ ई० में अपने को चाग-आन में 'महान् चिग के स्वर्ग का राजा' घोषित किया। उस समय कुमारजीव की आयु लगभग दस वर्ष की थी। उस समय के बाईस वर्ष बाद सेंग-शुन नामक एक चीनी भिक्षु कियू-त्सी से चांग-आन वापस आया। उसने अपने अभिलेख में कुमारजीव का जिक्र किया है। 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह' के अनुसार फु-परिवार के पूर्वकालीन

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में बुद्धयश की जीवनी

चिग-वंशीय चिएन-युआन के राज्य के १३ वें वर्ष में एक मंत्री ने राजा से कहा कि चीन की सहायता के लिए एक महान् मनीषी आने वाला है। इस पर फ़ू-चिएन ने कहा—"मैंने कुमारजीव का नाम पहले से सुन रक्खा है। मेरी समझ में, जिस मनीषी की बात तुम कर रहे हो, वह कुमारजीव ही हैं।" 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' के अनुसार फ़ु-कुल के पूर्वकालीन चिंग-वंशीय चिएन-युआन के शासन के १७ वें वर्ष (३७४ ई०) में शान-शान राज्य के शासक ने राजा फ़ू-चिएन से मध्य एशिया जीतने के लिए सेना भेजने की प्रार्थना की। अगले वर्ष सितम्बर महीने में फ़ू-चिएन ने अपने सेनापति लू-कुआंग को ७०,००० सैनिकों सहित कियू-त्सी पर आक्रमण करने के लिए भेजा; किन्तु प्रस्थान करने के ठीक पहले फ़ू-चिएन ने सेनापति से कह दिया कि वह वहाँ रहनेवाले मनीषी कुमारजीव को अवश्य लेता आए।

सेनापति लू-कुआंग ने कियू-त्सी की सेना को ३८४ ई० में पराजित कर दिया और अपने साथ कुमारजीव को लिआंग-हाउ ले आया। कुमारजीव को ४०१ ई० में चांग-आन भेजा गया।

(२) **चांग-आन में कुमारजीव का जीवन**—कुमारजीव ४०१ ई० में चांग-आन आया और वहीं १३ अप्रैल ४१३ ई० को सत्तर वर्ष की अवस्था में महामठ में उसका देहान्त हुआ। याओ-कुल के उत्तर-कालीन चिंग-वंशीय राजा उसको राज-गुरु मानकर सम्मान करता था। वह कुमारजीव के साथ दीर्घकाल तक विचार-विनिमय किया करता था। 'त्सिन-वंश की पुस्तक' में लिखा है कि उत्तरी चीन का उत्तरकालीन चिंग-वंशीय राजा 'नितान्त मुक्त उद्यान' को जाया करता था और भिक्षुओं को अपने साथ 'चेंग ह्जुअन भवन' चलने का आदेश स्वयं देकर, कुमारजीव के उपदेशों का श्रवण किया करता था। कुमारजीव चीनी भाषा अच्छी तरह जानता था। उसन बहुत-से ऐसे चीनी अनुवादों को एकत्र किया, जिनका अर्थ अस्पष्ट हो गया था। अतएव राजा और कुमारजीव ने, सेंग-लुएह, सेंग-चिएन, सेंग-चाओ, ताओ-शु, तान-शुन आदि ८०० भिक्षुओं की सहायता से महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद फिर से किया। इन कार्यों से बौद्धधर्म के सारे देश में फैलने, और गाँवों तक जा पहुंचने में बड़ी सहायता मिली।

उपर्युक्त चिंग-राजा स्वयं भी बौद्ध-सूत्रों पर उपदेश देता था और महायान तथा अभिधर्म दोनों को भलीभाँति समझता था। उसने 'तीन कालों पर सामान्य विचार-विनिमय' नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक लिखी, जिसकी प्रशंसा कुमार-जीव ने भी की। राजा ने एक बार कुमारजीव से कहा कि उसको इस बात का

गर्व है कि बौद्धधर्म का सब से महान् विद्वान् उसके राज्य में है। राजा के उत्तराधिकारियों ने कुमारजीव के पास, विवाह करके संतान छोड़ जाने के लिए, दस स्त्रियां भेजी। कुमारजीव ने सांसारिक सुख के लिए भिक्षु-जीवन का परित्याग करना स्वीकार कर लिया। उपदेश करते समय वह श्रोताओं से कहा करता था—"मेरे कार्यों का अनुसरण करो, मेरे जीवन का नहीं, क्योंकि वह आदर्श नहीं है। कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है, कमल को प्यार करो, कीचड़ को नहीं।"[1]

(३) **कुमारजीव का अनुवाद-कार्य**—'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' के अनुसार कुमारजीव द्वारा चांग-आन में अनूदित ग्रन्थों की संख्या तीन सौ से अधिक थी। उसके नीचे सैकड़ों बौद्ध विद्वान् कार्य करते थे, जो संस्कृत-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने तथा प्राचीन ग्रन्थों के संशोधन में उसकी सहायता करते थे। कहा जाता है कि महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र के अनुवाद करने में पांच सौ लिपिकों ने और सद्धर्म पुण्डरीक-सूत्र तथा ब्रह्मपरिपृच्छा-सूत्र के अनुवाद में दो हजार भिक्षुओं ने तथा विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र का अनुवाद करने में १२०० स्थानीय बौद्धों ने उसकी सहायता की। ६० वर्ष की आयु में वह महायान-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने में संलग्न था। अपने मरने के दिन तक उसने कभी अपना काम बन्द नहीं किया।

(४) कुमारजीव के जीवन और कार्य के विषय में काल-क्रमानुसार तालिका नीचे दी जा रही है:—

१. त्सिन-सम्राट् आन-ती के राज्य के लुंग-आन-कालीन पंचम वर्ष (४०१ ई०), अथवा उत्तर-कालीन चिंग-वंशीय हुंग-शिह् के राज्य के तृतीय वर्ष में, ५८ वर्ष की अवस्था में, २० दिसम्बर को, कुमारजीव अपने शिष्य सेंग-चाओ के साथ चांग-आन गया। सेंग-चाओ की आयु उस समय उन्नीस वर्ष की थी और वह लिआंग-चाउ से चांग-आन आया था। उस समय कुमारजीव के शिष्यों में सत्तर वर्षीय फा-हो सब से बड़ा, और उन्नीस वर्ष का सेंग-चाओ सब से छोटा था। कुमारजीव का दूसरा प्रसिद्ध शिष्य सेंग-जुई था, जिसने ध्यान-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अध्ययन उसके चरणों में बैठकर किया और आगे चलकर ध्यान पर द्वादशांग प्रतीत्य समुत्पाद नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा।

२. त्सिन-सम्राट् आन-ती के राज्य के युआन-ह्सिन-कालीन प्रथम वर्ष (४०२ ई०), अथवा उत्तरकालीन चिंग-वंशीय हुंग-शिह् के राज्य के चौथे वर्ष में

[1] दे० 'त्सिन-वंश की पुस्तक' और 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

कुमारजीव ने अमितायुर्व्यूह का अनुवाद चीनी भाषा में किया। उसी वर्ष पाँच मार्च को उसने भद्रकल्प-सूत्र का अनुवाद पूरा किया। ग्रीष्म-ऋतु में उसने महा-प्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद 'नितान्त-मुक्त उद्यान-पश्चिम-द्वार-दीर्घ-शलाका' नामक स्थान में आरम्भ किया। पहली दिसम्बर को उसने उक्त स्थान पर विशेष चिंता ब्रह्म-परिपृच्छा-सूत्र का अनुवाद चार भागों में करना प्रारम्भ किया।

३. उपर्युक्त कालों के क्रमशः द्वितीय और पंचम वर्ष (४०३ ई०), २३ अप्रैल को कुमारजीव ने महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद 'नितान्त-मुक्त-उद्यान' में आरम्भ किया और उसको उसी वर्ष १५ दिसम्बर को पूर्ण किया।

४. उन्हीं कालों के क्रमशः तृतीय और छठे वर्ष (४०४ ई०) में उसने प्रतिमोक्ष-सूत्र का अनुवाद भारतीय भिक्षु पुण्यतर की सहायता से किया।

५. त्सिन-सम्राट् आन-ती के राज्य के आई-ह्जसी-कालीन प्रथम वर्ष, अथवा उत्तर-कालीन चिंग-वंशीय हुंग-सिह के राज्य के सातवें वर्ष (४०५ ई०) में उसने १२ जून तक बुद्ध-पिटक-निग्रहनाम (?) महायान-सूत्र का अनुवाद चार भागों में किया। अक्टूबर में उसने संयुक्तावदान के एक भाग का अनुवाद किया। दिसम्बर में उसका महाप्रज्ञापारमिता-शास्त्र का अनुवाद १०० भागों में पूर्ण हुआ। उसी वर्ष उसने बोधि-सत्त्व-सूत्र और कुसुम-संकाय-सूत्र का अनुवाद तीन-तीन भागों में किया।

६. उपर्युक्त कालों के क्रमशः द्वितीय और आठवें वर्ष (४०६ ई०) में उसने ग्रीष्म-ऋतु में सद्धर्मपुंडरीक-सूत्र का आठ भागों में अनुवाद-कार्य महामठ में आरम्भ किया। कुशलमूल-सपरिग्रह-सूत्र का अनुवाद भी उसने दस भागों में समाप्त किया। उसी वर्ष उसका गुरु विमलाक्ष, जो काबुल का निवासी था, चांग-आन आया। अपनी असामान्य नीली आंखों के कारण वह 'नीलाक्षाचार्य' के नाम से भी प्रख्यात था। पहले वह कारशार में रहता था। मरुस्थल को पार करके वह चांग-आन पहुंचा।

७. उन्हीं कालों के क्रमशः तृतीय और नवें वर्ष (४०७ ई०) ने 'ध्यानधर्म की रूप-रेखा' का प्रारूप तैयार किया और सुरेश्वर बोधिसत्त्व-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में दो भागों में किया। भिक्षु धर्मयशस और धर्मगुप्त चांग-आन आए और 'पहाड़ी भेड़' मठ में ठहरे। वे संस्कृत-ग्रंथ सारिपुत्र-अभिधर्म की प्रतिलिपि अविकल रूप से कर चुके थे।

८. उन्हीं कालों के क्रमशः चतुर्थ और दसवें वर्षों, (४०८ ई०) में कुमारजीव

ने दस साहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता-सूत्र का अनुवाद ६ फरवरी से ३० अप्रैल तक के मध्य चीनी भाषा में किया।

९. उन्हीं कालों के क्रमशः पंचम और ग्यारहवें वर्षों (४०९ ई०) में उसने प्राण्य मूल-शास्त्र-टीका के चार भागों का तथा द्वादश निकाय का अनुवाद 'महामठ' में किया।

१०. उन्ही कालों के क्रमशः छठे और बारहवें वर्ष (४१० ई०) में भिक्षु बुद्धयशस कुमारजीव के साथ चांग-आन गया और दोनों ने मिलकर दश-भूमिका-सूत्र के चार खंडों का अनुवाद किया। उसी वर्ष बुद्धयशस ने मध्य-मठ में धर्मगुप्त-विनय का अनुवाद पूरा किया। वह कुमारजीव का गुरु था। लोगों ने उसे महा-विभाषा का नाम दे रक्खा था।

११. उन्हीं कालों के क्रमशः सातवें और तेरहवें वर्ष (४११ ई०) में कुमारजीव ने याओ-कुल के तत्कालीन राजा के अनुरोध करने पर सत्य-सिद्धि-शास्त्र का अनुवाद आरम्भ किया।

१२. उन्हीं कालों के क्रमशः आठवें और चौदहवें वर्ष (४१२ ई०) में कुमारजीव ने सत्य-सिद्धि-शास्त्र का, और यशस ने धर्मगुप्त-विनय का अनुवाद दस खंडों में समाप्त किया।

१३. उन्हीं कालों के क्रमशः नवें और पंद्रहवें वर्ष (४१३ ई०) में सत्तर वर्ष की आयु में कुमारजीव का देहान्त महामठ में १३ अप्रैल को हुआ। उसी वर्ष बुद्धयशस ने दीर्घ-आगम-सूत्र का अनुवाद करना आरम्भ किया।

कुमारजीव के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, जिनके अनुवादों के समय के विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है, निम्नलिखित हैं :—

१.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र	१ खंड
२.	सुरांगम समाधि	३ "
३.	बुद्ध के अन्तिम उपदेश का सूत्र	१ "
४.	दशभूमि विभाषा-शास्त्र	१४ "
५.	सूत्रालंकार-शास्त्र	१५ "

कुमारजीव की कृतियां मुख्यतया अनुवाद हैं। उसने स्वतंत्र ग्रन्थ बहुत कम लिखे। उसके अपने मौलिक ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१.	सत्तावाद पर प्रबन्ध	२ खंड
२.	महायान का स्वर्णिम अर्थ	१८ अध्याय
३.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता पर टिप्पणियां	१ खंड

४. विमल-कीर्त्ति-निर्देश-सूत्र पर टिप्पणियां १ खंड
५. लाओ-त्ज़े पर टिप्पणियाँ २ "

कुमारजीव का दर्शन-शास्त्र-त्रय पर आधारित था और वह नागार्जुन के सिद्धान्तों का भी आदर करता था। वह गोचर और अगोचर सत्ता दोनों को अस्वीकार करता था, और अगोचर का निर्देश निषेधात्मक शब्दों में करता था; किन्तु उसका दर्शन उच्छेदवादी नहीं था, वरन् उसका उद्देश्य उस परम सत्य की स्थापना करना था, जो मानवीय बुद्धि और अभिव्यक्ति के परे है और जो हमारी शब्दावली में, आध्यात्मिक है।

(च) ताओ-शेंग और सेंग-चाओ

कुमारजीव अपने शिष्यों के विषय मे बड़ा भाग्यवान था। जिस कार्य को उसने आरम्भ किया था, उसको उसके सुयोग्य शिष्यों ने बहुत वर्षो तक जारी रक्खा। उसके शिष्यों में ताओ-शेन और सेंग-चाओ सब से अधिक प्रसिद्ध हैं। ताओ-शेंग को लोग 'महा परिनिर्वाण का मुनि', और सेंग-चाओ को 'शास्त्र-त्रय का जनक' कहते थे।

कुमारजीव के अन्य शिष्यों का परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

१. **सेंग-जुई**—वाईराज्य स्थित चांग-ली का निवासी था। उसने ताओ-आन से शिक्षा पाई थी और उसके अनुवादकार्य में सहायता की थी। कुमारजीव के चांग-आन आने पर सेंग-जुई उसके साथ रहने लगा। उसकी मृत्यु ६७ वर्ष की आयु में हुई।

२. **ताओ-युंग**—उत्तरी चीन के लिन-लू जिले का निवासी था। उसने बारह वर्ष की आयु में मठ-प्रवेश किया और तीस वर्ष का होने तक समस्त बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन कर डाला। कुमारजीव के चांग-आन आने पर, वह उससे बौद्ध-दर्शन के विषय में प्रायः विचार-विनिमय किया करता था। ७४ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु पेंग-चेन में हुई। उसने 'विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र-टीका' तथा 'दशभूमिक-सूत्र-टीका' आदि ग्रन्थों की रचना की।

३. **तान-यिन**—उत्तरी चीन का था। उसने विनय का अनुवाद करने में कुमारजीव की सहायता की और स्वयं सद्धर्मपुंडरीक-सूत्र पर एक टीका तथा प्राण्य-मूल-शास्त्र पर टिप्पणियाँ लिखीं।

४. **सेंग-चिन**—नियांग जिले का रहने वाला था। उसका गुरु हुंग-चिआओ था, जिसने उत्तरी चीन के याओ-कुल के उत्तरकालीन चिंग-वंश के राजा

याओ-चांग को सद्धर्म–पुंडर क-सूत्र पढाया था। सेंग-चेंग कनफ्यूशियन मत के छः ग्रन्थों तथा बौद्ध त्रिपिटकों में पारंगत था। कुमारजीव के चांग-आन आने के समय सेंग-चिन बौद्ध प्रशासन का प्रधान था। उसकी मृत्यु ७२ वर्ष की आयु में महामठ में हुई।

५. **ताओ-हेंग**—लान-तिएन जिले का था और उसने बीस वर्ष की आयु में ही मठ-प्रवेश किया था।। कुमारजीव के चांग आने पर ताओ-हेंग उससे मिला और अनुवाद-कार्य में उसकी सहायता की। उन्हीं दिनों उत्तरकालीन चिग-वंश के राजा याओ-ह्जिन ने ताओ-हेंग तथा उसके मित्र ताओ-पिआओ से भिक्षु-जीवन छोड़कर सरकारी नौकरी कर लेने के लिए कहा। उन्होंने राजा के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और वे पहाड़ों की ओर भाग गए। ताओ-हेंग की मृत्यु त्सिन-सम्राट् आन-ती के राज्य के ई-ज़ी-कालीन तेरहवें वर्ष (४१७ ई०) में हुई।

६. **हु-जुई**—चि-चाउ का निवासी था। वह भारत की यात्रा कर चुका था और संस्कृत अच्छी तरह जानता था। संभवतः वह ताओ-आन का शिष्य था। उसने अपना अधिकांश जीवन लू-शान पर्वत में बिताया। लिय़ु सुंग-कालीन पेंग-चेन के सरदार का गुरु था। कुमारजीव द्वारा महापरिनिर्वाण-सूत्र प्रकाशित होने के बाद, हुई-जुई ने बौद्धधर्म के विरोधियों को बौद्ध-सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से 'समाधेय शंकाओं पर निबंध-माला' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा। उसकी मृत्यु ८५ वर्ष की अवस्था में हुई।

७. **हुई-येन**—होनान का रहने वाला था। बारह वर्ष की अवस्था में उसने कनफ्यूशस की सारी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। उसने सोलह वर्ष की अवस्था में मन्दिर-प्रवेश किया। कुमारजीव से मिलने तथा बौद्धधर्म संबंधी प्रश्नों पर उसका मत जानने के लिए वह चांग-आन गया। उसके उपरान्त वह नान-किंग वापस गया और वहाँ 'पूर्वी शान्ति' मठ में स्थायी रूप से रहने लगा। उसकी मृत्यु ८१ वर्ष की अवस्था में सन् ४४३ ई० में हुई।

८. **हुई-कुआन**—चिग-हो का निवासी और सद्धर्म-पुंडरीक का पंडित था। उसने हुई-युआन से शिक्षा पाई थी। उसके बाद वह कुमारजीव से मिलने चांग-आन गया। कुछ वर्ष उपरांत बुद्धभद्र के साथ वह स्थायीरूप से रहने के लिए लू-शान पहुंचा। वहाँ से चिआंग-लिन गए, जहाँ वे लगभग ग्यारह वर्ष रहे। अंत में वह नानकिंग के 'विद्यापीठ' मठ में स्थायीरूप से रहने लगा। उसने

'सद्धर्म-पुडरीक पर टिप्पणियाँ' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा। उसकी मृत्यु ७१ वर्ष की अवस्था में हुई।

ताओ-सेंग और सेंग-चाओ कुमारजीव के प्रसिद्धतम शिष्य हैं। उन्होंने बौद्ध-धर्म के श्रेष्ठतम ग्रन्थों का अनुवाद उत्कृष्ट चीनी भाषा में ही नहीं किया, वरन्-चीन में बौद्धधर्म पर वादविवाद में प्रमुख योग दिया। उन्होंने बौद्ध-दर्शन का एक अपना मत ही स्थापित किया।

ताओ-शेंग, जिसका गोत्रनाम वाई था, चू-लुन का रहने वाला था और उसका घर पेंग-चेन में स्थित था। अपनी बाल्यावस्था में वह असाधारण मेधावी और अलौकिक प्रतिभा-संपन्न था। आगे चलकर वह भिक्षु चु-फ़ा-ताई के संपर्क में आया और उससे प्रभावित होकर सांसारिक जीवन त्यागकर मठ में प्रवेश किया। कुछ दिनों बाद वह हुई-जुई और हुई-मेन के साथ चांग-आन गया और कुमारजीव का शिष्य बन गया। वहाँ उसने तन्मय होकर धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनको कंठस्थ करने तथा उनके सूक्ष्म पदार्थ को ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता दिखलाई। वह कहा करता था कि 'बुद्धत्व लाभ करने की संभावना उन लोगों में भी संन्निहित है, जो बौद्धधर्म के प्रति अविश्वासी हैं। क्योंकि जिनको (यिन और यान) के तत्त्व प्राप्त होते हैं, उनको निर्वाण तक पहुंच जाने का यथेष्ट हेतु उपलब्ध हो जाता है। त्रिगुणात्मक जगत् का जीवन भ्रमजन्य है। अविश्वासी जीववर्ग में हैं, इसलिए केवल वे ही बुद्धत्व से रहित कैसे हो सकते हैं?' उसकी मृत्यु लियू-सुंग सम्राट् वेन-ती के राज्य के युआन-चिआ-काल के ग्यारहवें वर्ष (४३४ ई०) में हुई।[१]

उसकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) निष्फल सत्कर्मो पर निबंध

(२) बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आकस्मिक बोधि पर निबंध

(३) प्रत्येक मनुष्य में बुद्धतत्त्व को व्यक्त करने पर निबंध

तांग-काल में ध्यान-संप्रदाय के सिद्धान्तों के मूल आधार यही ग्रन्थ थे।

ताओ-हेंग की अधिकांश कृतियाँ नष्ट हो गई हैं। उसके 'निष्फल सत्कर्मो पर निबंध' का तर्कप्रधान अंश उपलब्ध नहीं है; किंतु उसके समकालीन हुई युआन ने भी 'फल विवेचन' नामक ग्रन्थ इसी सिद्धांत की पुष्टि में लिखा था और इस कारण उसको ताओ-चेंग से प्रभावित माना जा सकता है। (ऐसा मत

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' और 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह'

प्रो० चेंग यिन-चु का है)। हुई-युआन के अनुसार कर्मों के फल को मनुष्य का मन आकर्षित करता है। इसलिए, यदि किसी का मन संकल्प से रहित हो जाए, तो कर्म करने पर भी वह बुद्ध द्वारा निर्दिष्ट हेतु और फल के चक्र में किसी (फलाकर्षक) हेतु को उत्पन्न नहीं कर सकेगा, और इस स्थिति में उसे सत्कर्मों का भी कोई पुरस्कार या फल नहीं प्राप्त होगा।

अब हम ताओ-शेंग की दूसरी कृति 'बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आकस्मिक बोधि पर निबंध' पर विचार करेंगे। इस निबंध के मौलिक सिद्धांत का परिचय हमें हिएह लिंग-युंग कृत 'परमतत्त्व-जिज्ञासा' में मिलता है। "एक बौद्ध विद्वान् ने एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वह प्रशांत बोधि को परम रहस्य मानता है। क्रमिक विकास द्वारा बोधि-प्राप्ति में उसका विश्वास नहीं है। एक-एक कदम चलकर आगे बढने की साधना वह मूर्खों के लिए उपयुक्त मानता है। उसके अनुसार अखंड बोधि से ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है।" जिस बौद्ध विद्वान् की ओर संकेत किया गया है, वह ताओ-शेंग ही है। अतः यह स्पष्ट है कि हिएह लिंग-युन के ग्रन्थ 'परम तत्त्व जिज्ञासा' में ताओ-शेंग का सिद्धांत ही प्रतिपादित है।

ताओ-शेंग की तीसरी कृति 'प्रत्येक मनुष्य में बुद्ध तत्त्व-व्यक्त करने पर निबंध' भी अप्राप्य है। किन्तु हिएह-लिंग युंग ने उसका उल्लेख अपने ग्रन्थ 'परम तत्त्व-जिज्ञासा' में किया है :—

"समस्त पदार्थों का वास्तविक लक्षण प्राणिमात्र का 'आदि मन' है। यह आदि मन ही उनका सत्य सहज स्वरूप है। इसी को 'बुद्ध-तत्त्व' कहते हैं। पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त कर लेना अपने मन में ही बोधि-प्राप्ति कर लेने और स्वयं अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेने के सदृश है।"

ताओ-शेंग ने इस विचार को व्यक्त करते हुए कहा है :—

"भ्रांति से विमुख होना परम सत्य को प्राप्त करना है, परम सत्य को प्राप्त करना मूल वस्तु को प्राप्त करना है।"

ताओ-शेंग के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१.	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र-टीका	३ खंड
२.	सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र-टीका	२ "
३.	महापरिनिर्वाण-सूत्र-टीका	६ "
४.	दशसाहस्रिक प्रज्ञापारमिता-टीका	१ "

५.	फल रहित सत्कर्मों पर निबंध	१ खंड
६.	बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आकस्मिक बोधि पर निबंध	१ "
७.	संवृत्ति और परमार्थ सत्य पर निबंध	१ "
८.	धर्मकाय अरूप पर निबंध	१ "
९.	'बुद्ध के पास कोई सुखावती नहीं है' पर निबंध	१ "
१०.	महापरिनिर्वाण पर ३६ प्रश्न	१ "

सेंग-चाओ—चांग-आन निवासी था। निर्धन होने के कारण वह पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार कर के अपनी जीविका अर्जन किया करता था। उसने लाओ-त्ज़े के सिद्धान्तों का अध्ययन बड़े अध्यवसाय से किया था। वह स्वभाव से आध्यात्मिक था। विमलकीर्ति सूत्र के प्राचीन अनुवाद को पढ़कर वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपना सारा जीवनक्रम तथा व्यवसाय ही बदल दिया और गृह त्यागकर भिक्षु हो गया। बीस वर्ष की अल्पायु में वह एक बौद्ध दार्शनिक के नाते विख्यात हो गया था। वह ४०१ ई० में चांग-आन आया और राजा याओ-ह्सिन ने सेंग-जुई के साथ उसको 'नितांत मुक्त उद्यान' में कुमारजीव की सहायता के लिए नियुक्त कर दिया। उसने कुमारजीव तथा अन्य विद्वानों को अनुवाद-कार्य में निरंतर सहायता पहुंचाई। पंचविंश टीका का अनुवाद (४०३-४०५ ई० में) समाप्त होने पर सेंग-चाओ ने 'प्रज्ञा-ज्ञान-नहीं है—एक विचार-विमर्श' नामक ग्रन्थ लगभग दो हज़ार शब्दों में लिखा। पूर्ण होने पर उसने अपना ग्रन्थ कुमारजीव को अर्पित किया। कुमारजीव ने ग्रन्थ की प्रशंसा की और सेंग-चाओ से कहा—"मेरी बुद्धि तो तुम से कम नहीं है, लेकिन मेरी भाषा तुम से अवश्य घटकर है।" सेंग-चाओ लगभग दस वर्ष तक कुमारजीव का अनुगामी रहा, अर्थात् उत्तरकालीन चिंगवंशीय हुंग-शिह के राज्य के दसवें वर्ष (४०८ ई०) तक। सेंग-चाओ की मृत्यु, कुमारजीव के देहांत के एक वर्ष बाद, इकतीस वर्ष की अवस्था में ४१३ ई० में हुई।

उसकी कृतियों में 'अपरिवर्तनशीलता-विमर्श' विशेष उल्लेखनीय है। इसमें उसने परिवर्तनशीलता और अपरिवर्तनशीलता के विरोध का समाधान करने का प्रयास किया है। सेंग-चाओ जिसको अपरिवर्तनशीलता कहता है, वह एक रहस्यात्मक प्रत्यय है और जिसे प्रायः स्थिति और गति समझा जाता है, उन दोनों से परे है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक घटना और प्रत्येक वस्तु काल के प्रवाह में अपने क्षण-विशेष से सदा के लिए जड़ित होती है; किंतु इन क्षणों का अनुक्रमण इस बात की भ्रांति उत्पन्न कर देता है कि एक गति की प्रक्रिया

हो रही है, जैसे चलचित्र की चलती हुई फ़िल्म के अनुक्रमिक चित्रों से गति का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। वस्तुतः चलचित्र की फिल्म का प्रत्येक चित्र गति-रहित तथा स्थिर होता है, और अन्य चित्रों से सदा अलग रहता है।

'कोई सत् असत् नहीं है—पर विमर्श' नामक कृति में सत् और असत् के विरोध का समाधान करने का प्रयास है। सामान्य धारणा के अनुसार असत् का अर्थ है 'जो कहीं हो ही नहीं', और 'सत्' का अर्थ है 'वह जो वास्तव में, यथार्थ में, कहीं हो।' वस्तुतः बहुत-सी वस्तुओं की सत्ता तो होती है, लेकिन फिर भी वे सत्य नही होतीं। एक दृष्टि से तो उनका अस्तित्व होता है; किंतु एक दूसरी दृष्टि से उनका अस्तित्व नहीं होता। सेंग-चाओ कहता है,—"यदि 'सत्' का अर्थ सत्तावान नहीं है, और असत् का अर्थ बिना कोई चिह्न छोड़े विनष्ट हो जाना नहीं है, तो सत् और असत् भिन्न शब्द होते हुए भी एक ही अर्थ व्यक्त करते हैं।" और इस प्रकार सत् तथा असत् में कोई विरोध सन्निहित नहीं है।

'प्रज्ञा ज्ञान नहीं है—एक विमर्श' में सामान्य ज्ञान और सत्य ज्ञान के मध्य विरोध का समाधान किया गया है। इस ग्रन्थ के चाओ-लुन नामक अध्याय में सेंग-चो ने लिखा है—"ज्ञान के विषय को जानना ही ज्ञान है। विषय के कुछ लक्षणों को हम चुन लेते हैं और उसी को 'ज्ञान' का नाम दे देते हैं। किंतु निरपेक्ष-सत्य स्वभावतः गुणों या लक्षणों से रहित होता है, अतः उस सत्य-ज्ञान का ज्ञान क्या संभव हो सकता है? किसी वस्तु के गुण या लक्षण, इस प्रश्न का उत्तर होते हैं कि वह वस्तु क्या है? किसी वस्तु के विषय में यह जानना कि वह क्या है, उसके गुणों या लक्षणों से अवगत होना है। परन्तु निरपेक्ष सत्य कोई 'वस्तु' नहीं है। वह वस्तुओं के लक्षणों से रहित है, और इसलिए उसे सामान्य ज्ञान द्वारा नहीं जाना जा सकता।"

आगे चलकर सेंग-चाओ ने फिर कहा है:—

"ज्ञान और ज्ञान का विषय, सत् और असत् दोनों में साथ-साथ रहते हैं।" "ज्ञात के द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति होने के बाद ज्ञान ज्ञात को उत्पन्न करता है। दोनों की उत्पत्ति एक साथ होने से, इस प्रक्रिया में कार्य-कारण-संबंध का आभास होता है। परंतु कार्य-कारण-संबंध सत्य नहीं है, और जो सत्य नहीं है वह निरपेक्ष सत्य—प्रज्ञा—नहीं है।" इस प्रकार, ज्ञान का विषय कार्य-कारण-संबंध से उत्पन्न होता है, लेकिन निरपेक्ष सत्य, अथवा प्रज्ञा ज्ञान का विषय नहीं हो सकती।

एक दूसरे दृष्टिकोण से प्रज्ञा का कार्य निरपेक्ष परम सत्य के ज्ञान को

प्राप्त करना है। इस प्रकार का ज्ञान ऐसे पदार्थो को अपना विषय बनाता है, जो सामान्य ज्ञान का विषय हो ही नही सकते। जैसा सेंग-चाओ ने कहा है, "निरपेक्ष परम सत्य की अपरोक्षानुभूति करने वाला सत्य ज्ञान, (सामान्य) ज्ञान के विषयों का उपयोग नहीं करता।" हम यह कह सकते हैं कि 'प्रज्ञा' की कोटि का ज्ञान ज्ञान नहीं है। "ज्ञानी पुरुष अपनी प्रज्ञा द्वारा निरपेक्ष परमसत्य को जो गुणमय है, प्रकाशित करता है।" "ज्ञानी वह है जो प्रशांत और तन्मय है, जो ज्ञानरहित है और इसलिए सर्वज्ञ है।" ज्ञान-रहित होकर भी सब कुछ जानना, ऐसा ज्ञान प्राप्त करना है, जो ज्ञान नहीं होता।

किंतु हमें यह नहीं मान बैठना चाहिए कि प्रज्ञा, परम निरपेक्ष सत्य का अस्तित्व, घटनाओं और वस्तुओं के इस जगत् के परे कहीं शून्य में है। वरन् इसके ठीक विपरीत, परम निरपेक्ष सत्य, घटनाओं और वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को प्र कट करता है। बौद्ध शब्दावली में "वह सभी वस्तुओं का वास्तविक धर्म है।" सेंग-चाओ की उपर्युक्त कृतियाँ चीनी बौद्ध-दर्शन के आधार-ग्रन्थ है।

सेंग-चाओ द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची निम्नलिखित है:—

१. प्रज्ञा ज्ञान नहीं है पर विमर्श
२. वास्तविक असत् नही होता पर विमर्श
३. वस्तुओं की अपरिवर्तनशीलता पर विमर्श
४. निर्वाण एक नाम नहीं है पर विमर्श
५. लियू-यि-मिंग के नाम सेंग-चाओ के पत्र
६. विमलकीर्ति-सूत्र की एक प्रस्तावना
७. लोंग-आगम की भूमिका
८. शतक शास्त्र की भूमिका
९. उत्तर-कालीन चिंग-वंशीय राजा का स्मारक
१०. भिक्षु कुमारजीव की अन्त्येष्टि के समय वक्तृता।

पिछले अध्याय में हमने देखा था कि कुमारजीव उन व्यक्तियों में से एक था, जिन्होंने भारतीय विचार-धारा का सम्यक रूप से चीन में पहले-पहल प्रचार किया। सेंग-चाओ उसका व्यक्तिगत शिष्य ही नहीं था, वह लाओ-त्जे और चुआंग-त्जी का प्रशंसक भी था। इसलिए उसकी कृतियों के 'चाओ-लुन' नामक समुच्चय में हमें बौद्धधर्म और ताओ-मत का एक रोचक मिश्रण मिलता है।

अध्याय ५

दक्षिण चीन में बौद्धधर्म

(क) लियू सुंग-काल में अनुवाद-कार्य

पूर्वी त्सिन-वंश के ४२० ई० के अंत से चीन के इतिहास में उस युग का आरम्भ माना जाता है, जो नान-पाई-चाओ-युग, अथवा छः दक्षिणी और उत्तरी राज-वंशों के ५८९ ई० तक चलने वाले युग के नाम से प्रख्यात है। एक अधिक लंबी अवधि पर आधारित चीनी इतिहासकारों द्वारा समय का विभाजन लु-चाओ अथवा षट्-वंश के नाम से प्रसिद्ध है। षट्-वंश से तात्पर्य हान-वंश के पतन से लेकर ५८९ ई० में चीन के पुनर्एकीकरण के मध्य समय तक शासन करने वाले छः राजवंशों से है। उनकी राजधानी वर्तमान नानकिंग थी। इन राजवंशों में वू, पूर्वी त्सिन, लियू-सुंग, दक्षिणी चि, लिआंग, और चेन सम्मिलित हैं। सुंग-वंश का संस्थापक लियु-यू था, जो अपने को एक हान-सम्राट् के भाई का वंशज होने का दावा करता था। उसने सैनिक वृत्ति अपना ली थी और उत्तरी राज्यों के विरुद्ध युद्ध में सेना का संचालन सफलतापूर्वक किया था। इन विजयों से प्राप्त तानाशाहों-जैसी शक्ति हाथ में आने पर लियू-यू ने उससे पूरा लाभ उठाया। उसने सिंहासनारूढ़ सम्राट् की हत्या कर के ४२० ई० में सुंग नामक एक नए राज-वंश की स्थापना की और नानकिंग को अपनी राजधानी बनाया। आगे आने वाले और अधिक प्रसिद्ध सुंग-वंश से भिन्न करने के लिए इस वंश को लियू-सुंग का नाम दिया जाता है। उसने वू-ती की पदवी धारण की, किंतु अपने स्वामियों की हत्या द्वारा प्राप्त शक्ति का उपभोग वह अधिक दिन नहीं कर सका। केवल तीन वर्ष राज्य करने के बाद उसकी मृत्यु ४२३ ई० में हो गई।

उसके बाद एक-एक करके उसके सात वंशज गद्दी पर बैठे और उन्होंने ४७९ ई० तक राज किया। अंत में लियू-सुंग-वंश के सेनापति हिआओ ताओ-चेन ने अंतिम दो सम्राटों का वध कर के सिंहासन पर अधिकार जमाया। उसका वंश दक्षिणी-च-आई-वंश कहलाता है।

यद्यपि वू-ती कनफ्यूशसवाद का संरक्षक था, वह बौद्धधर्म का विरोधी नहीं

था। 'सुंग-वंश की पुस्तक' में लिखा है कि उसके राज्य में बौद्धधर्म की समृद्ध दशा पर उसको बधाई देने के लिए भारत और लंका से अनेक राजदूत आए थे।

भारत-यात्राएं—लियू-सुंग युग की एक प्रमुख विशेषता तत्कालीन चीनी बौद्धों में भारत की यात्रा करने की प्रवृत्ति है। फ़ा-हिएन के ४१४ ई० में चीन लौटने पर इन चीनियों में बौद्धधर्म की जन्मभूमि—भारत—की यात्रा करने की लगभग रूमानी जैसी उत्कंठा जाग्रत हो उठी थी।

इस काल में भारत की यात्रा करने वाले प्रमुख चीनियों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं:—

(१) तान-ह्‌जुएह, वाई-ती आदि हो-ह्‌ज़ी ज़िले के रहने वाले आठ बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध-ग्रन्थों की खोज में भारत-यात्रा करने का निश्चय किया। वे खुतन होकर गए और वहाँ उन्होंने जो कुछ सुना, उसे लेखबद्ध कर लिया। वहाँ से तुरफ़ान होकर वे लिआंग-चाउ वापस आए। उन्होंने एक पुस्तक में बहुत-सी टिप्पणियाँ संगृहीत कीं। खुतन में उनको 'दमनक-सूत्र' अथवा 'मूर्ख और ज्ञानी का सूत्र' नामक एक अवदान-ग्रन्थ मिला, जो ४४५ ई० में प्रकाशित हुआ।

(२) फ़ा-योंग, सेंग-मेंग, तान-लांग इत्यादि २५ व्यक्तियों के एक दल ने चीन से भारत की यात्रा के लिए, लियू-सुंग सम्राट् वू-ती के राज्य के युंग-चू-काल के प्रथम वर्ष (४२० ई०) में प्रस्थान किया। यह दल मध्य भारत तक जाकर जल-मार्ग से कैंटन वापस लौटा।

(३) चू-चू किंग-शेंग, जो आन-यांग के ड्यूक के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, और जो उत्तरी लिआंग-वंशीय राजा का छोटा भाई था, प्रायः खुतन को जाया करता था। वहाँ वह ध्यान-सम्प्रदाय के आचार्य बुद्धसेन से गोमती-विहार में बुद्ध के सिद्धान्तों का अध्ययन किया करता था। सम्राट् वाई द्वारा लिआंग-वंश के विध्वंस के समय लौटने के उपरान्त वह दक्षिण की ओर गया और सुंगराज्य में शरण ली। वहाँ उसने अनेक बौद्ध-ग्रन्थों का अनुवाद किया।

(४) लियू-सुंग-काल के आरम्भ में ताओ-यु नामक एक चीनी बौद्ध अठारह अन्य भधिकारियों के साथ महापरिनिर्वाण-सूत्र की खोज में भारत गया। जब उसका दल कुआंग-चांग ज़िले में पहुँचा, तब जहाज में घायल हो जाने से ताओ-यु की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। उसने भारत के प्रत्येक भाग की यात्रा की थी और वह संस्कृत तथा अन्य भाषाएँ जानता था।

(५) सुंग-काल के मध्य में भारत-यात्रा के लिए जाने वालों की संख्या बहुत कम हो गई थी। लिआंग-चाउ का रहने वाला फ़ा-हिएन नामक चीनी भिक्षु

था, जो ४३० ई० में नानकिंग गया। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने भारत-यात्रा करने की शपथ ली। सुंग-सम्राट् फ़ाई-ताई के राज्य के युआन-हुई-कालीन तृतीय वर्ष (४७५ ई०) में उसने पश्चिम की यात्रा की। वह स्ज़ूच्वान और होनाऊ प्रान्तों में होकर खुतन पहुंचा, जहाँ उसे शरीर के पन्द्रह अवशेष और अवलोकितेश्वर-धारणी (विनाश अथवा पाप पर लिखित) की एक प्रति प्राप्त हुई, जिसे वह अपने साथ नानकिंग लाया।

भारतीय भिक्षुओं का चीन में आगमन—दक्षिण चीन में अनुवाद-कार्य का प्रारंभ, त्रिराज्यों में से एक, वू-राज्य के समय से हुआ। त्सिन-काल के सूत्रों का अनुवाद विशेषकर प्रचुर मात्रा में हुआ। प्रमुख अनुवादकों का परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

(१) हुई-युआन ने, जो लू-शान में पुंडरीक-संप्रदाय का भिक्षु था, बौद्ध-ग्रन्थों के अनुवाद-कार्य को प्रोत्साहन दिया। संघदेव ने अभिधर्म के सिद्धान्तों का, और बुद्धभद्र ने ध्यान-मत का प्रचार किया। दोनों ने लू-शान की यात्रा की। वहाँ से वे नानकिंग गए और उसी समय में हुई-कुआन, चिह्-येन, और ताओ-चुन दक्षिण तक आए। उस समय (४१३ ई०) तक फ़ा-हिएन उत्तर चीन से नानकिंग पहुँच गया होगा। वह 'विद्यापीठ-मठ' में ठहरा था। बुद्धभद्र और हुई-कुआन यद्यपि उसी समय चिन-चाउ गए थे, किन्तु वे सेनापति लियू-यू के साथ ४१७ ई० में नानकिंग लौट आए। उनकी एक दूसरे से भेंट पहले चांग-आन में हो चुकी थी। फिर उन्होंने साथ-साथ भारत की यात्रा की। इसलिए नानकिंग पहुँचने पर उनके उल्लास का अनुमान हम कर सकते हैं। हुई-येन और हुई-आई नामक दो प्रसिद्ध भिक्षु, 'पूर्वी शान्ति-मठ' में अपने ठहरने की अवधि में लोगों की श्रद्धा के पात्र बन गए थे। सुंगों की राजधानी नानकिंग में 'विद्यापीठ-मठ' के विषय में यह जनश्रुति चल पड़ी थी कि वहाँ ध्यान-मत की एक 'गुफा' है। जिसमें बौद्धमतानुयायी अपने सिद्धान्तों पर वाद-विवाद करते हैं। वह 'गुफा' विद्यापीठ-मठ ही था।

(२) बुद्धभद्र नानकिंग में, त्सिन सम्राट् ऐन-ती के राज्य के आई-ह्जी कालीन ग्यारहवें वर्ष (४१५ ई०) में आया और अगले वर्ष के नवम्बर तक वहाँ रहा। उसने विद्यापीठ मठ में, फ़ा-हिएन के सहयोग में, सांघिक-विनय का चीनी भाषा में अनुवाद चालीस खंडों में किया। अगले अक्तूबर में उन दोनों ने महापरिनिर्वाण-सूत्र का अनुवाद छः खंडों में किया। उपर्युक्त काल के चौदहवें वर्ष इन दोनों ग्रन्थों का संशोधन किया गया। इन दोनों ग्रन्थों की मूल प्रतियाँ

फ़ा-हिएन अपने साथ लाया था। एक वर्ष के बाद बुद्धभद्र ने अवतंसक-सूत्र (?) का अनुवाद विद्यापीठ-मठ में आरम्भ किया, जो सुंग-सम्राट् वू-ती के राज्य के युंग-चू-कालीन द्वितीय वर्ष (४२१ ई०) में पचास खंडों में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ का संस्कृत मूल खुतन से चिह्-फ़ा-लिन लाया था। बुद्धभद्र ने युंग-चू-काल के तृतीय वर्ष में मंजुश्री-प्रतिज्ञा-सूत्र का भाषान्तर चीनी में किया। उसकी मृत्यु सुंग-सम्राट् वेन-ताई के राज्य के युआन-चिआ-कालीन छठे वर्ष (४२९ ई०) में हुई।

बुद्धजीव नामक एक काश्मीरी बौद्ध, सुंग-सम्राट् फ़ाई-ती के चिंग-पिंग-कालीन प्रथम वर्ष (४२३ ई०) में चीन आया और यांग-चाउ के 'अज़दहा-प्रकाश' मठ में रहा। उसने ताओ-शेंग, चिह्-शेंग, लुंग-कुआंग, हुई-येन और तुंग-आन के सहयोग से महाशासक-विनय का अनुवाद चीनी भाषा में किया।[1]

(३) गुणवर्मा के पूर्वज काश्मीर के राजा थे। उसने अपनी बाल्यावस्था में प्रखर बुद्धि का परिचय दिया। बौद्ध-सूत्रों का अध्ययन करके उसने ध्यान-मत के सिद्धान्तों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया और त्रिपिटकाचार्य के नाम से विख्यात हुआ। सिंहासन को अस्वीकार कर के वह भिक्षु हो गया। उसने जल-मार्ग से लंका की यात्रा की और वहाँ ४०० ई० में पहुँचा। वहाँ से वह जावा गया, जहाँ राजा ने बुद्ध के संदेश-वाहक के रूप में उसका बड़ा आदर किया। उसकी ख्याति आस-पास के देशों में फैल चुकी थी। अपने-अपने देश में धर्म का उपदेश करने के निमित्त उसे आमंत्रित करने के लिए उधर के देशों ने उसके पास दूत भेजे। उस समय चीन में भी हुई-कुआन, हुई-यान इत्यादि अनेक भिक्षु गुणवर्मा की ख्याति से अवगत हो चुके थे और उससे मिलना चाहते थे। युआन-चिआ-काल के प्रथम वर्ष (४२४ ई०) में इन भिक्षुओं ने गुणवर्मा को चीन में आमंत्रित करने की प्रार्थना राजा से की। राजा ने चिआओ-चाउ के मैजिस्ट्रेट को, गुर्णवर्मा को लाने के लिए, एक जहाज़ का प्रबंध करने का आदेश दिया। उसी समय हुई-कुआन फ़ा-चांग, ताओ चुंग और अन्य शिष्यों को गुणवर्मा के पास निमंत्रणपत्र देकर भेजा और जावा-नरेश से प्रार्थना की कि बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए उसको चीन की सुंग-राजधानी में भेज दें। अनुकूल पवन रहते ही गुणवर्मा ने एक नौका में चीन की ओर प्रस्थान किया और दक्षिण चीन में कैंटन में उतरा। एक वर्ष वहाँ रहने के बाद, सुंग-सम्राट् वेन-ती के युआन-चिआ-काल के आठवें वर्ष (४३१ ई०) में, वह नानकिंग गया और वहाँ के जेतवन-विहार में स्थायी रूप से रहने लगा। सुंग-नरेश ने उसके प्रति उच्चतम आदर-भाव प्रदर्शित किया। तदुपरान्त

१ दे० प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण

उसने सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र और दशभूमि-सूत्र पर जेतवन-ि हार में कई मास तक प्रवचन दिया[1]।

गुणवर्मा के नानकिंग में आने के पहले वहाँ ईश्वर नामक एक भारतीय भिक्षु और था, जिसने यांग-चेन के मैजिस्ट्रेट के अनुरोध पर संयुक्त-अभिधर्म-हृदय-सूत्र का अनुवाद आरम्भ किया और उसके उन्नीस अध्यायों का भाषांतर करके कार्य बन्द कर दिया। गुणवर्मा के नानकिंग पहुंचने पर उससे इस अनुवाद को पूर्ण कर देने की प्रार्थना की गई। उसने अनुवाद को तेरह भागों में पूर्ण कर दिया। उसने २६ भागों में उपालि-परिपृच्छा का अनुवाद भी किया। महायान विनय दक्षिण में पहले ही आ चुका था। नानकिंग में उसने केवल नौ महीने बिताए और पैंसठ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई[2]।

(४) **गुणभद्र**—लियू-सुंग कालीन महान् अनुवादकों में से एक था। वह मध्य भारत का निवासी था और महायान-मत में पारंगत होने के कारण उसे लोग 'महायान' ही कहने लगे थे। बौद्धधर्म ग्रहण करने के उपरान्त अपना देश छोड़-कर ४२१ ई० में वह चीन आया। पूर्व की ओर जाने वाले एक जहाज में उसने अपने देश से प्रस्थान किया और यात्रा में अनन्त कष्टों और संकटों को झेला। कैन्टन पहुँचकर वह 'मेघ-पर्वत-मठ' में कुछ दिनों तक रहा। वहां से वह नान-किंग गया, जहाँ सम्राट् तथा सुग-कालीन विद्वानों ने उसका बड़ा सत्कार किया।

गुणभद्र द्वारा चीनी भाषा में अनूदित सभी ग्रन्थों का वर्णन करना संभव नहीं होगा। उसने अपना अनुवाद-कार्य नानकिंग और चिन-चाउ में रहकर किया था। नीचे केवल उसके महत्त्वपूर्ण अनुवादों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

हीनयान संप्रदाय के ग्रन्थों में उसने संयुक्त-आगम का, जिसकी प्रति फ़ा-हिएन लंका से लाया था, महायान संप्रदाय के क्षुद्रक अपरिमितायुष के एक सूत्र और रत्न-करंडक-व्यूह-सूत्र का, दृश्य जगत् को सत्य स्वीकार करने वाले और राहुल को अपना संस्थापक मानने वाले वैभाषिक संप्रदाय की सर्वास्तिवादी शाखा के वसुमित्र-रचित ग्रन्थ अभिधर्म-प्रकरण-पद-शास्त्र का अनुवाद किया। धर्मलक्षण संप्रदाय के संतति-सूत्र तथा मुक्ति-सूत्र का अनुवाद भी उसने किया,

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

२ दे० 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह' और 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

जो संधि-निर्मोचन-सूत्र के अन्तिम दो अध्यायों के अंश हैं। इस समय भारत-वर्ष में असंग और वसुबंधु की मृत्यु के उपरान्त धर्मलक्षण के सिद्धान्तों का प्रचार हो रहा था (लगभग ३५० ई०)। चीन में भी उनका प्रवेश हुआ। सुंग-सम्राट् वेन-ती के राज्य के युआन-चिआ-कालीन १३ वें वर्ष में गुणभद्र ने वैपुल्य-सूत्र का श्रीमालादेवी सिंहनाद के नाम से अनुवाद किया, जिसकी प्रशंसा चीन के प्रमुख भिक्षु ताओ-यू ने की। इस ग्रन्थ के सिद्धान्तों का सार ताओ-आन के सिद्धान्तों के सदृश होने के कारण वह बौद्ध लोगों के अध्ययन का एक प्रमुख ग्रन्थ बन गया[1]।

उसकी मृत्यु पचहत्तर वर्ष की आयु में सुंग सम्राट् मिंग ती के राज्य के ताई-शिह-कालीन चतुर्थ वर्ष (४६८ ई०) में हुई। उसने चीन में चौंतीस वर्ष कार्य किया और सत्तर ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिनमें से केवल अट्ठाईस ही शष हैं।

अन्य प्रमुख भिक्षु—गुणभद्र के अतिरिक्त तीन और अनुवादक विशेष उल्लेख के पात्र हैं। उनके नाम हैं—संघवर्मा, धर्ममित्र और कालयशस। संघ-वर्मा एक भारतीय भिक्षु था, जो सुंग-सम्राट् वेन-ती के राज्य के युआन-चिआ-कालीन ग्यारहवें वर्ष (४३४ ई०) में नानकिंग आया। गुणवर्मा की मृत्यु के बाद वह विनय का प्रमुख उपदेष्टा हो गया। गुणवर्मा ने संयुक्त-अभिधर्म-हृदय-शास्त्र का अनुवाद प्रारम्भ किया था, किन्तु वह पूरा नहीं हो सका था। हुई-कुआन और पाओ-युन नामक दो चीनी भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर उसने उप-रोक्त शास्त्र के अपूर्ण अनुवाद में हाथ लगाया और उसे एक साल में समाप्त कर दिया। यह अनुवाद ४३५ ई० में प्रकाशित हुआ। उसी वर्ष उसने सर्वास्तिवाद-निकाय-विनय-मातृका को प्रकाशित किया। वह लगभग ४४२ ई० में भारत लौट गया[2]।

धर्ममित्र काश्मीर का निवासी था, जो उत्तर-पश्चिमी स्थल-मार्ग से खुतन और तुंग-हुआंग होकर ४२४ ई० में नानकिंग आया था। उसने नानकिंग और चिन-चाउ में ध्यान-मत का उपदेश किया। उसने, 'अनित्यता, दुःख, शून्य, अनात्मा और निर्वाण पर पंच-ध्यानों' का अनुवाद किया। हस्तिककक्ष्य का भाषान्तर भी उसने चीनी में किया। उसके उपरान्त हुई-ची के मैजिस्ट्रेट मेंग-ई के निमंत्रण पर वह वहाँ गया और धर्म का उपदेश किया। मेंग-ई बौद्धधर्म के संरक्षकों में से था; किन्तु फिर भी कालयशस को अपने साथ

---

१ दे० वही

२ दे० वही

ले जाने में असफल रहा। कालयशस भारतवर्ष से ४२४ ई० में चीन आया था। उसने अमितायुध्यन-सूत्र और भैषज्यराज्य-समुद्गति-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया[१]।

चीन में आने वाले राजदूत—लियु-सुंग-वंश के युआन-चिआ-काल (४२४-४५३ ई०) में चीन तथा भारत के मध्य स्थित अनेक देशों के राजदूत चीन में आए। इस काल के पहले तीस वर्षों से अधिक समय के बीच इन देशों से कोई राजदूत चीन नहीं आया था। उनका मुख्य उद्देश्य सुंग सम्राट् को चीन में बौद्धधर्म की समृद्ध दशा पर बधाई देना और प्रचुरतर धार्मिक आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त करना था। सुग-सम्राट् के नाम अराकान के राजा पुष्पवर्मा के दो पत्र अभी तक ऐतिहासिक स्मृति-चिह्नों के रूप में सुरक्षित हैं। उसने अपने राज्य के विषय में लिखा था कि वह हिमालय की छाया में स्थित है, जिसका हिम उसमें प्रवाहित सरिताओं को पोषित करता रहता है। उसने चीन की प्रशंसा, उसे संसार में संमृद्धतम राज्य और उसके शासकों को संसार को सभ्य बनाने वाला, कहकर की थी। एक अन्य भारतीय राजा जीवभद्र के पत्र में चीन के उसी सम्राट् की प्रशंसा मुक्तकंठ से की गई है।

एक अन्य राजदूत सुंग-सम्राट् के नाम पत्र लेकर लंका से चीन आया। उस पत्र में यह लिखा था कि यद्यपि हमारे दोनों देशों के बीच समुद्र और स्थल-मार्गों से तीन वर्षों में पूरी होने वाली दूरी है, फिर भी उन में आवागमन निरन्तर होता रहता है। इसके अतिरिक्त लंका के राजा ने बौद्धधर्म के प्रति अपने पूर्वजों की भक्ति का उल्लेख भी किया था।

(ख) महापरिनिर्वाण-सूत्र का दक्षिणी संस्करण

धर्मरक्ष नामक एक काश्मीर-निवासी भारतीय भिक्षु था। उसने पहले हीनयान का अध्ययन किया। उसके उपरान्त उसने महापरिनिर्वाण-सूत्र पढ़ा और आगे चलकर महायान मत के सिद्धान्तों से परिचित हुआ। वह महापरिनिर्वाण सूत्र, बोधिसत्त्व-प्रतिमोक्ष] और बोधिसत्त्व-शील-सूत्र की एक-एक प्रति अपने साथ सदैव रखता था। वह कियू-त्सी-राज्य की ओर दुबारा गया और वहाँ से तुंग-हुआंग की ओर गया। महानिर्वाण-सूत्र की भूमिका में लिखा हुआ है कि धर्मरक्ष नामक भारतीय भिक्षु मध्यभारत का रहने वाला और जाति का ब्राह्मण था। तुंग-हुआंग पहुंचकर वह वहां कई वर्ष रहा।

---

१ दे० वही और नानजिओ कृत 'बौद्ध-त्रिपिटक-सूची'

सेनापति मेंग-ह्जुन ने त्सिन-सम्राट् आन-ती के राज्य के ई-ह्जी कालीन आठवें वर्ष (४१२ ई०) में अपना प्रधान सैन्य-केन्द्र कु-त्सांग ले जाकर अपने को ह्रो-ह्जी का राजा घोषित किया। उसके वंश को, 'उत्तरी-लिआंग-वंश (३९७-४३९ ई०) के ह्जुआन शिह' नामक उपाधि दी गई। सेनापति मेंग-ह्जुन ने पश्चिमी लिआंग को जीता और चियू-चुआन तथा तुंग-हुआंग को भी अपने राज्य में मिला लिया। धर्मरक्ष संभवतः उत्तरी लिआंग-वंश के ह्जुआन-शिह्-काल के दसवें वर्ष (४२१ ई०) में कू-त्सांग आया था।

धर्मरक्ष द्वारा अनूदित ग्यारह ग्रन्थों की सूची निम्नलिखित है[1] :—

१.	महापरिनिर्वाण-सूत्र	३६ खंड	अनुवाद २३ अक्तूबर ४२१ ई० के लगभग पूरा हुआ।	
२.	महासनिपात-सूत्र	२९ खंड	४२० ई० में	प्रकाशित
३.	शून्य-सूत्र	५ खंड	४१६ ई० में	प्रकाशित
४.	महामेघ-सूत्र	४ खंड	४१६ ई० में	प्रकाशित
५.	करुण-पुंडरीक-सूत्र	१० खंड	४१९ ई० में	प्रकाशित
६.	सुवर्ण-प्रभास-सूत्र	४ खंड	४१८ ई० में	प्रकाशित
७.	सागर नागराज-सूत्र	४ खंड	४१७ ई० में	प्रकाशित
८.	बोधिसत्त्वचर्या-निर्देश	८ खंड	४१८ ई० में	प्रकाशित
९.	बोधिसत्त्व प्रतिमोक्ष-सूत्र	१ पुस्तक	तुंग-हुआंग में	प्रकाशित
१०.	उपासक-शील	७ खंड	४१७ ई० में	प्रकाशित
११.	उपासक-शील	१ खंड	दिसम्बर ४२१ ई० में	प्रकाशित

धर्मरक्ष के सभी अनूदित ग्रन्थ महायान संप्रदाय के हैं। महापरिनिर्वाण-सूत्र का अनुवाद उसका मुख्य ग्रन्थ है, जो 'उत्तरी पुस्तक' के नाम से प्रसिद्ध था। दक्षिणी चीन में प्रचारित होने पर वह 'दक्षिणी पुस्तक' के नाम से विख्यात हुआ। दक्षिणी संस्करण को नानकिंग में दो चीनी भिक्षुओं—हुई-कुआन और हुई-येन—ने तैयार किया था। उसका प्रचलन दक्षिण चीन के प्रत्येक भाग में हो गया था। महापरिनिर्वाण-सूत्र का सार-सिद्धान्त यह है कि समस्त प्राणियों में बुद्ध-स्वभाव (प्रकृति) निहित है, और धर्मकाय (असली शरीर) अमर है, जो काल के प्रभाव से कभी भी विकृत नहीं होता। चीनी बौद्धधर्म पर इस ग्रन्थ का गंभीर प्रभाव पड़ा।

---

१ दे० 'त्रिपिटक-अनुवाद-अभिलेख-संग्रह'

ग) बौद्धधर्म और चाई-सम्राट्

सुंग-वंश के प्रधान-सेनापति ह्जिआओ ताओ-चेन ने अन्तिम दो सम्राटों की हत्या कर के सिंहासन पर अधिकार जमाया। इस प्रकार सुंग-वंश का अन्त हो गया।

सेनापति ह्जिआओ ताओ-चेन अपने वंश का प्रथम सम्राट् हुआ और अपनी राजधानी नानकिंग में रहने लगा; किन्तु उसका वंश सुंग-वंश से भी कम दिन चला। उसकी मृत्यु सिंहासन पर बैठने के तीन वर्ष के भीतर ही हो गई, और उसके छः उत्तराधिकारियों में से केवल एक ने ही दो वर्ष से अधिक राज्य किया, शेष चार मार डाले गए थे; किन्तु भारतीय संस्कृति और बौद्धधर्म के प्रति चाई-वंश (४७९-५०२) के शासकों की अनुकूल भावना में भी कोई अन्तर नहीं आया।

(१) **राजवंश का बौद्धधर्म के पक्ष में होना**—राज-परिवार का त्ज़ी-लिआंग नामक एक राजकुमार था, जो अपने दूसरे नाम चिंग-लिंग के राजकुमार के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, चाई-वंश के संस्थापक काओ-ती का विशेष विश्वास-पात्र था। द्वितीय सम्राट् वू-ती के राज्य-काल में त्ज़ी-लिआंग की पदोन्नति हुई और वह प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। वह साहित्य-प्रेमी और बौद्धधर्म का अनुयायी था। वह प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं से धर्म का प्रचार करने के लिए सदैव आग्रह किया करता था। उसने भिक्षुओं से अवतंसक-सूत्र और महासनिपात-सूत्र (?) की प्रतिलिपि छत्तीस खंडों में करवाई। वह सदा बौद्धों का सत्संग किया करता था और दार्शनिक वाद-विवाद में स्वयं भी भाग लेता था। स्वयं उसने अनेक बौद्ध-ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ एकहत्तर खंडों में की थीं। बौद्धधर्म पर उसने बहुत-से निबन्ध भी लिखे, जो सोलह पुस्तकों के एक सौ खंडों में संगृहीत हैं। उसने अपना पहले का नाम बदलकर चिन-चु-त्ज़ी रख लिया था, जिसका अर्थ है, शुद्ध जीवन वाला। विनय और शील का अनुसरण वह अत्यन्त भक्ति के साथ किया करता था। बौद्धधर्म का प्रचार करने में वह सदा प्रयत्न-शील रहता था और उसने बीस खंडों में 'शुद्ध जीवन का द्वार' नामक एक पुस्तक भी लिखी। बौद्ध-सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करने के लिए एक संगीति का आयोजन करने में उसने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया था[१]।

---

१ दे० 'दक्षिणी ची-वंश की पुस्तक' और '(बुद्धोपदेश के) प्रचार और दृष्टान्तों (पर प्रकीर्ण रचनाओं) का विस्तृत संस्करण'

बोधिधर्म

वसुबन्धु बोधिसत्त्व

चाई सम्राट् वू-ती के युंग-मिंग कालीन सातवें वर्ष (४८९ ई०) की जुलाई में त्-ज़ी लिआंग ने ५०० से अधिक साहित्यकारों और प्रमुख बौद्ध-भिक्षुओं की एक संगीति 'सार्वभौमिक धर्मोपदेश' मठ में आमंत्रित की । धर्म का प्रचार करने के लिए उसमें तिंग-लिन, सेंग-जौ, ह्ज़िएह-स्सी, और हुई-त्ज़ू के भिक्षु बुलाए गए थे । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि त्-ज़ी लिआंग बौद्धधर्म का अनन्य और परम उत्साही भक्त था । इसके अतिरिक्त चाई-सम्राट् काओ-ती और वू-ती भी बौद्धधर्म के पक्ष में थे । काओ-ती ने राजकीय मठ में जाकर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा का पूजन किया था । सम्राट् वू-ती ने भिक्षुओं के कृत्यों और उनसे संबंधित विषयों के निरीक्षण के लिए अपने दरबार में बौद्ध-मैजिस्ट्रेट नामक अधिकारी के पद का विधान किया, और उस पद पर हुई-ची को, जो दक्षिण चीन में अपनी धर्मनिष्ठता के लिए प्रसिद्ध था, दस मठीय नगरों का प्रशासक नियुक्त किया । उसके उपरान्त एक राजाज्ञा द्वारा सम्राट् ने फ़ा-हिएन और ह्जुआन-चांग को नानकिंग की चिंग ह्वा नदी के दोनों ओर भिक्षु-संबंधी विषयों का प्रबंध करने के लिए नियुक्त किया । तदुपरान्त भिक्षुओं के मध्य मुकदमों का निर्णय साधारण दीवानी और फ़ौजदारी के कानूनों के अनुसार न होकर बौद्ध शील और विनय के नियमों और बौद्ध-अधिकारियों अथवा मठ के प्रधान भिक्षु द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार होने लगा ।[1]

(२) **चीन आने वाले भारतीय भिक्षु**—चाई-वंश के २५ वर्ष के स्वल्प राज्य-काल में संस्कृत-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने के लिए भारतवर्ष से पांच भिक्षु आए । उनमें संघभद्र विशेष महत्त्व रखता है । वह अपने साथ बुद्धघोष कृत समंतपसादिका की एक प्रति लाया था । इसमें अठारह भाग और ४४० पृष्ठ हैं । हर पृष्ठ पर ४०० चीनी अक्षर हैं । यह कहा जाता है कि बुद्धघोष ४३० ई० में लंका आया था और वहाँ से ४५० ई० में अपनी कृतियों के साथ ब्रह्मदेश गया । इस पाली ग्रन्थ की पांडुलिपि को निश्चय ही उसका अनुवादक संघभद्र अपने साथ चीन ले गया होगा और उसको संभवतः लंका में उसकी प्रति प्राप्त हुई होगी । चीनी परम्परा के अनुसार संघभद्र विनय-विभाषा को ४८९ ई० में कैंटन लाया था और उसने उसका अनुवाद चीनी भाषा में किया । ऐसा प्रतीत होता है कि वह थेरवादी सम्प्रदाय का हीनयानी

---

१ दे० 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह' और 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों के अवशेष'

था[१]। धर्म-कृतयशस, जो मध्यभारत का रहने वाला था, चाई सम्राट् काओ-ती के शासन-काल (४८१ ई०) में चीन आया था। उसने अभितार्थ-सूत्र का अनुवाद किया। एक अन्य भारतीय भिक्षु, महायान (४८३-४९३ ई०) ने पंचशत-जातक-सूत्र और स्थविर सम्प्रदाय के विनय का अनुवाद किया। किन्तु यह दोनों अनुवाद अब अप्राप्य हैं। धर्ममति खुतन होकर चीन आया था। उसने भी दो ग्रन्थों का अनुवाद किया ; किन्तु वे नष्ट हो गए। गुणवृद्धि भी एक मध्य भारतीय भिक्षु था। उसने ४९३-४९५ ई० में तीन ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिनमें से दो उपलब्ध हैं।[२]

(घ) बौद्धधर्म और लिआंग वू-ती

लिआंग-वंश का प्रथम शासक ह्जिआओ येन, जो आगे चलकर वू-ती के नाम से प्रसिद्ध हुआ, पूर्वगामी राज-वंश का दूर का संबंधी था। जैसा उस समय प्रायः हुआ करता था, उसने ची-वंश के दुर्बल शासक से अपने पक्ष में राज्य त्याग करवाकर सिंहासन प्राप्त किया। उसने लगभग एक अर्धशताब्दी (५०२-५५७ ई०) तक नानकिंग में राज किया। उसके शासन-काल में दक्षिणी चीन में अपेक्षाकृत शान्ति और समृद्धि का वातावरण रहा। आरम्भ में वू-ती बौद्धधर्म का अनुयायी नहीं था, वरन् ५१० ई० तक वह एक कट्टर ताओवादी था। कहा जाता है कि उसका कुटुंब ताओ मत का अनुयायी था। वू-ती के धर्म-परिवर्तन, ताओ मत को त्यागकर बौद्धधर्म स्वीकार करने का कारण चाई-वंश के राजकुमार त्सी-लिआंग के साथ उसका साहचर्य था, जिसके माध्यम से उसे कतिपय प्रसिद्ध बौद्धों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला[३]।

वू-ती के राज्य-काल में सारे देश में बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति हुई। राजधानी नानकिंग में सात सौ से भी अधिक बौद्ध मठ थे। बौद्धधर्म के सिद्धान्तों की विवेचना और धर्मोपदेश करने के लिए हज़ारों प्रसिद्ध भिक्षु और साहित्यिक वहाँ एकत्र हुआ करते थे। लिआंग-वंश के शासन-काल के पहले तुग ताई सूजी, आई-चिग सूज़े और महाप्रज्ञा पारमिता जैसे वृहत् मठ कहीं नहीं थे। सम्राट् के

१ दे० ताकाकुसु कृत पाली एलीमेंट्स इन चाइनीज बुद्धिज्म (चीनी बौद्ध धर्म में पाली तत्त्व)

२ दे० 'काई युआन-काल (७१३-४१ ई०) मे (संकलित) शाक्यमुनि-उपदेश-सूची'।

३ दे० 'सुई-कालीन पुस्तक के उत्कृष्ट साहित्य का अभिलेख'

महल में ह्वा लिन-युआन या पुष्प उपवन नामक एक उद्यान था, जिसमें धर्मोपदेश हुआ करता था। तुंग ताई-स्ज़ी मठ नगर के बाहर स्थित था। सम्राट् कई बार भिक्षु हो जाने का संकल्प कर के उस मठ को चला गया, किन्तु लोगों ने प्रत्येक बार सम्राट् को वापस ले जाने के लिए मठ को विपुल धन-राशि भेंट की और वे सम्राट् को पुनः सिंहासन तथा गृहस्थाश्रम में लौटा ले गए[१]।

उस समय बौद्ध-दर्शन-शास्त्र का और भी विकास हुआ और बहुत-से विद्वान्, शास्त्रत्रयी, महापरिनिर्वाण-सूत्र और अवतंसक-सूत्र के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के सामूहिक प्रयास में जुट गए। अनेक बौद्ध-ग्रन्थों के दो-दो संस्करण प्रकाशित किए गए। सम्राट् की आज्ञा थी कि उन ग्रन्थों का संपादन इस तरह किया जाए कि बौद्धमत के सार मर्म के जिज्ञासुओं को उनमें पूर्ण सामग्री मिल जाए। उसने एक लब्धप्रतिष्ठ चीनी भिक्षु सेंग-यू को 'लिआंग सम्राट् वू-ती के राज्य के तिएन-चिएंग-कालीन चौदहवें वर्ष (५१५ ई०) में संकलित—त्रिपिटक-अनुवाद-अभिलेख-संग्रह' के नाम से बौद्ध-ग्रन्थों के एक सूचीपत्र का संपादन करने की आज्ञा दी। इसके अतिरिक्त उसने सेंग-शाओ को ह्वा लिन-युआन में संगृहीत पुस्तकों के सूचीपत्र को संपादित करने की भी आज्ञा दी। दो वर्ष के बाद भिक्षु पाओ-चांग को उसका संशोधन करने की आज्ञा दी गई[२]।

सम्राट् वू-ती के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार चाओ-मिंग त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) का भक्त था। समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करके उसने अपने महल में त्रिरत्न-विहार नामक एक भवन बनवाया, जिसमें वह विद्वान् बौद्ध-भिक्षुओं को धर्म-चर्चा के लिए आमंत्रित किया करता था। सम्राट् वू-ती का द्वितीय पुत्र चियेन वेन ती और सातवाँ पुत्र युआन ती, दोनों बौद्धधर्म के अनुयायी थे और उसका प्रचार करते रहते थे। यह राजकुमार उच्चशिक्षा प्राप्त और चरित्र में अपने पिता के सदृश थे। देश में उपद्रव होने के कारण, दुर्भाग्यवश साहित्य के क्षेत्र में उनको विशेष सफलता नहीं मिली[३]।

फ़ना से चीन तक भिक्षुओं की यात्राएँ—हम इसका उल्लेख पहले ही कर चुके हैं कि सम्राट् वू-ती के राज्य-काल में बौद्धधर्म शीघ्र ही सारे चीन में फैल गया

---

१ दे० 'दक्षिण चीन के बौद्ध-मन्दिरों के अभिलेख' और 'दक्षिणी चीन का वृत्तान्त'

२ दे० 'क्रमागत राज-वंशों के त्रिरत्न संबंधी अभिलेख'

३ दे० 'लिआंग-काल का वृत्तांत'

था, जिसके फल-स्वरूप बाहरी देशों से चीन का सम्पर्क अधिक विकसित हुआ। कोरिआ के राजा ने एक दूत बौद्ध-ग्रन्थों, और विशेपतः महापरिनिर्वाण-सूत्र की प्रतियों की याचना करने के लिए भेजा। ब्रह्मदेश के राजा ने अपना दूत और एक चित्रकार चीनी सम्राट् तथा उसके घरेलू जीवन के चित्रों को तैयार करने के लिए भेजा।

'लिआंग-वंश की पुस्तक' से इसके अतिरिक्त यह विदित होता है कि उन दिनों चीन ने सुदूर पूर्व के पूर्वकालीन हिन्दू-साम्राज्य से, जो चीन में फ़्-ना के नाम से विख्यात था, घनिष्ठ संबंध स्थापित कर रक्खा था। कम्बोज और कोचीन से पत्र-व्यवहार होता रहता था। फ़्-ना के सम्राट् जयवर्मा का राज्य-काल विशेष महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि उसने चीन से सांस्कृतिक संबंध स्थापित किया था। जयवर्मा ने ५०३ ई० में अपना राजदूत चीन सम्राट् के दरबार में, उपहार-स्वरूप मूंगे की बनी एक बुद्ध की प्रतिमा के साथ भेजा। उसने ५११ ई० और ५१४ ई० में दो राजदूत फिर भेजे। फ़्-ना के दूसरे राजा रुद्रवर्मा ने चीनी सम्राट् वू-ती को उपहार में देने के लिए बुद्ध के एक बारह फीट लम्बे केश के साथ चीन भेजा। इस सांस्कृतिक संपर्क की अतिरिक्त साक्षी इस तथ्य से भी मिलती है कि फ़्-ना के दो बौद्ध-भिक्षु चीन में स्थायी-रूप से बस गए थे और उन्होंने अनेक धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद किया। इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है:—

मंद्रसेन (चीनी रूप—जान-शेंग) फ़्-ना से ५०३ ई० में चीन आया था और उसने ग्यारह जिल्दों में तीन ग्रन्थों का अनुवाद किया। किन्तु चीनी भाषा में दक्ष न होने के कारण उसके अनुवाद विश्वास के पात्र नहीं हो सके। सुभूति अभिधर्म का अच्छा विद्वान् था और उसने ५०६ से ५३० ई० तक ग्यारह ग्रन्थों का अनुवाद 'जीवन प्रकाश महल' में किया[1]।

सम्राट् वू-ती के राज्य-काल का सब से महत्त्वपूर्ण और विद्वान् भिक्षु सेंग-यु था, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। शील और विनय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह भिक्षु फ़ा-यिन के पास बहुत दिन रहा, और अन्त में यथेष्ट-रूप से उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह अपने गुरु से भी अधिक प्रसिद्ध हो गया। राजकुमार त्ज़ी-लिआंग उससे विनय का उपदेश करने का आग्रह किया करता था। उसके प्रवचनों में सदैव हज़ारों की संख्या में श्रोता एकत्र हुआ करते थे। उसकी

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों का अवशेष'

मृत्यु ७४ वर्ष की आयु में सम्राट् वू-ती के राज्य के तिएन-चिएंग-कालीन १७ वें वर्ष (५१८ ई०) में हुई। बौद्धधर्म से संबंधित उसने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें कुछ का परिचय निम्नलिखित है :—

(१) 'त्रिपिटक अनुवाद अभिलेख संग्रह'। यह चार भागों में विभक्त है, (क) प्रत्येक सूत्र के इतिहास से संबंध रखने वाला, (ख) लेखकों के नाम और उनके जीवन की रूप-रेखा, (ग) सूत्र की रचना का समय और हेतु, और (घ) अनुवादकों के जीवन का रेखाचित्र।

(२) 'शाक्य अभिलेख'। इसका आरम्भ शाक्य-कुल की वंश-परम्परा से और अन्त शाक्यमुनि के धर्म की विध्वस्त दशा के वर्णन से होता है। इसमें शाक्यमुनि, उनके माता-पिता, संबंधियों और शिष्यों की अलग-अलग जीवनियाँ और विहारों तथा चैत्यों के वर्णन दिए हुए हैं।

(३) '(बौद्ध धर्म के) प्रचार और व्याख्या करने के लिए (स्फुट रचनाओं का) संग्रह'। यह चौदह खंडों में है।

भिक्षु सेंग-यु केवल बौद्ध शील और विनय में ही पारंगत नहीं था, मूर्तिकला में भी कुशल था। येन-ह्जी में स्थित बुद्ध की प्रतिमा उसी की बनाई हुई है।

पाओ-चिह और फ़ू-हुंग। लिआंग और चाई-काल में ध्यान-मत के अनुयायी बहुत कम थे। उसका प्रचार लिआंग-काल में किसी समय हुआ। पाओ-चिह और फ़ू-हुंग ध्यान मत के सिद्धान्तों के अनुयायी थे। दोनों अनेक रहस्यमयी सिद्धियों से संपन्न थे और लोग उन्हें भय-मिश्रित आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके विषय में अनेक अविश्वसनीय और चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रचलित थीं। 'प्रमुख बौद्ध भिक्षु' का लेखक हुई-चिआओ पाओ-चिह के साथ रहा था और उसने अपने ग्रन्थ में उस (पाओ-चिह) के ऊपर एक अध्याय लिखा। ह्जू-लिंग और फ़ू-हुंग समकालीन थे। ह्जू-लिंग ने फ़्-हुंग के जीवन पर एक निबंध लिखा, जिसका शीर्षक 'द्वितरु देवालय के फू-ता-शिह का समाधि लेख' था। हुई-चिआओ और ह्ज्-लिंग नामक भिक्षुओं द्वारा लिखित उपर्युक्त भिक्षु-द्वय के जीवनवृत्त के आधार पर उनकी संक्षिप्त जीवनी मैं नीचे दे रहा हूँ :—

पाओ-चिह, चू-परिवार का वंशज और चीन-चेन का निवासी था। श्रमण होकर वह अपने गुरु सेंग-चिएन का अनुचर बन गया और नानकिंग के पुण्य उपवन विहार में रहने लगा। उसने ध्यान मत का अध्ययन किया। लियू-संग-काल में उसका दैनिक जीवन दूसरों से भिन्न था। वह निराले कपड़े पहनता, विलक्षण भोजन करता और किसी एक स्थान पर नहीं रहता था। उसके केश

कई इंच लंबे थे और वह दाढ़ी-मूंछ नहीं बनवाता था। एक छड़ी, जिसके ऊपर एक शीशा और चाकू लगा हुआ था, अपने हाथ में लिए वह सड़कों पर विचरा करता था। अपने शरीर पर कई गज लंबा कपड़ा ढीला-ढाला लपेटे रहता था। चाई-काल में उसने लोगों को अपनी सिद्धियाँ दिखाना आरम्भ किया। वह प्रायः बहुत दिनों तक निराहार व्रत रक्खा करता था, जिसके अंत में उसकी अंतरात्मा उसको आकाशवाणी की तरह आदेश दिया करती थी। कभी-कभी वह कविताएं लिखने लगता था और साहित्यिक लोग इसकी कवित्व-शक्ति का आदर करते थे। किंतु समाट् चाई वू-ती के विचार में यह सब अंधविश्वासी जनता को ठगने के लिए पाओ-चिह् के लटके थे। अतः उसने उसको नानकिंग में नजरबंद करवा दिया।

लिआंग वू-ती पाओ-चिह् में बहुत श्रद्धा रखता था और राजा होने पर उसने उसको मुक्त कर दिया। उसने एक राजादेश निकालकर यह घोषित किया कि यद्यपि पाओ-चिह् के शरीर और कार्य इस संसार में रहते हैं, उसकी आत्मा स्वर्ग में उड़ती रहती है। न पानी उसके वस्त्रों को भिगो सकता है और न आग उसके शरीर को जला सकती है। सर्प और व्याघ्र भी उसको कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। जहाँ तक बौद्धधर्म के ज्ञान का प्रश्न है, वह हीनयान मत में पारंगत है, और अपनी आध्यात्मिक अनुभूति से वह संतों के पद पर पहुंच गया है। एक समय के बाद पाओ-चिह् ने राजमहल में जाना कतई बंद कर दिया, यद्यपि उसके पहले वह वहाँ प्रायः जाया करता था। उसके विषय में यह भी कहा जाता था कि उसकी आत्मा उसके शरीर से निकलकर संसार में सर्वत्र पर्यटन किया करती थी। सम्राट् वू-ती के राज्य के निएन-चिएंग-कालीन तेरहवें वर्ष (५१४ ई०) में, कहा जाता है कि पाओ-चिह् ने ईश्वर को प्रसन्न करके जलवृष्टि करवाई थी। उसकी मृत्यु ९७ वर्ष की अवस्था में स्वाभाविक रूप से हुई और उसके शरीर को नानकिंग में चुंग-पहाड़ियों की उपत्यका में समाधि दी गई।

फ्-हुंग एक विख्यात चीनी बौद्ध था। उसने चौबीस वर्ष की आयु में गृहत्याग कर के तुंगयांग ज़िले की सुंग पहाड़ियों में एक एकांत स्थान में शरण ली। अपने ध्यान की अवधि में वह निराहार रहा करता था। वहाँ का मैजिस्ट्रेट वांग-ह्जिआओ उस पर संदेह करता था और इसलिए वह उसके अनुष्ठानों पर कड़ी निगाह रखता था। उसने एक बार वांग को घर में ही बीस दिन कैद रखने की आज्ञा भी निकाल दी थी। बंदी होने पर अपने को जीवित रखने के लिए

उसको किसी आहार की आवश्यकता ही नहीं रही। जब यह समाचार बाहर फैला, तब देश के कोने-कोने से लोग उसको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए आने लगे। उसके भक्तों ने बहुत-सा धन इकट्ठा कर लिया, जिसका उपयोग सुंग-पहाड़ियों में, जहाँ वह ध्यान-मनन किया करता था, एक मठ बनवाने में किया गया। मठ का नाम 'द्वि-तरु' (दो पेड़) रक्खा गया। सम्राट् वू-ती ने एक बार उसका सत्कार अपने महल में किया था और उसने वहाँ एक प्रवचन दिया। वह ध्यान मत का उपदेश जनता को नित्य किया करता था और साथ ही विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र पर भी प्रवचन देता रहता था। उसने 'चरम चेतना का शिलालेख' नामक एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी और एक 'आवर्तक धर्मशास्त्र' बनाया, जिसमें एक चक्कर करने वाले आधार-स्तंभ में आठ दिशाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले आठ पहलू थे और हर पहलू पर धर्म-ग्रन्थों के उद्धरण लिखे हुए थे। उसकी मृत्यु ५९६ ई० में हुई।

चेन-वंश के शासन-काल में बौद्धधर्म—लिआंग-वंश के अंतिम सम्राट् को अपने एक अधिकारी चेन-पो ह्सिन द्वारा, जो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ह्यान का वंशज था, राज्य छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। चेन-पो-ह्सिन ने नानकिंग में चेन-वंश की स्थापना की (५५७ ई०); किंतु उसकी मृत्यु राज्य-प्राप्ति के दो वर्ष बाद ही हो गई। उसके उत्तराधिकारियों ने लगभग तीस वर्ष राज्य किया। इस वंश के शासक बौद्धधर्म के पक्ष में थे और उनके धार्मिक कार्य लिआंग सम्राट् वू-ती के समकक्ष थे। चेन-वंशीय वू-ती ने संन्यास लेने का निश्चय करके 'महाराजकीय मठ' में प्रवेश किया; किंतु अपने मंत्रियों के अनुरोध करने पर घर वापस चला आया। हाउ-चू ने सिंहासन पर बैठने पर गृह-त्याग कर 'धर्मोपदेश मठ' में प्रवेश करने का निश्चय किया।[1] चेन-वंश का राज्य-काल स्वल्प और उपद्रवों से पूर्ण होने के कारण उस काल के प्रमुख भिक्षुओं के विषय में कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं है। इस काल के कतिपय अनुवाद अवश्य प्रसिद्ध हैं, जैसे फ़ा-लांग कृत सूत्र-त्रय, परमार्थ कृत श्रद्धोत्पाद-शास्त्र आदि। तिएन-ताई सिद्धांत के अनुयायी चिह्-आई ने सुई और तांग-कालीन विचार-धारा को प्रभावित किया था।

चेन-काल में साहित्यिक वर्ग बौद्ध भिक्षुओं के प्रति अतिशय मैत्री-भाव रखता था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् ह्सलिंग ने सम्राट् को 'पूर्वी महल' में प्रज्ञापारमिता-सूत्र

---

१ दे० 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों के अवशेष'

का उपदेश किया था। चिआंग-त्सुंग ने बीस वर्ष का होने पर अपने को बौद्धधर्म का दृढ़ अनुयायी घोषित किया। ध्यान मत के आचार्य त्सी से बोधिसत्त्व-विनय और शील का अध्ययन करने वह लिआंग-याओ मठ को गया। उसने वहाँ से सरकारी पद पर फिर आना पसन्द नहीं किया। एक दूसरे लेखक याओ-चा ने अपनी युवावस्था में, नानकिंग के 'उज्ज्वल आशीष' मठ के भिक्षु शांग से बोधिसत्त्व-विनय और शील ग्रहण किया। वह सरकारी नौकरी करता था, लेकिन अपना वेतन देवालयों के निर्माणार्थ दान दे दिया करता था।[१]

(च) परमार्थ और श्रद्धोत्पाद-शास्त्र सम्प्रदाय

योगाचार्यभूमि-शास्त्र और श्रद्धोत्पाद-शास्त्र नामक ग्रन्थ धर्मलक्षण संप्रदाय के थे। दक्षिण चीन के परमार्थ ने धर्मलक्षण संप्रदाय के संस्थापक-द्वय अश्वघोष और वसुबंधु के मूल सिद्धान्तों को पुनरुज्जीवित किया। अड़तालीस वर्ष की आयु में वह दक्षिण चीन आया और दो वर्ष उपरांत राजधानी नानकिंग पहुंचा। सम्राट् लिआंग वू-ती की इच्छा थी कि वह बौद्धधर्म-ग्रंथों का अनुवाद कर दे, किंतु गृह-युद्ध के कारण यह संभव नहीं हो सका। इसके बाद कैंटन और फू-किएन की ओर घूमता रहा। वहाँ के स्थानीय राज्यपाल ओ-यांग ने उसका बड़ा स्वागत किया और धर्म की व्याख्या करने की प्रार्थना की। इकहत्तर वर्ष की अवस्था में ५६९ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

परमार्थ पश्चिमी भारत में उज्जैन नगर का एक श्रमण था। उसका जन्म एक सुसंस्कृत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था और वह साहित्य एवं कला में निष्णात था। लिआंग-वू-ती के शासन-काल के अंत से लेकर चेन ह्जुआन-ती के शासन-काल के आरंभ तक वह चीन में चौबीस वर्ष रहा। लिआंग-काल (५४६—५५७ ई०) में उसने उन्नीस ग्रन्थों का अनुवाद किया और उस वंश के पतन के बाद भी अपना कार्य जारी रखकर चेन-काल (५५७-५६९ ई०) में इक्यावन ग्रन्थों का अनुवाद पूरा किया। उसने कुल मिलाकर लगभग ३०० खंडों में सत्तर ग्रन्थ मूल-संस्कृत से चीनी भाषा में अनूदित किए।

परमार्थ के जीवनवृत्त के विषय में विभिन्न स्थानों से प्राप्त सामग्री काल-क्रमानुसार नीचे प्रस्तुत की जा रही है[२]:—

---

१ दे० 'चेन-वंश की पुस्तक'

२ सूचनाओं के आधार निम्नलिखित हैं :—

(क) 'दक्षिणी चीन के वृत्तांत में फ़ुना पर अभिलेख'

लिआंग-वंश द्वारा बौद्धधर्म-ग्रन्थों की खोज के निमित्त भेजा सद्भाव-मंडल ५३९ ई० में मगध पहुंचा। उस मंडल के साथ फू-ना (कम्बोज) का राजदूत भी था, जो चीन से अपने देश जा रहा था। मगध-सम्राट् जीवगुप्त अथवा कुमारगुप्त ने चीनी सम्राट् की प्रार्थना सहर्ष स्वीकार की और परमार्थ को बहुत-से बौद्ध ग्रन्थों के साथ चीन भेजने का निश्चय किया।

१. लिआंग सम्राट् वू-ती के शासन के चुंग-ता-तुंग-कालीन प्रथम वर्ष (५४६ ई०) में अड़तालीस वर्ष की आयु में परमार्थ ने पंद्रह अगस्त तक कैंटन पहुंचकर नानकिंग की ओर प्रस्थान किया।

२. लिआंग सम्राट् के ताई-चिंग-कालीन प्रथम वर्ष (५४७ ई०) में परमार्थ उनचास वर्ष का हुआ।

३. उपर्युक्त काल के द्वितीय वर्ष (५४८ ई०) में परमार्थ अगस्त के महीने तक नानकिंग पहुंच गया, जहाँ सम्राट् वू-ती ने उसका बड़ा स्वागत-सम्मान किया, रहने के लिए पाओ युन तिएन अथवा 'कोप मेघ महल' में एक सुन्दर स्थान दिया और धर्म का उपदेश करने की अनुमति प्रदान की। किंतु सेनापति होउ-चिंग के विद्रोह-जन्य उपद्रवों और अशांति के कारण धर्मप्रचार का कार्य संभव न हो सका।

४. उपर्युक्त काल के तृतीय वर्ष (५४९ई०) में, ५१ वर्ष की अवस्था में, परमार्थ नानकिंग से चीकिआग प्रांत में स्थित फू-चुंग को गया।

५. लिआंग सम्राट् चिएन वेन ती के शासन के ता-पाओ-कालीन प्रथम वर्ष (५५० ई०) में परमार्थ की अवस्था ५२ वर्ष की हुई। फू-चुंग के मैजिस्ट्रेट लू-युआन-ची ने उससे संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करने की प्रार्थना की। उसने सप्तदशभूमि-शास्त्र का अनुवाद चीनी भाषा में करना आरंभ किया; किंतु पांचवें अध्याय के बाद कार्य आगे नहीं बढ़ा। उसी वर्ष उसने 'प्राण्यमूल-शास्त्र टीका,' 'यथाभूतम् शास्त्र' और 'त्रिकाल-विवेक-शास्त्र' का अनुवाद पूर्ण किया।

६. सम्राट् चिएन वेन ती के तिएन-चिन-कालीन प्रथम वर्ष (५५१ ई०) में परमार्थ फू-चुंग में ही निवास कर रहा था।

(ख) 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों के अवशेष'

(ग) 'महान् तांग-वंश-काल में (संकलित) बौद्ध-ग्रन्थों की सूची'

(घ) 'क्रमागत राजवंशों में त्रिरत्न संबंधी अभिलेख'

(च) 'वंडरफुल वाएस' मैगज़ीन में सु कुंग वांग का लेख—'नैरेशन्स आन परमार्थस' ट्रैंसलेशन्स ऐंड स्टुअरीज़ (परमार्थ के अनुवादों और कथाओं का वर्णन)

७. लिआंग सम्राट् युअन-ती के चेंग-शेंग-कालीन प्रथम वर्ष (५५२ ई०) में, ५४ वर्ष की अवस्था में परमार्थ नानकिंग के चिन-कुआन मठ में स्थायी रूप से रहने लगा। अपने कतिपय घनिष्ट मित्रों के सहयोग से उसने सुवर्ण-प्रभास-सूत्र का अनुवाद आरंभ किया। प्रसिद्ध चीनी बौद्ध विद्वान् ताओ-लिआंग अपने पुत्र को भिक्षु परमार्थ को प्रणाम कराने के लिए लाया। परमार्थ ने उसके पुत्र का नाम चि-त्सांग रक्खा।

८. उपर्युक्त-कालीन द्वितीय वर्ष (५५३ ई०) में, अपने पचपनवें वर्ष में परमार्थ नानकिंग में ही था। उसने सुवर्ण-प्रभास-सूत्र के अनुवाद का कार्य, एक पुराने घर में, जो चीनी साहित्यकार यांग-ह्जिअंग का था, पूर्ववत जारी रक्खा।

९. उपर्युक्त-कालीन तृतीय वर्ष (५५४ ई०) में परमार्थ छप्पन वर्ष का हुआ। इस बीच वह चिऊ-किआंग हो आया था और दो महीने की यात्रा के बाद नान-चांग वापस लौटा। हुई-ह्जिएन के अनुरोध पर मैत्रेय-व्याकरण-सूत्र का अनुवाद करने के निमित्त वह 'कोष क्षेत्र मठ' में ठहरा। उसका विचार वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद करने का भी था।

कुछ दिनों बाद वह ह्जिन-वू गया और माई-येह मठ में निम्नलिखित ग्रन्थों को पूर्ण किया :—

(क) प्राण्यमूल-टीका, २ खंड
(ख) नव-चैतन्य-अर्थ-अभिलेख २ खंड
(ग) धर्म-चक्र-अर्थ-अभिलेख, १ खंड

इसके उपरांत उसने कैंटन की ओर प्रस्थान किया।

१०. लिआंग सम्राट् चिन-ती के शासन के शाओ-ताई-कालीन प्रथम वर्ष (५५५ ई०) में परमार्थ की आयु सत्तावन वर्ष की हुई।

११. सम्राट् चिन-ती के ताई-पिंग-कालीन प्रथम वर्ष (५५६ ई०) में, परमार्थ अपने अट्ठावनवें वर्ष में कैंटन में ही था। उसने गुणमति लिखित लक्षण-शास्त्र का चीनी संस्करण प्रकाशित किया।

१२. चेन-सम्राट् वू-ती के युंग-तिंग-कालीन प्रथम वर्ष (५५७ ई०) में, ५९ वर्ष की आयु में परमार्थ कुछ दिन नान-कांग में रहा। वहाँ के मैजिस्ट्रेट ने उससे अनुत्तर-सूत्र का चीनी भाषांतर करने की प्रार्थना की।'

१३. उपर्युक्त कालीन द्वितीय वर्ष (५५८ ई०) में, साठ वर्ष की आयु में, परमार्थ नान-कांग से नान-चांग को लौट आया और वहाँ ह्जी-यिंग मठ में ठहरा। वहाँ से उसने 'महाशून्य शास्त्र' का चीनी संस्करण प्रकाशित किया। फिर लिंग-

च्वान जिले में जाकर उसने मध्यांत-विभाषा-शास्त्र का अनुवाद किया और वहाँ से फू-किएन प्रांत के त्सिन-आन को गया।

१४. उपर्युक्त-कालीन तृतीय वर्ष (५५९ ई०) में, इकसठ वर्ष की अवस्था में उसने अभिधर्म-शास्त्र का चीनी संस्करण प्रकाशित किया।

१५. चेन सम्राट् वेन ती के तिएन-चिआ-कालीन प्रथम वर्ष (५६० ई०) में परमार्थ बासठ वर्ष का हुआ।

१६. उसी काल के द्वितीय वर्ष (५६१ ई०) में, तिरसठ वर्ष की आयु में वह एक नौका में बैठकर लिआंग-आन बंदरगाह गया, जहाँ से उसका विचार भारत की ओर प्रस्थान करने का था ; किंतु मैजिस्ट्रेट फ़ांग-शी के अनुरोध करने पर वह 'निर्माण-मठ' में रुक गया।

१७. उसी काल के तृतीय वर्ष (५६२ ई०) में, चौंसठ वर्ष की आयु में, परमार्थ ने निर्माण-मठ में वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

१८. उसी काल के चतुर्थ वर्ष (५६३ ई०) में, पैंसठ वर्ष की आयु में, कैंटन जाकर चिह्-चिह् मठ में ठहरा और वहां के मैजिस्ट्रेट ओ-यांग के अनुरोध करने पर धर्मचर्या-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

१९. उसी काल के पंचम वर्ष (५६४ ई०) में छाछठ वर्ष का होने पर परमार्थ ने महायान-सपरिग्रह-शास्त्र और कोष-शास्त्र का अनुवाद आरंभ किया।

२०. उसी काल के छठे वर्ष (५६५ ई०) में परमार्थ सरसठ वर्ष का हुआ।

२१. चेन-सम्राट् वेन-ती के शासन के तिएन-कांग-कालीन प्रथम वर्ष (५६६ ई०) में परमार्थ ने अड़सठ वर्ष की आयु में, अपने शिष्य हुई-काई और सोंग-जेन के अनुरोध पर कोष-शास्त्र का अनुवाद फिर आरंभ किया।

२२. चेन-सम्राट् फ़ाई-ती के शासन के कुआंग-ता-कालीन प्रथम वर्ष (५६७ ई०) में, उनहत्तर वर्ष की आयु में परमार्थ ने कोष-शास्त्र का पुनः अनुवाद समाप्त किया।

२३. उसी काल के द्वितीय वर्ष (५६८ ई०) में परमार्थ सत्तर वर्ष का हुआ।

२४. चेन-सम्राट् ह्जुआन-ती के राज्य के ताइ-चिएन-कालीन प्रथम वर्ष (५६९ ई०) में परमार्थ का देहांत ११ वीं जनवरी को हुआ। उसके दूसरे दिन परमार्थ के पार्थिव अवशेषों के ऊपर उसके शिष्यों ने एक पैगोडा निर्मित कर दिया। उसकी मृत्यु के उपरांत उसकी समस्त शिष्य-मंडली दक्षिण-चीन छोड़कर किआंग-सी प्रांत में स्थित लू-शान की ओर चली गई।

परमार्थ ने अपने जीवन के चौबीस वर्ष चीन में व्यतीत किए। इस अवधि में उसने बहुत-से ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिन में श्रद्धोत्पाद-सूत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ ने एक नये बौद्ध-संप्रदाय की नींव डाली। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना की रूप-रेखा उसके आरंभिक अंश तथा आदि और अंत के स्तोत्रों में दी हुई है:—

"इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य
यश का अर्जन नहीं है।
वरन् इस दुःख-दग्ध जगत् को सुख का संजीवन देना है,
मनुष्य-मात्र को अवतीर्ण-परात्पर—जू-लाइ—का अवलंब देकर
सत्पथ पर ले जाना है,
श्रेष्ठ जनों को महायान पथ पर अग्रसर करना है,
अवर जनों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करना है,
भ्रम से आत्यंतिक मुक्ति का उपाय बताना है,
सांसारिक जनों, और हीनयान तथा मध्ययान के अनुयायियों को
भ्रांतिमुक्त करना है,
सब पर बुद्ध के दर्शन-लाभ का साधन प्रकट करना है,
और इस श्रद्धा के फल को प्रकाशित करना है,

आदि स्तोत्र इस प्रकार है:—

"अखिल को करता हूं अर्पित निज जीवन
मंगलमय सर्वात्मा जो,
प्रज्ञा का चरम अंत जो,
जो अमित वीर्य,
फिर भी जो करुणासागर
उद्धार चाहता कण-कण का।
उस संघ-रत्न को,
गर्भित है जिसमें बुद्ध-बीज
जिससे अकुशल पथ को तज
मानव हो संदेह-मुक्त,
श्रद्धा दृढ़ हो उसकी
महायान में,

शाश्वत प्रभु में।"

अंतिम स्तोत्र इस प्रकार है:—

"है गंभीर परम, है अतिशय विशाल,
यह बुद्ध-धर्म,
यही कहा है
मैंने इस लघु सीमा में।
प्रभु के चरणों में ही है स्थित
वह अक्षय निधि,
जो वरदानों में पाते
लोक सकल।"[1]

इस ग्रंथ में बौद्धधर्म के संबंध में अनेक नए विचार और सिद्धांत मिलते हैं; जैसे:—

प्राचीन बौद्धधर्म अनीश्वरवादी था, यह ईश्वरवादी है। प्राचीन धर्म अपने ही प्रयास (सत्कर्मों) द्वारा निर्वाण प्राप्त करने में विश्वास करता था, यह मत बुद्ध की सहायता में विश्वास करता है।

प्राचीन बौद्धधर्म इस पापमय संसार को त्याग देने में विश्वास करता था, यह इसी संसार में रहने और दूसरों को निर्वाण प्राप्त करने में सहायता पहुंचाने को सर्वोच्च धर्म मानता है। प्राचीन धर्म-निर्वाण के पूर्व मनुष्य के लिए असंख्य जन्म लेना अनिवार्य मानता था; किंतु यह मत सीधे स्वर्ग-लाभ की संभावना में विश्वास करता है।

परमार्थ द्वारा अनूदित श्रद्धोत्पाद-शास्त्र के आधार पर बौद्धधर्म के दो नए संप्रदाय—तिएन-ताई, और ह्निज़एन-शोउ—स्थापित हुए। ६३४ ई० और ७१२ ई० के चीन में फ़ा-त्सांग नामक एक प्रतिभाशाली भिक्षु हुआ, जिसने महायान-श्रद्धोत्पाद-शास्त्र पर एक टीका—'ता-शांग-चि-ह्निन-लुन-शु'—लिखी, जो मूल ग्रंथ से भी अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई।

इस ग्रंथ का मूल लेखक, बुद्धचरित का कवि, अश्वघोष था। वह ब्राह्मण था, किंतु आगे चलकर उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था। उसने मध्य-एशिया और उत्तर भारत की विस्तृत यात्रा की थी। अपनी 'महाकीर्ति' (?) नामक पुस्तक में उसने पश्चिमी भारत के जीवन का भी उल्लेख किया है।

---

१ दे० रेवरेंड रिचर्ड कृत 'अवेकेनिंग आफ़ फ़ेथ' (श्रद्धोत्पाद-शास्त्र)

अश्वघोष उत्तर-पश्चिम भारत के सम्राट् कनिष्क का समकालीन (लगभग प्रथम शती ईसवी) था, और संभवतः वह काश्मीर में आयोजित तृतीय बौद्ध-संगीति में सम्मिलित हुआ था।

(छ) भिक्षु बोधिधर्म और ज़ेन संप्रदाय

बौद्धधर्म की एक विशिष्ट शाखा के रूप में ज़ेन संप्रदाय का प्रचार सर्व-प्रथम चीन में हुआ। यह बौद्धधर्म के उस संप्रदाय का चीनी रूपांतर है, जिसे भारतवर्ष से बोधिधर्म अपने साथ लगभग ५२७ ई० में चीन ले गया था। वह ध्यान-संप्रदाय के नाम से विख्यात था, जिसका उच्चारण चीनी भाषा में चान और जापानी भाषा में ज़ेन है, जिसका अर्थ है अन्तर्दृष्टि द्वारा परमतत्त्व के स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान।

चीनी परंपरा के अनुसार इस संप्रदाय का इतिहास निम्नलिखित है :—

शाक्यमुनि बुद्ध ने, जिनको अपने शिष्यों की ग्रहण-क्षमता के अनुसार अपने धर्म को सीमित करने के लिए विवश होना पड़ा था, एक बार एक फूल उठा-कर अपना हाथ ऊंचा किया, जिससे सभा में उपस्थित सारे भिक्षु उसे देख लें। उनके इस संकेत पर इन भिक्षुओं में से एक—महाकाश्यप—ने मुसकराकर यह व्यक्त किया कि तथागत की इस चेष्टा के गंभीर अर्थ को केवल वही समझ सका है। अन्य सब भिक्षुओं के प्रस्थान कर चुकने पर अपने इस शिष्य को एकांत में बुलाकर तथागत ने उसको गुह्य दीक्षा की विधि से सर्वोच्च सत्य का ज्ञान प्रदान किया। महाकाश्यप से यह ज्ञान आनंद को प्राप्त हुआ और इस प्रकार उसे अट्ठाइस महास्थविरों की पंक्ति में दूसरा स्थान मिला। इनमें से अट्ठाइसवाँ महास्थविर परमार्थ था ; किंतु उसको चीन का प्रथम महास्थविर माना जाता है। उसके उपरांत चीन में पांच महास्थविर और हुए, जिनमें अंतिम हुई-नेंग था। हुई-नेंग के बाद यह संप्रदाय अनेक शाखाओं में बंट गया और फिर कोई महास्थ-विर नहीं हुए।

'प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं की स्मृतियों का अवशेष' के अनुसार परमार्थ पहले सुंग-राज्य की (४२०–४७८ ई०) भूमि में पहुंचा और वहां से दक्षिण की ओर गया ; किंतु 'लो-यांग मंदिरों के अभिलेख' के अनुसार बोधिधर्म क्षत्रिय जाति का था और दक्षिण भारत के राजा सुगंध का तृतीय पुत्र था। उसके गुरु का नाम प्रज्ञातर था, जिसके आज्ञानुसार वह चीन गया। इस यात्रा में उसको तीन

वर्ष लगे।[1] बोधिधर्म लियू-सुंग-काल में ५२७ ई० में नान-युएह पहुंचा और वहाँ से कुछ समय उपरांत उत्तरी चीन गया, जहां उसने नानकिंग में लिआंग सम्राट् वू-ती से भेंट की। जनश्रुति है कि सम्राट् वू-ती और परमार्थ के मध्य निम्नलिखित वार्तालाप हुआ :—

वू-ती—क्या असंख्य मंदिर निर्माण कराने, संस्कृत धर्मग्रन्थों की प्रतिलिपि करने और प्रजा को भिक्षु हो जाने की आज्ञा देने से मैं कोई पुण्य अर्जित करता हूँ ?

बोधिधर्म—लेशमात्र भी नहीं। मनुष्यों और देवताओं से संबंध रखने वाले यह सारे कृत्य निरर्थक और अनित्य हैं। यह सब शरीर का अनुसरण करती हुई छाया के समान है, जिसकी प्रतीति तो होती है ; किंतु जो वास्तव में असत्य है।

वू-ती—तब सच्चा पुण्य क्या है ?

बोधिधर्म—विशुद्ध प्रज्ञा सूक्ष्म, पूर्ण, शून्य और शांत होती है और उसके इन गुणों की उपलब्धि संसार से नहीं हो सकती।

वू-ती—पवित्र धर्म के सिद्धान्तों में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कौन-सा सिद्धान्त है ?

बोधिधर्म—जहाँ सब शून्य है, वहाँ कुछ भी पवित्र नहीं कहा जा सकता।

वू-ती—मुझे इस तरह उत्तर देनेवाला कौन है ?

बोधिधर्म—मैं नहीं जानता।[2]

वू-ती के साथ परमार्थ का मतैक्य नहीं हो सका और वह नानकिंग से प्रस्थान करके लो-यांग पहुंचा, जहाँ के 'शाश्वत शांति मठ' के भव्य स्थापत्य और कारीगरी की उसने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। वह अपनी आयु १५० वर्ष की बतलाया करता था। उसने अनेक देशों की यात्रा दूर-दूर तक की थी ; किंतु इस मठ की-सी सुन्दरता और कलाकारिता न तो उसने भारतवर्ष में देखी थी और न समस्त बौद्ध-जगत् में कहीं अन्यत्र। मठ को देखकर उसने 'नमो' कहा और चार दिन तक हाथ जोड़े उसके प्रति अपना आदर-भाव व्यक्त करता रहा। इस मठ की स्थापना ईसा की पाँचवीं शती के प्रथम चतुर्थांश में हुई थी।

---

१ दे० 'आउट लाइन आफ़ टेन स्कूल्स आफ बुद्धिज़म' (बौद्धधर्म के दश संप्रदायों की रूप-रेखा)

२ दे० वही

कुछ भिक्षु उसमें अब भी रहते हैं, किन्तु उसकी भव्य इमारत का अधिकांश अब खंडहर हो गया है। बोधिधर्म की मृत्यु लो-यांग में हुई।[1]

बोधिधर्म ने स्वयं कोई ग्रन्थ नहीं लिखा ; परंतु उसका उपदेश यह था कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति ध्सान और अंतर्बोध द्वारा होती है और उसका संवाहन विचार के संक्रमण द्वारा हो सकता है। उसके सिद्धांत के दो पक्ष हैं—श्रद्धा और अभ्यास।

श्रद्धा के विषय में उसने कहा है—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि प्राणिमात्र में एक ही सत्य निहित है। वे सदैव वाह्य विषयों से अवरुद्ध रहते हैं और इसीलिए मैं उनसे असत्य त्यागकर सत्य को ग्रहण करने का आग्रह करता हूं। दीवार को देखते हुए उनको अपने चित्त की वृत्तियों को यह मनन करते हुए एकाग्र करना चाहिए कि 'अहंता' और 'अपर' का अस्तित्व ही नहीं है, तथा ज्ञानी और अज्ञानी एक समान हैं।[2]

'अभ्यास' को उसने चार स्तरों में विभाजित किया—(क) साधक को सब कठिनाइयों को यह सोचकर सहना चाहिए कि अपने पूर्वजन्म के कुकर्मों का फल भुगत रहा हूं। (ख) उसे अपने भाग्य से संतुष्ट रहना चाहिए, चाहे दुःख हो या सुख, लाभ हो या हानि। (ग) उसको किसी वस्तु की तृष्णा नहीं करना चाहिए।(घ) उसको धर्म के अनुसार, जिसका स्वरूप, स्वभाव (सत्य) और शुद्ध है, आचरण करना चाहिए।

यह संप्रदाय केवल लंकावतार-सूत्र को छोड़कर, जिसमें ध्यान करने के सिद्धांतों का वर्णन है, अन्य किसी भी बौद्ध ग्रन्थ में आस्था नहीं रखता। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों का अवशेष' के अनुसार बोधिधर्म ने लंकावतार-सूत्र की अपनी चार जिल्दों वाली प्रति अपने पट्टशिष्य हूई-की को यह कहते हुए प्रदान की थी—"मैंने अनुभव किया है कि चीन में कोई सूत्र नहीं है, किंतु अपने मार्ग-प्रदर्शन के लिए तुम इसको ग्रहण करो और तब तुम सहज ही जगत् का उद्धार करने में समर्थ हो सकोगे।" "चीन में कोई अन्य सूत्र न होने" से परमार्थ का अभिप्राय स्पष्ट ही यह था कि उस समय लंकावतार-सूत्र को छोड़कर पथ-प्रदर्शन में सहायता करने वाला और कोई दूसरा सूत्र उपलब्ध नहीं था। भिक्षु ताओ-युआन कृत '(धर्म) दीप-प्रेषण-अभिलेख' के अनुसार—

---

१ दे० 'लो-यांग मंदिरों के अभिलेख' और 'प्र० भि० सं० का अवशेष'

२ दे० 'लंकावतार आचार्यों के अभिलेख'

"आचार्य ने आगे कहा—मेरे पास लंकावतार-सूत्र चार खंडों में है और उसे मैं तुम्हें दे रहा हूं। इसमें तथागत के मानसभूमिका सम्बन्धी गुप्त उपदेश सार-रूप में वर्णित हैं। यह समस्त प्राणियों को आध्यात्मिक प्रवृत्ति और प्रज्ञा की ओर ले जाने वाला है। इस देश में आने के बाद मुझे पांच बार विष दिया जा चुका है, और हर बार इस सूत्र को निकालकर मैंने उसकी चमत्कारिक शक्ति की परीक्षा उसको पत्थर पर रखकर ली, जिससे वह चूर-चूर हो गया। समुद्रों और मरुस्थलों को पारकर मेरे दूर-दूर की यात्रा करने का कारण, ऐसे सत्पात्रों को खोजने की मेरी इच्छा रही है, जिनको मैं अपनी विद्या प्रदान कर सकूं। जब तक इस कार्य के लिए अनुकूल अवसर नहीं आया, मैं इस तरह चुप रहा कि जैसे मैं गूंगा होऊं। किन्तु अब तुम मुझे मिल गए हो, (यह सूत्र) तुमको दिया जा रहा है, और अन्ततः मेरी आकांक्षा पूर्ण हो गई।"

चीनी बौद्धधर्म में बोधिधर्म द्वारा लंकावतार-सूत्र इस प्रकार प्रविष्ट हुआ और उसके बाद, जैसा बौद्धधर्म के इतिहास से प्रकट है, उसका अध्ययन अनवरत रूप से होता रहा। ध्यान मत का आचार्य हुई-की बौद्धधर्म का उपदेश इस सूत्र के आधार पर ही करता था और इसलिए वह तथा उसके शिष्य लंकावताराचार्य के नाम से प्रख्यात हो गए थे। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों का अवशेष' के लेखक ताओ-ह्जुआन ने 'हुई-की का जीवन चरित्र' के अन्तर्गत लिखा है—"लंकावतार में आध्यात्मिक जीवन का मर्म वर्णित होने के कारण ना, मान तथा अन्य आचार्य उसको सदैव अपने पास रखते थे। वे अपने प्रवचन और शिष्यों को दीक्षादान सदैव इस ग्रन्थ के सिद्धान्तों के आधार पर और (आचार्य के) आदेशानुसार ही करते थे।" ना और मान हुई-की के शिष्य थे। उपर्युक्त ग्रंथ में आगे चलकर 'फा-चुंग की जीवनी' दी हुई है, जो प्रारंभिक मध्य तांग-काल में ताओ-ह्जुआन का समकालीन था और जिसने लंकावतार-सूत्र का विशिष्ट अध्ययन किया था। हुई-की के उपरान्त लंकावतार-सूत्र के अध्ययन का संक्षिप्त इतिहास नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"लंकावतार के महत्त्व की दीर्घकालीन उपेक्षा से खिन्न होकर फा-चुंग ने, बिना इस बात की चिन्ता किए कि सुदूर पर्वतों में यात्रा करना है या निर्जन जल में, देश का कोना-कोना छान डाला। अन्त में वह हुई-की के वंशजों के पास पहुंचा, जिनके मध्य इस सूत्र का अध्ययन अच्छी तरह प्रचलित था। उनमें से एक आचार्य को उसने अपना गुरु बनाया। फिर उसको अनेक बार आध्यात्मिक साक्षात्कार हुआ। तब उसके गुरु ने उसको अन्य शिष्यों का साथ

छोड़कर चले जाने और लंकावतार पर प्रवचन करने में अपनी बुद्धि का अनुसरण करने की आज्ञा प्रदान की। उसने एक के बाद एक करके तीस प्रवचन दिए। आगे चलकर उसकी भेंट एक ऐसे भिक्षु से हुई, जिसको स्वयं हुई-की ने दक्षिण भारत के एकयान सम्प्रदाय के व्याख्यानुसार लंकावतार की दीक्षा दी थी। फा-चुंग ने उस विषय पर फिर एक सौ से अधिक व्याख्यान दिए।

"फा-चुंग ने जब से सूत्र-साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया, तब से लंकावतार को अपने अध्ययन का प्रमुख विषय बना लिया, और कुल मिलाकर उस पर दो सौ से अधिक व्याख्यान दिए। अपने प्रचार-कार्य के लिए वह कोई पूर्व निश्चित योजना नहीं बनाता था, वरन् परिस्थितियों के अनुसार व्याख्यान देने इधर-उधर जाता रहता था। उपदेश के मर्म को ग्रहण कर लेने से समस्त वस्तुओं के एकत्व की अनुभूति होती है; किन्तु शब्दों को पकड़ने से सत्य विविधात्मक प्रतीत होने लगता है। चुंग के अनुयायियों ने ध्यान के सिद्धान्तों के सारमर्म को किसी प्रकार लेख-बद्ध कर देने का आग्रह उससे किया। इस पर आचार्य ने कहा—'सारमर्म तो सत्ता का चरम सत्य है। शब्दों में व्यक्त किए जाने पर उसकी सूक्ष्मता नष्ट हो जाती है, और लेखबद्ध कर देने से तो और भी' किन्तु वह अपने शिष्यों के दृढ़ आग्रह को टाल नहीं सका और परिणामस्वरूप उसने पांच जिल्दों में 'सज़ी-चो' अथवा 'निजी टिप्पणियां' लिखीं, जो इस समय बहु प्रचलित हैं।"

फा-चुंग के उपरान्त लंकावतार-सूत्र का अध्ययन, विशेषकर ज़ेन सम्प्रदाय में, कम हो गया और उसका स्थान प्रज्ञापारमिता-वर्ग के ग्रन्थ वज्रच्छेदिका-सूत्र ने ले लिया।

ज़ेन सम्प्रदाय में दीक्षा देने की विशेष पद्धति का उद्देश्य चरम-सत्य का तत्काल प्रत्यक्ष अनुभव करा देना होता है, न कि उसके विषय में शाब्दिक विवेचना करना। यदि शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है, तो धर्म की वैधिक शब्दावली और प्रत्ययात्मक कथनों को सर्वथा वर्जित रक्खा जाता है। ज़ेन में जब शब्दों द्वारा कुछ कहा जाता है, तब उसका उद्देश्य उनके माध्यम से परम-सत्य को व्यक्त करना होता है; किन्तु वह यह कार्य तर्कयुक्त व्याख्या और सिद्धान्त-निरूपण द्वारा नहीं करता, वरन् दैनन्दिन जीवन की सामान्य बातचीत या ऐसी उक्तियों द्वारा करता है, जो हमारी प्रत्ययात्मक विचार-प्रणाली को इस बुरी तरह झकझोर डालती हैं कि वे हमको निरा प्रलाप प्रतीत होने लगती हैं। कारण यह है कि ज़ेन का लक्ष्य ही प्रत्ययों से मुक्ति पाना और विचार के उन कठिन चौखटों

को छिन्न-भिन्न कर डालना है, जिनके द्वारा हम जीवन पर अधिकार पाने का प्रयास करते हैं। इसलिए वह एक पूर्णतया देवप्रतिमा-विध्वंसक-जैसी विधि का प्रयोग करता है।

हम नीचे गुरु और शिष्य के मध्य लघु संलाप के रूप में इस विचित्र पद्धति का एक उदाहरण दे रहे हैं, जिसमें तत्सम्बन्धी धारणाओं और मध्यस्थ विचारों को बिना मार्ग में आए दिए, परम सत्य की ओर सीधा संकेत किया गया है।

तांग-कालीन भिक्षु हुई-त्तुंग अपने गुरु ताओ-लिन से विदा ले रहा था। गुरु ने उससे पूछा—"अब तुम कहाँ जाना चाहते हो ?" उसने उत्तर दिया—"बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का सम्यक् अध्ययन करने के लिए ही मैं अपने घर-बार का त्याग करके भिक्षु हुआ था ; किन्तु, मेरे गुरुदेव, आपने मुझे अपने उपदेशों से वंचित रक्खा है, इसलिए अब मैं यहाँ से जाकर कहीं अन्यत्र अपनी इष्ट शिक्षा को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा।"

ताओ-लिन ने कहा—"यदि बौद्धधर्म के पढ़ने की ही बात है, तो मैं थोड़ा-सा तुमको यहाँ भी पढ़ा सकता हूं।"

जब शिष्य ने पूछा कि वह क्या पढ़ाना चाहते हैं, तो गुरु ने अपने चोगे से एक बाल निकाला और फूंक मारकर उड़ा दिया। यह देखते ही शिष्य को तत्क्षण परम सत्य का बोध हो गया।

ज़ेन आध्यात्मिक मुक्ति अथवा आध्यात्मिक अकिंचनता, अर्थात् वह परम सत्य के सम्बन्ध में हमारी बद्धमूल धारणाओं और भावनाओं के भार से हमारे वास्तविक मन का मुक्त होना है। किन्तु, सामान्य धारणा यह है कि जिसके द्वारा हम सोचते और विचार-विमर्श करते हैं, वही हमारा वास्तविक मन है, और यही वह मन है, जिसका उपयोग आधुनिक वैज्ञानिक सत्य की खोज में करते हैं ; किन्तु बुद्ध इस मन को हमारा वास्तविक मन नहीं मानते। यह तो केवल बाह्य पदार्थों की प्रतिक्रिया मात्र होता है। इस मन का त्याग अनिवार्य है, क्योंकि बिना ऐसा किए हम अपने सच्चे वास्तविक मन को, जो नित्य और सर्वज्ञ है, व्यक्त नहीं कर सकते।

बौद्धधर्म के अनुसार मानसिक परिष्कार के तीन सोपान हैं—विनय का पालन, मानसिक एकाग्रता और प्रज्ञा। विनय का पालन मानसिक एकाग्रता के लिए भूमि तैयार करता है, और एकाग्रता से प्रज्ञा उत्पन्न होती है। अतः विनय पालन और मानसिक एकाग्रता प्रज्ञा को प्राप्त करने के साधन हैं। यह प्रज्ञा वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की प्रज्ञा से भिन्न है। संसारिक प्रज्ञा सदैव इंद्रिया-

नुभूतिजन्य पृथक्करण से और छठी चेतना के साथ उत्पन्न होने वाले विचार और विवेक—इन दो गुणों से आबद्ध रहती है। केवल मानसिक एकाग्रता से उत्पन्न प्रज्ञा ही समस्त वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानने और सत्य को अवगत करने में समर्थ होती है।

मैं यहाँ फिर स्मरण दिला देना चाहता हूं कि गुह्य प्रज्ञा को उपलब्ध कराने के लिए सीधे शिष्य के मन को संकेत देने की जेन पद्धति का उद्भव उस घटना से हुआ था, जिसमें बुद्ध ने एक फूल हाथ में उठा लिया था और उनकी इस चेष्टा का अर्थ ग्रहण कर काश्यप मुसकरा दिया था।

(ज) चिह्-ई और तिएन-ताई सम्प्रदाय

चीन देश की भूमि में पल्लवित होने वाली महायान मत की अनेक शाखाओं के उत्थान और पतन की सम्यक रूप-रेखा प्रस्तुत करना चीनी बौद्धधर्म के इतिहास-कारों का कार्य है।

चीनी बौद्धधर्म के अन्तर्गत विभिन्न शाखाओं की विभाजक रेखाएं अब प्रायः मिट चुकी हैं, अथवा यह कहना सत्य के अधिक निकट होगा कि तिएन-ताई शाखा ने अपनी सीमा का विस्तार सारे चीन में—या कम-से-कम अद्वैतवादी चीनी बौद्धधर्म में—अत्यधिक कर लिया है।

तिएन-ताई शाखा के सिद्धान्त सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र से उद्भूत माने जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस सूत्र में शाक्यमुनि बुद्ध के ही ठीक वे शब्द संगृहीत हैं, जिनमें उन्होंने नेपाल के गृद्ध-शिखर पर, जीवन की अन्तिम संध्या में, अपना अन्तिम उपदेश दिया था। सद्धर्म-पुंडरीक का अनुवाद कुमारजीव ने ४०६ ई० में किया था और उसकी व्याख्या उसके शिष्य हुई-वेन ने की थी। हुई-वेन ने अपने शिष्य हुई-स्ज़ू को यह सूत्र पढ़ाया और इस प्रकार तिएन-ताई शाखा की नींव पड़ी।[1]

तिएन-ताई शाखा का प्रवर्तक चिह्-ई, आरम्भ में होनान में रहता था, जहाँ उसका पिता राजवंश के किसी सदस्य का नौकर था। पन्द्रह वर्ष की आयु में उसने चांग-शा में एक प्रतिमा के सम्मुख भिक्षु होने की प्रतिज्ञा की। उन्हीं दिनों उसने स्वप्न में देखा कि सागर के मध्य में स्थित उच्च पर्वत है, जिसकी चोटी पर से एक भिक्षु उसे हाथ से इशारा करके बुला रहा है, और उसने चोटी पर से उस (चिह्-ई) को अपनी बाहों में उठा लिया। अठारह वर्ष

१ दे० 'प्रमुख भि० सं० अ०'

धर्माचार्य हुई-मू
नैन-यू

की अवस्था में, समस्त सांसारिक बन्धनों को तोड़कर, उसने मठ में प्रवेश किया। तेईस वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु हुई-स्ज़ू का शिष्य बना। कुछ दिनों के बाद हुई-स्ज़ू नान-याओ चला गया और चिह्-ई नानकिंग छोड़कर ह्वा-कुआन मन्दिर में रहने लगा, जहाँ वह ध्यान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर उपदेश दिया करता था। अड़तीस वर्ष की आयु में वह एक मत की संस्थापना करने के अपने संकल्प को पूर्ण करने की प्रेरणा से तिएन-ताई (स्वर्गीय अलिंद पर्वत) गया। सम्राट् ने उसे नानकिंग में ही रहने की आज्ञा दी; किन्तु उसने वहाँ रहने से इन्कार कर दिया। यह घटना ५७६ ई० की है। तिएन-ताई पहुंचकर वह कुओ-चिंग मठ के निकट ठहरा और अन्ततः उसी क्षेत्र में स्थायीरूप से रहने लगा।[1] वहाँ बौद्धधर्म पर छिहत्तर पुस्तकें लिखीं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :—

१. सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र का दिव्य अर्थ	२० खंड
२. महा चिह् कुआन	२० खंड
३. सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र के शब्दों और वाक्यों की व्याख्या	२० खंड
४. अवलोकितेश्वर-सूत्र की टीका	२ खंड
५. सुवर्ण-प्रभास-सूत्र का दिव्य अर्थ	२ खंड
६. अवलोकितेश्वर-सूत्र का दिव्य अर्थ	२ खंड
७. सुवर्ण-प्रभास-सूत्र के शब्दों और वाक्यों की व्याख्या	६ खंड
८. ध्यान सम्प्रदाय का मौखिक प्रेषण	१ खंड
९. बुद्ध के उपदेशों के चार व्यूहों का अर्थ	६ खंड
१०. चिह्-ई द्वारा वदित ध्यानपारमिता के क्रमिक सिद्धान्त की व्याख्या	१० खंड
११. चिह्-ई रचित धर्मधातु मंडल का प्रथम द्वार	३ खंड
१२. अवलोकितेश्वर-याचना-सूत्र पर टीका	१ खंड

उसके शिष्यों की संख्या एक सहस्र से अधिक थी। चांग-आन उसका पट्ट-शिष्य था। उसने अपने गुरु चिह्-ई को तिएन-ताई मत की स्थापना करने में बड़ी सहायता की। चांग-आन ने बहुत-से ग्रन्थों की रचना की, जिनमें अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :—

१. महापरिनिर्वाण-सूत्र का दिव्य अर्थ	२ खंड
२. महापरिनिर्वाण-सूत्र पर टीका	३३ खंड

---

१ दे० वही और 'भिक्षु चिह्-ई की जीवनी'

३. दश अवियोज्यों (अद्वयों) पर निबन्ध १४ पत्र
४. महा-चिन-कुआन पर लघु टीका २ खंड
५. सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र के दिव्यार्थ पर टीका २० खंड
६. भिक्षु चिह्-ई का जीवन-चरित

चिह्-ई द्वारा तिएन-ताई मत के प्रवर्तन के पीछे उसकी मूल प्रेरणा को जानने के लिए हमें उसके आरम्भिक जीवन के कुछ अनुभवों को स्मरण करना होगा, जब वह बोधिधर्म द्वारा संस्थापित ध्यान सम्प्रदाय का भक्त था। समस्त पुस्तकीय ज्ञान और प्रत्येक वाह्य वस्तु को बहिष्कृत करने वाले ध्यान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से उसे सन्तोष नहीं हो सका था। फलतः उसने एक नए दर्शन की रूप-रेखा तैयार की और उसकी दीक्षा अपने श्रद्धालु शिष्यों को दी।[1]

तिएन-ताई सम्प्रदाय का दूसरा आधार नागार्जुन-प्रणीत प्राण्यमूल-शास्त्र-टीका में प्रतिपादित सिद्धान्त हैं, जो समस्त विरोधी प्रतिपक्षों को अस्वीकार कर के प्रतिपक्षियों के मध्य समाधान स्थापित करने की प्रक्रिया में ही चरम सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं अथवा इस प्रणाली को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। सच्ची प्रणाली न तो पुस्तकीय ज्ञान की है, न वाह्याचार की, न आनन्द-मय ध्यान की, न तर्क की, न कल्पनाओं में विचरण की, वरन् वह एक मध्यम पथ की है, एक ऐसे दर्शन की है, जो अपने में अन्य सब का समावेश कर लेती है, किसी का निषेध नहीं करती, जिसकी ओर अन्य सभी पथ जाते हैं और केवल उसीसे आत्मा को सन्तोष प्राप्त हो सकता है। तिएन-ताई सम्प्रदाय के प्रतीक शब्द चिह्-कुआन का अनुवाद प्रायः 'निरुद्ध विचार' किया जाता है, किन्तु जैसा स्वयं 'महा-चिह्-कुआन-फ़ा-मेन' ग्रन्थ के अध्ययन से हमें ज्ञात होगा, इस शब्द का सही अर्थ "प्रज्ञा और ध्यान" है, जिससे प्रकट होता है कि पूर्णता की प्राप्ति के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। उपर्युक्त ग्रन्थ में चिह्-ई ने लिखा है—

"जिस प्रक्रिया को 'निरोध' कहा जाता है, वह इस तथ्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना है कि समस्त पदार्थ अपने आदि से ही अपने किसी स्वरूप या लक्षण विशेष से रहित होते हैं और न उत्पन्न होते हैं, न नष्ट होते हैं। कारण-कार्य सम्बन्ध की भ्रान्ति के प्रभाव से वे असत्—अविद्यमान—होने पर भी सत्—विद्यमान—प्रतीत होते हैं। अतः उन पदार्थों की सत्ता या विद्यमानता यथार्थ नहीं है। वे सब केवल एक ही मन या चित्त से निर्मित होते हैं, जिसका सारतत्त्व-

---

१ दे० वही

भिन्नत्व रहित होता है। इस प्रकार का मनन करते रहने से भ्रान्तियुक्त विच के प्रवाह को निरुद्ध करना सम्भव है। इसीलिए इस प्रक्रिया को 'निरोध' व जाता है। और ध्यान की प्रक्रिया द्वारा हम इस सत्य का अनुभव कर स है कि पदार्थ न उत्पन्न होते हैं, न नष्ट होते हैं; उनकी उत्पत्ति मन प्रकृति के कारण होती है और इसलिए वे शून्य और भौतिक रूप क्रियाशील होने में सक्षम होते हैं। स्वप्न की भ्रांति की भांति 'सत्ता' उनकी होती है; किन्तु वह वास्तविक नहीं होती। अतएव, इस प्रक्रिया को ध्यान नाम दिया गया है। धर्मपद में भी यही विचार बड़ी स्पष्टता से व्य किया गया है—"प्रज्ञारहित व्यक्ति समाधि को नहीं प्राप्त कर सकता, अ जो समाधि का अभ्यास नहीं करता उसको प्रज्ञा की उपलब्धि असंभव है। प्रज्ञा और समाधि दोनों से युक्त है, यही निर्वाण के समीप है।"

निर्वाण के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए भिक्षु चिह-ई का यह क कि वह उत्पत्ति-विनाशातीत होता है, महापरिनिर्वाण-सूत्र की एक प्रसिद्ध उ का ही रूप है—किसी भी कलाकृति, जैसे एक घट, की उत्पत्ति निश्चय मनुष्य के संकल्प से होती है, और उसी के द्वारा उसका विनाश भी हो सक है। मिट्टी घट नहीं है, किन्तु घट की उत्पत्ति मिट्टी से होती है। टूट जाने घट के टुकड़े घट नहीं रह जाते, घट का घट-रूप में विनाश हो जाता ; घट-रूप में घट की उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति और विनाश के ठीक इसी रूप को बौ दर्शन सतत परिवर्तनमय, और इसलिए दुःख का कारण मानता है। तिएन-त मत के आचार्य ने निर्वाण को इसी अवस्था से अतीत माना है, यह कभी प्र पादित नहीं किया कि उसमें समस्त सत्ता का उच्छेद हो जाता है। इसके अतिरि आगे चलकर उसने यह भी कहा है कि मेरी आत्मा और परमात्मा एक हैं, जिससे सिद्ध होता है कि निर्वाण सत्ता का विलयन नहीं है, वरन् मात्र उस विलयन है, जो परिवर्तनशील और अनित्य है। उक्त सूत्र में यह विषय बारम्ब आता है और सुविज्ञ बौद्धों का भी यही मत प्रतीत होता है।

हीन-चिह-कुआन नामक ग्रन्थ को, जिसका उद्धरण मैं आगे दे रहा हूं, भि चिह-आई ने लिखा था और त्रिपिटक से उसका पुनर्मुद्रण चिंग-सम्राट् जेन-त के शासन के चिआ-चिंग-कालीन द्वितीय वर्ष (१७९६ ई०) में हुआ।

ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि चिह-कुआन का अर्थ ठीक व है, जो निर्वाण की चरमावस्था के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द प्रज्ञापारमि का है। यह अवस्था निष्क्रियता-युक्त प्रवाह की, अथवा मिंग-त्सिंग (प्रकाश अ

निर्मलता) की है। इससे प्रकट है कि चिह्-कुआन शब्द सत्ता की ज्ञान और ध्यान-जन्य प्रशांति-युक्त अवस्था को व्यक्त करता है।

चिह्-आई ने अपने ग्रन्थ का आरम्भ निम्नलिखित प्रसिद्ध गाथा से किया है :—

"समस्त कुकृत्यों से दृढ़तापूर्वक बचते रहना,
सत्कर्मों को श्रद्धापूर्वक करते रहना,
इस संकल्प को स्वार्थभाव से पूर्णतः मुक्त रखना—
यही सर्व बुद्धों की शिक्षा है।"

उसने आगे लिखा है—"चिह्-कुआन शब्द में दो तत्त्वों का संयोग है। उनमें से एक चिह (निरोध) है, जो निर्वाण के लिए अनिवार्य प्रथम मानसिक वृत्ति तथा उसका द्वार है—इसकी उपलब्धि मन की सभी आसक्तियों पर विजय प्राप्त करने से होती है। दूसरा कुआन (समाधि) है, जो मन की, सभी वाह्य प्रभावों से विमुक्त, दशा का अनुगामी अथवा सहगामी होता है। एक बार 'निरुद्ध' हो जाने पर मनुष्य ज्ञान के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का पालन सचेष्ट होकर करने लगता है। सच्ची समाधि को प्राप्त कर लेने से अपनी आत्मा को मुक्त करने की मार्मिक कला मनुष्य के हाथ में आ जाती है। पहला पूर्ण मानसिक शान्ति का उत्कृष्ट साधन है और दूसरा प्रज्ञापारमिता का सुपरिणाम। परम प्रज्ञा और समाधि से युक्त व्यक्ति को संसार का कल्याण करने के लिए प्रचुर सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। इसीलिए सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र में कहा गया है कि "महायान रूप में आत्मनिष्ठ होकर बुद्ध स्वयं (दूसरों के लिए) सुलभ धर्म बन गए थे, स्वयं प्रज्ञा और समाधि की शक्ति से सुसज्जित होकर वे जगत् का उद्धार करने में समर्थ हुए।"

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के विकास में चांग-जान (७११–७८२ ई०) ने विशेष कार्य किया। उसके सम्बन्ध में 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों के अवशेष' में लिखा है कि "उसका गृहस्थ गोत्र नाम च-आई था और वह नानकिंग के दक्षिण-पूर्व स्थित चांग-चाउ का निवासी था। तिएन-ताई सम्प्रदाय का वह नवाँ आचार्य था।" वह इस सिद्धान्त में विश्वास करता था कि प्रत्येक वस्तु संपूर्ण सत्य मन की अभिव्यक्ति है, जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि "जड़ पदार्थ भी बुद्धत्वमय हैं।" चिन-कांग-पाई अथवा वज्रदंड नामक निबन्ध में उसने लिखा है :—

"अतएव हम कह सकते हैं कि धूलि के एक कण के मन में समस्त सचेतन

प्राणियों और बुद्धों का मानस समाविष्ट है। अविकारी होने के कारण सभी पदार्थ भूततथता हैं, और कारणत्व से प्रभावित होने के कारण भूततथता सभी पदार्थ हैं। जब हम सभी पदार्थों की बात करते हैं, तब धूलि के लघु कण को ही कैसे अपवाद मान सकते हैं? भूततथता का तत्त्व अनन्यरूप से केवल 'हम' से ही सम्बन्धित क्यों हो, 'दूसरों' से क्यों सम्बन्धित न हो? ऐसा होने के कारण जहां प्रत्येक पदार्थ की अपनी निजी सत्ता होती है, वहां उसके साथ ही वह अद्वय बुद्धतत्त्व से भी युक्त होता है।" अतः चांग जान इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि, **"यदि हम एक ओर यह मानते हैं कि जो कारणत्व से प्रभावित होता है, वह स्वयं अविकारी रहता है और दूसरी ओर यह कि जड़ पदार्थ (इस अविकारी लक्षण से) रहित हैं, तो क्या हम परस्पर विरोधी बातें मानने की भूल नहीं करते?"**

चान-जान द्वारा ताओ-शेंग के इस सिद्धान्त का प्रसारण, कि अविश्वासी भी बुद्धत्व के लक्षणों से युक्त है, एक संयोगमात्र नहीं है। चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में चान-जान का सिद्धान्त इस विचार-धारा की स्वाभाविक परिणति है।

तिएन-ताई सम्प्रदाय के सिद्धान्त चीनियों को बहुत पसन्द आए और सुदूर-पूर्व के समृद्धतम बौद्ध सम्प्रदायों में उसकी गणना की जाती है। चौदहवीं शताब्दी में जब सुखावती सम्प्रदाय ने प्रारंभिक बौद्ध मत का स्थान पूर्णरूप से ले लिया, तब तिएन-ताई सम्प्रदाय की अवनति भी आरम्भ हुई।

(झ) दक्षिण चीन में बौद्ध-विरोधी प्रचार

चीनी बौद्धधर्म सम्बन्धी हमारे अभिलेखों में दक्षिणी चीन में मन्दिरों तथा बौद्धमत स्वीकार करने वालों की संख्या में सतत वृद्धि के विषय में कुछ गणनात्मक विवरण मिलता है। इस प्रकार की सूचना देने वाला एक अभिलेख फ़ा-लिन कृत पिएन चेंग है, जिसमें दक्षिणी राजवंशों के समय निर्मित मन्दिरों और भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्याएं दी हुई हैं:—

वंश	मंदिर-संख्या	भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्या
पूर्वी त्सिग	१७५६	२४,०००
लिउ-सुंग	१९१३	३६,०००
ची	२०१५	३२,५००
लिआंग	२८४६	८२,७००

एक विदेशी धर्म की इस त्वरित प्रगति से स्थानीय धर्मों, ताओवाद और कनफ्यूशस मत का क्षुब्ध हो उठना अनिवार्य था। बौद्ध-विरोधी आंदोलन ने उत्तर और दक्षिण में दो रूप लिये। उत्तर में इस विरोध ने एक बार वाई वु-ती द्वारा ४४६–४४८ ई० में, और दूसरी बार चाउ वू-ती द्वारा ५७४–५७७ ई० में अत्याचार का रूप ग्रहण किया। दक्षिण चीन में यह विरोध प्रायः बौद्ध-विरोधी प्रचार के रूप में प्रकट हुआ। वहाँ यद्यपि प्रतिद्वंद्वी धर्मों के मध्य उग्र वाद-विवाद चलता रहता था, किन्तु उन्होंने अपने विवाद को वाग्युद्ध तक ही सीमित रक्खा और अपने प्रतिपक्षी को पराजित करने के निमित्त शक्ति-प्रयोग करने के स्तर पर नहीं उतरे। इस अध्याय में हम अपने को दक्षिणी वंशों के राज्य-काल के बौद्ध-विरोधी प्रचार तक ही सीमित रक्खेंगे, और इस आंदोलन में प्रमुख भाग लेने वाले तीन व्यक्तियों—कु-हुआन, फ़ा-चेन और हुन-ची—को आधार बनाकर उसका विवरण प्रस्तुत करेंगे।

कु-हुआन बहुत ही गरीब घर का था। किसी पाठशाला में प्रविष्ट होकर शिक्षा प्राप्त करना उसके सामर्थ्य के बाहर था; इसलिए वह पाठशाला की इमारत के बाहर खड़ा होकर कक्षा में जो कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता था, उसको सुनता रहता और याद कर लेता था। एक बार उसके पिता ने उसे अपने खेतों से गौरैया भगाने के लिए भेजा; लेकिन, खेत पर उसने चिड़ियाँ तो नहीं भगाईं, वरन् वहाँ बैठे-बैठे पीत-पक्षी पर एक फ़ु (पुरातन शैली में निबंध) लिखता रहा। और इस बीच गौरैया सारा अन्न चुन गयीं। यह देखकर उसका पिता उसे पीटने ही वाला था कि उसकी नज़र फ़ु पर पड़ी और तब उसने लड़के को माफ कर दिया। अध्ययन-प्रेमी वह इतना था कि रात को रोशनी के लिए चीड़ के कुन्दे और चोकर जला-जलाकर पढ़ा करता था।

कु-हुआन की प्रसिद्धतम कृति ई ह्सिआ लुन अथवा 'स्वदेशी और विदेशी धर्मों पर निबंधमाला' ४६७ ई० में प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ की मूल स्थापना यह थी कि बौद्धधर्म एक विदेशी धर्म होने के कारण चीन के अपने धर्मों से निकृष्ट है और इसलिए अग्राह्य है। उसने ताओवाद और बौद्धधर्म के समन्वय का आडम्बर बड़ी चतुराई से यह कहकर किया कि बुद्ध ताओ है, और ताओ बुद्ध—वह दोनों एक दूसरे को अनुबन्ध पत्र के दो एक समान अंशों की तरह अनुपूरित करते हैं; किन्तु स्पष्ट ही उसकी सहानुभूति ताओवाद के पक्ष में थी। बौद्धधर्म के विरुद्ध उसके तर्क नीचे दिए जा रहे हैं :—

"**शिष्ट जनोचित वस्त्र और टोपियों के साथ चुन्नट पड़ा कटिबन्ध पहनना**

चीनियों की प्रथा है। सिर के बाल मुड़ा डालना और ढीले-ढाले वस्त्र पहनना असभ्यों की रीति है। अभिवादन करते समय हाथ उठाना, फर्श पर घुटनों के बल बैठ जाना और एकदम झुक जाना, सम्मान प्रकट करने की वह रीति है, जो राजधानी के निकट के सामन्तों की सभ्य रियासतों में प्रचलित है। लेकिन फर्श पर लोमड़ी या कुत्ते की तरह उत्कटुकासन से बैठ जाना जंगली जातियों में आदर व्यक्त करने का प्रतीक है। ऊपरी और बाहरी पर्तों से युक्त शवमंजूषा में बन्द कर के मृत देह गाड़ देना चीन की प्रथा है। चिता पर जला देना, या जल में प्रवाहित कर देना पश्चिमी असभ्यों की रीति है। संस्कारों को संपूर्ण शरीर से संपन्न करना चाहिए, यह शिक्षा शुभ को शाश्वत बनाने के लिए है। शरीर को विकृत कर के स्वभाव को बदलना, यह शिक्षा प्रलोभन से बचने के लिए है।

"यद्यपि गाड़ियां और जहाज गंतव्य स्थान तक पहुंचा देने में (प्रयुक्त होने के कारण) समान हैं; किन्तु उनसे पार किये जाने वाले क्षेत्र — जल और स्थल — भिन्न हैं। हृदय-परिवर्तन को लक्ष्य मानने में बौद्धधर्म और ताओवाद समान हो सकते हैं; किन्तु असभ्य जातियों और चीनियों के साधनों में अन्तर है। यदि यह कहा जाए कि साध्य समान होने पर साधनों का विनिमय हो सकता है, तो क्या जहाज का उपयोग स्थल पर और गाड़ियों का उपयोग जल में किया जा सकता है? आज-कल चीनियों को पश्चिमी असभ्यों के धर्म की नकल करने की शिक्षा देकर उनके स्वभाव को बदला जा रहा है। यह धर्म न तो (हमारे धर्म के) एकदम समान है और न (उससे) एकदम भिन्न। एक ओर (यह असभ्य लोग) अपने बीवी-बच्चों का परित्याग कर देते हैं, और दूसरी ओर पितरों के लिए बलि आदि देने का भी। जो बातें उनको पसन्द हैं, उन सब को वे मर्यादा के आडम्बर से अनुमोदित मान लेते हैं; किन्तु उनके सिद्धान्त पितृभक्ति और आदरभाव का प्रतिपादन करने वाले धर्म-ग्रन्थों का कट्टरता से दमन कर डालते हैं। इस बात का कभी अनुभव नहीं किया गया कि यह प्रवृत्ति कितनी अवांछनीय और अस्वाभाविक है। अन्त्येष्टि-कर्म के संस्कारों की अवहेलना कर और अपने मूल स्रोत को भुलाकर कोई व्यक्ति अपने पैतृक उद्भव को किस प्रकार जान सकेगा?......

"बौद्धधर्म लालित्यपूर्ण और विस्तृत है, ताओवाद अलंकरण-रहित और विचक्षण है। जो विचक्षण होता है, उसमें स्थूल बुद्धिवाले विश्वास नहीं कर पाते; जो विस्तारयुक्त है, वह विचक्षण बुद्धि वालों की पहुंच के बाहर होता है। बुद्ध के शब्द अलंकृत और आकर्षक हैं; ताओवाद के शब्द सरल और संयत। संयत

होने के कारण उनके गूढ़ार्थ में केवल ज्ञानी पुरुष की ही गति हो पाती है। बुद्ध के शब्द आकर्षक होने के कारण अज्ञानी ही उनमें आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं। बौद्ध-धर्मग्रन्थ प्रचुर और प्रकट है ; ताओ धर्मग्रन्थ दुरूह और गूढ़ है। गूढ़ होने के कारण (उनको समझने का) श्रेष्ठ द्वार कठिनता से दिखाई पड़ता है। प्रकट होने के कारण बौद्धों के सम्यक् मार्ग का अनुसरण करना बहुत आसान है। इन दोनों धर्मों की तुलना करने की यही पद्धति है।

"बौद्धधर्म अशुभ नष्ट करने का एक साधन है, ताओवाद शुभ को विकसित करने का उपाय है। शुभ की साधना में स्वाभाविकता का आदर किया जाता है, अशुभ के विनाश में दृढ़ निश्चयी वीरता का। बुद्ध का मार्ग भव्य और महान् है और पदार्थों के रूपान्तरण के लिए उपयोगी है। ताओवाद का मार्ग गुह्य और सूक्ष्म है, और आत्म-कल्याण के लिए उपयोगी है। सामान्यतः यह भेद निकृष्टता और उत्कृष्टता का भेद है ; क्योंकि पलथी मारकर बैठ जाने और विदेशी भाषा में शास्त्रार्थ करने के संस्कार विदेशी प्रभाव के परिणाम हैं और केवल विदेशियों की समझ में ही आने योग्य हैं। वह कीड़ों के उछलने और चिड़ियों के चहचहाने के समान हैं। क्या ऐसी बातें अनुकरण के योग्य हैं ?"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि हु-कुआन का उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि भारतीय संस्कार और रीतियाँ बुरी और चीनियों से भिन्न हैं तथा भारत में उत्पन्न होने के कारण बौद्धधर्म चीनवासियों के लिए उपयुक्त नही है।

बौद्धधर्म के विरुद्ध सैद्धान्तिक आधार पर प्रचार करने वाले कनफ्यूशिअन-वर्ग का प्रतिनिधि-फ़ा-चेन है। उसके समय के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ; किन्तु इतना ज्ञात है कि वह दक्षिण चीन के लिआंग-वंशीय वू-ती और चि-वंशीय चिंग लिग-वांग का समकालीन था। वह कनफ्यूशसीय साहित्य का प्रकांड विद्वान् और पुरातन उत्कृष्ट साहित्य, विशेषकर 'संस्कारों की पुस्तक' का पंडित था। राजकुमार चिंग लिंग वांग के निकट एकत्र विद्वान्-मंडली में वह भी शामिल हो गया। आगे चलकर वह (वर्तमान हुपाई प्रान्त के) ई-तु जिले का निरीक्षक नियुक्त हुआ। कुछ समय बाद, वांग लिआंग नामक एक पद-च्युत अधिकारी के मामले में सन्निहित होने के कारण उसको लिआंग वू-ती ने ५०५ ई० में कैंटन में निर्वासित कर दिया। वहाँ कुछ वर्ष बिताने के बाद वह राजधानी फिर लौट आया और चुग शु लाग अथवा राज-सचिव के पद पर नियुक्त किया गया। जिन दिनों वह चिग लिग वांग का सहयोगी था, उसने बौद्धधर्म के

कर्म और आत्मा की अनश्वरता विषयक सिद्धान्तों के विरुद्ध अपना खंडन लिखा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बौद्धधर्म के प्रति राजदरबार के तत्कालीन पक्षपात से ही उसको ऐसा करने की प्रेरणा मिली। उसने लिखा—"बुद्ध राज्य के लिए घातक हैं और श्रमण हमारे आचार को भ्रष्ट किये दे रहे है।" "जनता भिक्षुओं की सेवा करने मे अपनी सारी संपत्ति नष्ट किये दे रही है, और बुद्ध की चाटु-कारिता में उसका दिवाला निकला जा रहा है।" उसने यह भी अनुभव किया कि बौद्ध भिक्षु "अवीचि नर्क की यंत्रणाओं से भयभीत कर के, अपने थोथे शब्दों से बहकाकर और तुषित स्वर्ग के भोगों की लुभावनी कल्पना सामने रखकर अपनी अस्पष्ट और दुरूह बातों से जनता को ठग रहे हैं। इसका फल यह हुआ है कि लोगों ने विद्वानों का परिधान छोड़कर भिक्षुओं की शैली में वस्त्र पहनना आरम्भ कर दिया है, बलि-प्रदान के पात्रों को निषिद्ध कर के भिक्षा-पात्र अपना लिया है। परिणाम-स्वरूप, परिवारों से प्रिय व्यक्ति निकलकर चले गए है, और अनेक वंशों का दीपक बुझ गया है।" अतः वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस विदेशी धर्म की जड़ पर कुठाराघात करने के लिए उसके कर्म और आत्मा सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों का प्रत्याख्यान करना आवश्यक है।

कर्म के सम्बन्ध में फ़ान ने यह युक्ति दी कि जन्म और मृत्यु, वृद्धि और क्षीणता, सभी एक प्राकृतिक अनुक्रम का अनुसरण करते हैं, उसके लिए कर्म की प्रक्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है। जब उससे राजकुमार चिंग लिंग वांग ने पूछा कि "तब समाज में गरीब-अमीर, ऊंच-नीच के अस्तित्व की व्याख्या कैसे करोगे ?" तो उसने उत्तर दिया—" मनुष्यों के जीवन एक ही वृक्ष के खिले हुए फूलों की तरह हैं, जो वायु के वेग द्वारा टूटकर जमीन पर गिर पड़ते हैं। उनमें से कुछ पर्दो से टकराकर गलीचों और कालीनों पर जा गिरते हैं, और कुछ घूरे के ढेर पर। जो गलीचों और कालीनों पर जा गिरते हैं, श्रीमान् जैसे होते है, और घूरे के ढेर पर गिरने वाले मुझ निरीह जैसे। उच्च और निम्न भिन्न पथों का अनुसरण करते हैं। इस सब में कर्म की क्रिया की आवश्यकता कहाँ पड़ती है ?"

कर्म के इस प्रत्याख्यान के बाद फ़ान ने आत्मा की अनश्वरता का खंडन करने के लिए शेन मिएह लुन अथवा 'आत्मा की अनश्वरता पर निबन्ध' की रचना की। इस निबन्ध का मूल सिद्धान्त निम्नलिखित है :—

"आत्मा शरीर ही है और शरीर आत्मा है। शरीर की सत्ता रहती है, तो आत्मा का भी अस्तित्व रहता है; यदि शरीर नष्ट हो जाता है, तो आत्मा

का भी नाश हो जाता है। शरीर आत्मा का मूल द्रव्य है, आत्मा शरीर की प्रक्रिया है। जब हम शरीर कहते हैं, तो हमारा अभिप्राय होता है उसका मूल द्रव्य ; और आत्मा कहने का अर्थ होता है उसकी प्रक्रिया। इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं माना जा सकता। द्रव्य और आत्मा में वही सम्बन्ध है, जो चाकू और उसकी तीक्ष्णता में। जो सम्बन्ध चाकू और तीक्ष्णता में है, वही शरीर और प्रक्रिया में है। 'तीक्ष्णता' लक्षण चाकू नहीं है, 'चाकू' संज्ञा तीक्ष्णता नहीं है। किन्तु तीक्ष्णता को हटा लेने से चाकू नहीं रह जाता, और चाकू हटा लेने से तीक्ष्णता नहीं रह जाती। हमने ऐसा न कभी देखा है न सुना कि चाकू तो नष्ट हो गया, लेकिन उसकी तीक्ष्णता बच गई। तब शरीर नष्ट हो जाने पर आत्मा का अस्तित्व कैसे बना रह सकता है?"

फ़ा-चेन के निबन्ध बौद्धधर्म के विरुद्ध प्रचार करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए। इसका प्रमाण इसी बात से मिल सकता है कि स्वयं सम्राट् लिआंग वू-ती ने भी उनका उत्तर दिया। उसने इन प्रबन्धों को वितरित करके अपने मंत्रियों और अधिकारियों से उनका प्रत्याख्यान करने की प्रार्थना की। कुल मिलाकर ६२ व्यक्तियों ने उत्तर दिया। यह सभी उत्तर (जो अत्यन्त संक्षिप्त थे), ताओ-हुआन कृत हुंग मिंग चि अथवा '(बुद्धोपदेश के) प्रचार और स्पष्टीकरण (पर प्रकीर्ण लेखों का) संग्रह' में संकलित हैं और स्वाभाविक ही सब फ़ा-चेन का खंडन करते हैं।

फ़ान-चेन के उपरान्त हम हुन-चि के विषय में विचार करेंगे, जो यह प्रचार करने वालों का प्रतिनिधि था कि बौद्धधर्म साम्राज्य की जड़ खोदे डाल रहा है। पाई शिह अथवा 'उत्तर चीन के इतिवृत्त' में उसके जीवन के विषय में एक लघु टिप्पणी के अनुसार, हुन-चि एक प्रसिद्ध विद्वान् था, जिसकी आकांक्षा अपने युग के आचार में सुधार करने की थी। वह लिआंग वू-ती के सम्राट् होने के पहले से ही उससे परिचित था ; किन्तु जब लिआंग सिंहासन पर बैठा, तब उसने हुआन को कोई पद नहीं दिया। इससे हुआन बहुत क्षुब्ध हुआ और कहा—"मैं ढाल के गंड में रोशनाई घोंटकर विद्रोह के लिए आह्वान की रचना करने के अवसर की प्रतीक्षा करूंगा।" इस बात से सम्राट् बहुत अप्रसन्न हुआ। आगे चलकर हुआन ने देखा कि सम्राट् बौद्धधर्म का पूर्ण भक्त हो गया है और अपरिमित धन लगाकर मन्दिरों का निर्माण तथा मूर्तियों की स्थापना करवा रहा है। इस अवसर का उपयोग उसने बौद्धधर्म पर अतिशय निन्दात्मक आक्रमण करने के उद्देश्य से लुन फ़ु चिआओ अथवा 'बौद्धधर्म पर निबन्ध' लिखकर

किया। इस खंडनात्मक ग्रन्थ को पढ़कर सम्राट् बहुत क्रुद्ध हुआ और हुन को प्राणदण्ड देने का विचार किया; किन्तु वह छिपकर वाई-राज्य को भाग गया, जहाँ युआन-चिन तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ काओ-तेंग की हत्या कर डालने के लिए आयोजित षड्यंत्र में भाग लेने के कारण उसको ५४७ ई० में प्राण-दण्ड मिला।

हान-वंश के उपरान्त चीन की आंतरिक अशान्ति का कारण विदेशी बौद्ध-धर्म को मानकर हुन ने उसके विरुद्ध अपने आक्रमण का श्रीगणेश किया :—

"अभिजात वर्ग द्वारा यांग-त्जी की पूर्वी सीमा की ओर पलायन करने के उपरान्त चीन की भूमि पर यह असभ्य धर्म फला-फूला है और उसने पिता और पुत्र के मध्य स्नेहपूर्ण सम्बन्धों को भग्न किया है, राजा और मंत्री के मध्य उचित व्यवहार को विकृत किया है, पति और पत्नी के बीच सामंजस्य की उपेक्षा की है और मित्रों के मध्य पारस्परिक विश्वास को नष्ट कर दिया है। तीन सौ वर्षों से अधिक समय से समुद्र में एक तूफान-सा मचा हुआ है।"

इस प्रकार श्रीगणेश करने के उपरान्त उसने बुद्ध के विरुद्ध अपना मुख्य तर्क दिया। उसके मतानुसार शाक्य जाति का उद्भव मूलतः उन असभ्य जातियों से हुआ, जो चीन से खदेड़ दी गई थीं। यही लोग साई कहलाए, जिनको यूचिओं ने पामीर की ओर भगा दिया, जहाँ से दक्षिण की ओर जाकर वे शाक्य बन गए। यह शाक्य लोग स्वामिभक्त, धर्माचरण, दयालुता और सदाचार का आचरण नहीं करते थे। उनमें जो सब से अधिक लोलुप और मक्कार था, वह फ़ (बुद्ध) कहलाया, जिसका अर्थ है कुटिलमति और उग्र, तथा भ्रान्ति और अव्यवस्था फैलाने वाला व्यक्ति। इसके अतिरिक्त शाक्यमुनि अपनी माता की पसलियों को तोड़कर पैदा हुआ था, जिससे माता की मृत्यु हो गई थी। इस विषय में वह हि आ ओ चिंग के सदृश था। (हि आ ओ अपनी माता का भक्षण कर जाने वाला एक उल्लू, और चिंग अपने पिता को खा जाने वाला एक पशु, माना जाता था। दोनों मातृ-पितृ-द्रोही पुत्र के प्रतीक हैं)। बड़े होने पर उसने अपने राजा-पिता का विरोध किया और उसे पत्थरों तथा वाणों का लक्ष्य बनाया, परम्परागत आचार की अवज्ञा की और अनशन किया। ऐसा व्यक्ति त्राणदाता किस प्रकार हो सकता है? उसने अपने कुछ क्रूर अनुयायियों को एकत्र कर उनके वस्त्र बदलवा दिए, सिर मुंड़ा दिए, और उनको ऐसे धूर्ततापूर्ण थोथे शब्दों का उपदेश दिया, जिनका उल्लेख तक नहीं किया जा सकता। उसके ९६ प्रकार के उपदेशों में यह सब से बढ़कर लोलुपतापूर्ण था। जब विदु-

दाभ ने शाक्यों का हत्याकांड किया, तब गौतम तटस्थ भाव से अलग खड़ा देखता रहा और उसने उनकी सहायता में उंगली भी नहीं हिलाई। जब अपने जीवन-काल में वह अपने जाति-भाइयों की रक्षा नहीं कर सका, तब मरने के बाद वह दूसरों का त्राण कैसे कर सकेगा? इसके बाद हुन ने बौद्धों को पाँच नियम विरुद्ध आचरणों का अपराधी बताया और यह आरोप लगाया कि वे साम्राज्य का विनाश करने के उद्देश्य से राजद्रोहात्मक कार्य कर रहे हैं। अपने निबन्ध के अन्त में दक्षिण चीन के लिउ-सुंग और चि के उदाहरणों को लेकर उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि बौद्धधर्म को स्वीकार कर लेने के कुपरिणामों के कारण ही उनका पतन हुआ।

अब तक बौद्धधर्म पर जितने भी आक्रमण हुए हैं, उनमें हुन का निबन्ध सब से अधिक सशक्त और कटु है। इस निबन्ध का विश्लेषण करने पर उसमें हमें बौद्धधर्म के विरुद्ध हुन द्वारा लगाए सात आरोप मिलते हैं :—

१. बौद्धधर्म राजसत्ता की शक्ति पर कुठाराघात कर रहा था, तथा सम्राटीय प्रभुत्व एवं रीतियों पर अधिकार जमा रहा था।

२. जिन राजवंशों ने बौद्धधर्म को प्रश्रय दिया, वह उनके राज्य-काल की अवधि को अल्प करने में सहायक हुआ।

३. समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने कर्त्तव्यों को पालन न करने के लिए प्रोत्साहित करके बौद्धधर्म राज्य के कनफ्यूशसीय आदर्श को विध्वंस किए दे रहा था।

४. ब्रह्मचर्य पर बल देने के कारण बौद्धधर्म परिवार के लिए घातक था।

५. स्त्रियों और पुरुषों को उत्पादनशील क्रियाओं से हटाकर और अनुत्पादक कार्यों में संपत्ति नष्ट करके बौद्धधर्म राज्य के आर्थिक कल्याण के लिए घातक सिद्ध हो रहा था।

६. बौद्ध लोग पाखंडी थे।

७. बौद्ध लोग अनैतिक आचरण के अपराधी थे।

हान यु और फु यी जैसे तांग-कालीन परवर्ती कनफ्यूशसीय विद्वानों ने हुन चि द्वारा निर्दिष्ट विषयों में से ही कुछ का अधिक विस्तार से प्रतिपादन किया।

"लिऊ सुंग और चि, इन दो राजवंशों ने बुद्ध में श्रद्धा की, भिक्षुओं का आदर किया, अपने राष्ट्रीय आचार को त्याग दिया और अपने मन्दिरों का रूप बदल डाला; लेकिन बुद्ध पापात्मा और भिक्षु मक्कार थे। वे असत्य का

प्रचार करने के लिए कटिबद्ध थे, भ्रूणहत्या और अपनी संतान का वध किया करते थे, उच्छृंखल दुराचार में प्रवृत्त रहते थे और उन्होंने प्राचीन नीति-शिक्षा को भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार वे सुंग और चि-वंशों के पतन और विध्वंस के कारण बने। सुंग और ची-कालीन मन्दिर और प्रतिमाएं अब भी सर्वत्र वर्तमान हैं। यदि पृथ्वीनाथ पुराने उदाहरणों का अनुसरण करते हैं (और बुद्ध की पूजा करते हैं) तो यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सुंग और चि-वंशों की कथा अनिवार्य रूप से फिर दुहराई जाएगी। अब ग्रीष्म ऋतु में भिक्षु और भिक्षुणियां मौज से बैठकर ध्यान में लीन रहते हैं और कहते हैं कि हम प्राणिमात्र के जीवन को अमूल्य समझते हैं, इस कारण चींटी की भी हत्या नहीं करते। एक ओर वे अपने राजा और माता-पिता की अवज्ञा करते हैं, किन्तु दूसरी ओर भ्रांतिवश वे प्राणिमात्र के प्रति मैत्री का अभ्यास करते हैं। भ्रूणहत्या करके वे अपनी संतान का तो वध कर डालते हैं; लेकिन मक्खी और मच्छरों के प्राण नहीं लेते। 'परिवर्तनों की पुस्तक' में राजा और मंत्री, पति और पत्नी, पिता और पुत्र को संयुक्त करने वाले तीन प्रमुख और छः गौण सम्बन्धों का विवेचन किया गया है। लेकिन शाक्यमुनि यह शिक्षा देता है कि राजा राजा की तरह आचरण न करे, मंत्री मंत्री की तरह आचरण न करे, और यहां तक कि पुत्र पुत्रवत आचरण न करे। इस प्रकार सारे सम्बन्ध विश्रृंखल हो जाते हैं।"

अध्याय ६

उत्तरी चीन में बौद्धधर्म

(क) युवान वाई-वंश के शासन-काल में बौद्धधर्म

पाँचवें अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि ४२० ई० में पूर्वी त्सिन-वंश के पतन से चीन के इतिहास में नान-पाई-चाओ नामक युग का आरम्भ माना जाता है। साम्राज्य उत्तर में तातारों और दक्षिण में चीनियों के मध्य बंट गया। जैसे रोम के इतिहास में साम्राज्य पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के पूर्व ट्यूटन कबीलों ने उसके उत्तरी भाग को अपने राज्य में मिला लिया था, उसी प्रकार चीन में तातारों ने दक्षिण की ओर बढ़ने के पहले उत्तरी प्रदेश में अपने पैर अच्छी तरह जमा लिए।

उत्तर के सब से अधिक शक्तिशाली और दीर्घजीवी राज्य को तोवा ने स्थापित किया था। उत्तरी वाई अथवा युआन वाई नामक उसके वंश ने ३८६ ई० से ५३४ ई० तक शासन किया। उसके उपरान्त तोवा से ही संबंधित दो अल्पजीवी वंशों—पश्चिमी वाई और पूर्वी वाई—ने क्रमशः ५५७ ई० और ५५० ई० तक राज्य किया।

युआन वाई सम्राट् बौद्धधर्म के पक्ष में थे। अतः बौद्धधर्म को प्रायः राज्य का संरक्षण प्राप्त रहा और दमन किए जाने के अवसर कम ही आए। इस वंश के तृतीय सम्राट् तोवा-ताओ की गणना वाई-वंश के महान्तम सम्राटों में की जाती है। तोवा सम्राटों की राजधानी पहले शान्सी में स्थित ता-तुंग में थी ; किन्तु आगे चलकर पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होंने होनान में स्थित लो-यांग को अपनी राजधानी बनाया। उन्होंने चीनी संस्कृति और संस्थाओं को अपनाने और उनको प्रश्रय देने की चेष्टा की। अन्ततः उन्होंने तोवा भाषा और रीतियों के प्रचलन का निर्देश किया, पारिवारिक नामकरण और न्यायालयों के संबंध में चीनी परिपाटी के अनुसरण की आज्ञा दी और चीनियों के साथ अन्तर्विवाह संबंध को प्रोत्साहित किया। तोवा-सम्राटों ने उत्तर की ओर से होने वाले नए आक्रमणों से चीनी सभ्यता की रक्षा की और इस उद्देश्य से उन्होंने कम-से-कम दो सीमांत प्राचीर बनवाए। उनमें से कुछ शासक बौद्धधर्म को

प्रश्रय देने के लिए विख्यात हैं, और कुछ ने कनफ्यूशिअनवाद और ताओवाद को अपनाया। उदाहरणार्थ, जब तोवा ने पीत नदी के उत्तरी तट पर आक्रमण किया, तब वहाँ के बौद्धों और ताओवादियों के प्रति आदर-भाव प्रकट किया। उसने अपने राज्य के प्रत्येक नगर में स्तूपों और मन्दिरों के निर्माण की आज्ञा दी[1]।

युआन वाई-काल का सब से प्रख्यात बौद्ध धर्मविक्रम था, जो यु-चाउ स्थित ह्वांग-तुंग का निवासी था। उसका गोत्र-नाम ली था। उसने सेंग-मेंग और तान-लांग आदि अपने साथियों सहित ४२०-४५३ ई० में भारत की यात्रा की और अपने साथ अवलोकितेश्वर-महास्थान-प्राप्त-व्याकरण-सूत्र चीन लाया[2]।

ह्जुआन-काओ का गोत्रनाम वाई था और वह शेसी प्रान्त का रहने वाला था। उसका जन्म ८ फरवरी, ४०२ ई० में हुआ था। यह कहा जाता है कि जिस कमरे में उसका जन्म हुआ वह एक अलौकिक प्रकाश से आलोकित हो उठा था। यह भी कहा जाता है कि उसने बारह वर्ष की अवस्था में चुंग-नान पर्वत स्थित एक मठ में प्रवेश किया और तीन वर्ष के उपरान्त वहाँ के पहाड़ियों को बौद्धधर्म का उपदेश देने लगा। उसने ध्यान-सिद्धान्तों की शिक्षा कुआई-यू स्थित 'पत्थर भेड़ मठ' में बुद्धभद्र से प्राप्त की। लगभग ४१४ ई० में धर्मप्रिय नामक एक भारतीय भिक्षु चीन आया। वह ध्यान-संप्रदाय का आचार्य था। ह्जुआन-काओ तथा उसके शिष्यों ने उसका बड़ा सत्कार किया[3]। वाई सम्राट् ताई-वू-ती ने ४३९ ई० में लि-आंग राज्य को जीत लिया, और सम्राट् के साले के अनुरोध पर ह्जुआन-काओ, पिंग-चेंग लौट आया। राजकुमार कुआंग ह्जु-आन-काओ का शिष्य था। किसी कारणवश उसका पिता उससे अप्रसन्न हो गया था। ह्जुआन-काओ ने राजकुमार को आपत्ति से बचने के निमित्त सात दिन तक भगवान् बुद्ध से प्रार्थना करने का परामर्श दिया। सम्राट् ताई-वू-ती ने रात को स्वप्न में देखा कि उसका पिता उससे वार्तालाप करने के लिए आया और दूसरों के निन्दात्मक शब्दों को कान देने के लिए उसकी भर्त्सना की। जगने पर उसने आज्ञा दी कि उसके पुत्र को राज्य-कार्य में मंत्रणा देने का विशेषाधिकार दिया जाए[4]; किन्तु कोउ तिएन-स्सु और दरबार के एक मंत्री त्साई-हाओ ने

---

१ दे० 'वाई-वंश की पुस्तक में बौद्धधर्म और ताओवाद के अभिलेख'

२ दे० 'काई युआन-काल में (संकलित) शाक्यमुनि उपदेश-सूची'

३ दे० 'प्र० भि० सं०'

४ दे० 'सुंग-वंश की पुस्तक' और 'दक्षिणी ची-वंश की पुस्तक'

सम्राट् से ह्जुआन-काओ के विरुद्ध यह कहा कि उसके स्वप्न को ह्जुआन-काओ ने प्रेरित किया है और इसलिए कानून के अनुसार उसका वध होना चाहिए। सम्राट् इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और ४४४ ई० में सैंतालीस वर्ष की आयु में राजाज्ञा से ह्जुआन-काओ को प्राणदंड दिया गया।

बुद्धशांत मध्यभारत का निवासी था और वह ५२० ई० में चीन आया। उसने लो-यांग के 'श्वेताश्व-मठ' और लिन-चांग के 'स्वर्ण-कुसुम मठ' में ५३८ ई० तक अनुवाद-कार्य किया। कुल मिलाकर उसने ग्यारह खंडों में दस ग्रन्थो का अनुवाद किया, जिनमें से केवल एक ही उल्लेखनीय है। वह है दो खंडों में असंग कृत महायान-संपरिग्रह-शास्त्र। तीस वर्ष उपरान्त इसी ग्रन्थ का अनुवाद दक्षिण चीन में परमार्थ ने तीन खंडों में फिर किया।

श्रमण चिह् चिआ-येह का असली नाम किंकार्य का प्राकृत रूप केकय प्रतीत होता है। वह पश्चिम प्रदेश का निवासी था और उसने उन्नीस खंडों में पाँच ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिनमें उल्लेखनीय केवल एक—'धर्म पिटक के संवाहन के कारणों का अभिलेख' है। तान-याओ की प्रार्थना पर उसने इस ग्रन्थ का अनुवाद छः खंडों में युआन वाई सम्राट् ह्जिआओ वेन-ती के शासन के द्वितीय वर्ष (४७२ ई०) में पाई-ताई नामक स्थान में किया। इस ग्रन्थ मे महाकाश्यप से लेकर भिक्षु सिह तक प्रथम तेईस महास्थविरों का वर्णन किया गया है; किन्तु उस में सप्तम आचार्य वसुमित्र तथा अन्तिम चार आचार्यो का वर्णन नहीं है, जो संभवतः चिह्-चिआ-येह के उपरान्त हुए थे[1]।

बौद्ध-विरोधी आन्दोलन—उत्तरी चीन में युआन वाई-काल में सम्राटों का संरक्षण पाकर ताओवाद ने उन्नति की थी। उस समय कुओ-चिएन-चिह् नामक एक प्रसिद्ध ताओवादी था, जिसने होनान प्रान्त के सुंग पर्वत में कई वर्ष यती की तरह व्यतीत किए थे। उसको एक बार लाओ-त्ज़े का दर्शन प्राप्त हुआ और उनसे उसने बीस लेखपटों की एक नई धर्म-पुस्तक प्राप्त की। वह समस्त ताओ-वादियों का तिएन-स्मु अथवा प्रधान गुरु नियुक्त हुआ। ४२८ ई० में कोउ-चिएन-चिह् सुंग पर्वत पर अपने एकांतवास को समाप्त कर सम्राट् ताई वू-ती के महल को गया, जो उन दिनों उत्तरी शांसी प्रान्त में ता-तुंग के निकट स्थित था। सम्राट् ने उसका स्वागत किया और उसे ताओवादियों का नेता स्वीकार कर लिया। तत्कालीन मंत्री त्साई-हाओ भी कोउ का शिष्य था। इसलिए लोगों ने

१ दे० 'क्रमागत राज-वंशों में त्रिरत्न संबंधी अभिलेख'

कोउ का बड़ा आदर किया और स्वयं सम्राट् भी ४४२ ई० में एक बार उसके मन्दिर को गया[1]।

वाई-वंश के राज्य-काल में ताओ मत उन्नति करता रहा और जब लो-यांग राजधानी बना, तो वहाँ एक ताओ-मन्दिर की स्थापना की गई और अनेक ताओ-प्रचारक क्षेत्र में आए; किन्तु उनमें से कोई भी कोउ-चिएन-चिह् के समान प्रसिद्ध नहीं हो सका। बौद्धधर्म विदेशी होने के कारण राष्ट्रवादी चीनियों की कट्टरता को क्षुब्ध करता था और इस कारण ताओवादियों का बौद्धधर्म की प्रतियोगिता से चिढ़ना स्वाभाविक ही था; किन्तु फिर भी ताओवादियों ने किसी सीमा तक बौद्धधर्म से समझौता करके चलना उचित समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि कोउ चिएन-चिह् ने बुद्ध के लिए यह कहा है कि उन्होंने 'पश्चिमी बर्बरों' में ताओ की स्थापना की और वे अमर हो गए। इस हेतु उनका आदर तो किया जाना चाहिए, किन्तु लाओ-त्ज़े और अन्य ताओवादी उच्चतर कोटि के महात्माओं के समान नहीं।

बौद्धधर्म और ताओ-धर्म के मध्य प्रतियोगिता होने के कारण दोनों को समान रूप से अत्याचार और दमन का भागी होना पड़ा। बौद्धधर्म के विरुद्ध ४४४ ई० में वाई-सम्राट् के दमनचक्र से ताओवाद बच गया था। बौद्धधर्म के विरुद्ध उस आन्दोलन को वस्तुतः ताओवादियों ने इस आधार पर प्रेरित किया था कि बौद्धधर्म एक विदेशी मत है, जिसका चीनी विद्वानों के प्रीतिपात्र सुवर्ण-युग से परम्परागत कोई सम्बन्ध ही नहीं है। युआन वाई सम्राट् ताई-वू-ती के शासन के बाईसवें वर्ष (४४५ ई०) में सेनापति काई-वू ने कुआन-चुंग में विद्रोह किया और सम्राट् को पराजित कर दिया। अगले वर्ष सम्राट् विजयी होकर चांग-आन लौटा और वहाँ के मठों में उसने बहुत-से शस्त्रास्त्र पकड़े। इससे वह बौद्ध-भिक्षुओं पर बहुत कुपित हुआ और उसी समय उसके मंत्री त्साई-हाओ ने बौद्ध-मठों और ग्रन्थों को विध्वंस करने तथा समस्त भिक्षुओं का वध करने की राजाज्ञा निकाल दी।[2]

बौद्धधर्म का पुनःस्थापन—बौद्धधर्म के विरुद्ध सम्राट् की आज्ञा निकालने के चार वर्ष बाद (४५० ई० में) त्साई-हाओ को प्राण-दण्ड मिला। स्वयं सम्राट् भी बौद्धधर्म-विरोधी कार्यों से ऊब उठा था। अगले वर्ष राजकुमार कुआंग की

---

१ 'वाई राज-वंश की पुस्तक में बौद्धधर्म और ताओवाद के अभिलेख'
२ दे० वही

मृत्यु हुई (४५२ ई०) और सम्राट् की भी हत्या कर दी गई। तदुपरान्त उसका पौत्र वेन-चेन-ती बारह वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा। राज्यारोहण के एक वर्ष बाद उसने एक राजाज्ञा द्वारा बौद्धधर्म को पुनः स्थापित किया और अपनी प्रजा को भिक्षु होने की आज्ञा प्रदान की। जनश्रुति के अनुसार तान-याओ नामक एक चीनी भिक्षु अल्पवयस्क सम्राट् पर बहुत प्रभाव रखता था। तान-याओ ध्यान मत का आचार्य था। वह वाई-काल में लिआंग-चाउ से चांग-आन आया था। उसने सम्राट् के सम्मुख पर्वतमाला में कुछ गुफाएं निर्मित कराने का प्रस्ताव रखा। वे गुफाएं आधुनिक काल में (उत्तरी शान्सी प्रान्त स्थित) युन-कांग की गुफाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक गुफा में बुद्ध की एक प्रतिमा है, जिनमें सब से बड़ी ७० फीट ऊंची और शेष साठ फीट ऊंची हैं। तान-चाओ ने भारतीय भिक्षु ज्ञान यशस के सहयोग से चौदह ग्रन्थों का अनुवाद किया ; किन्तु 'क्रमागत राजवंशों के शासन-काल में त्रिरत्न सम्बन्धी अभिलेख' के अनुसार स्वयं तान-याओ ने ही कुल मिलाकर तीन ग्रन्थों का अनुवाद किया। 'धर्मपिटक संवाहन अभिलेख' में उसके एक चतुर्खंडीय अनुवाद का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध जनसंख्या और मठ—सम्राट् वेन-चेन-ती द्वारा बौद्धधर्म को पुनः स्थापित करने की राजाज्ञा निकालने के उपरान्त बौद्ध-धर्मावलम्बियों और मठों की संख्या में अभिवृद्धि हुई। 'वाई-वंश की पुस्तक में बौद्धधर्म और ताओ धर्म सम्बन्धी अभिलेख' से हमें कुछ सूचना मिल सकती है :—

समय	मठ-संख्या	भिक्षु-भिक्षुणियों की सं०
ह्जिआओ वेन ती का प्रथम वर्ष (४७७ ई०)	राजधानी में १०० और अन्यत्र ६,४७८	और राजधानी में २,००० और अन्यत्र ७७,२५८
ह्जुआन वू ती का मध्य-काल (५१२-५१५ ई०)	राजधानी लो-यांग में ५०० अन्यत्र १३,७२९	संख्या में अभिवृद्धि
वाई-वंश का अंतिम काल (५३४ ई०)	राजधानी में १३६७ अन्यत्र लगभग ३०,०००	लगभग बीस लाख

इस गणना में निश्चय ही अतिशयोक्ति है। 'इतिहास दर्पण' में यह अवश्य लिखा हुआ है कि लगभग प्रत्येक परिवार ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया और भिक्षुओं की संख्या तो इतनी अधिक हो गई कि श्रमिकों के अभाव के कारण खेती की उपेक्षा होने लगी। उत्तरी चीन में गृहयुद्ध छिड़ने पर बौद्ध धर्मा-नुयायी सैनिक सेवा से ही नहीं मुक्त रहे, वरन् प्रचलित कानून की पहुंच के भी बाहर रहे, क्योंकि नियमों के उल्लंघन के लिए उनके दंड की व्यवस्था बौद्ध

अनुशासन के अनुसार होती थी। इसके अतिरिक्त मन्दिरों के द्वार सभी के लिए खुले रहते थे, उनके लिए भी जो कानून द्वारा दंड पा चुके होते थे। सम्राट् ताई वू-ती ने चांग-आन मठ में एकत्रित शस्त्र पकड़े थे। ह्आओ-वेन ती के राज्य के तृतीय वर्ष (४७३ ई०) से लेकर हुआन वू-ती के राज्य के द्वितीय वर्ष (५१७ ई०) तक के मध्य चालीस वर्षों में बौद्ध-भिक्षुओं ने आठ बार राज्यक्रांति की।[1] ह्आओ वेन-ती ने सम्राट् होने पर भिक्षु होने वाले व्यक्तियों की संख्या एक राजाज्ञा निकालकर निर्धारित कर दी। सरकार प्रतिवर्ष सब से बड़े जिले में केवल ३०० व्यक्तियों को, मध्यम श्रेणी के जिले में २५० को और छोटे जिले में केवल २०० को भिक्षु होने की आज्ञा देती थी। उसने लो-यांग में 'चाओ हुआन सजू' नामक मठ की स्थापना भी की। मठ में बौद्ध न्यायाधीश हुआ करते थे, जो मन्दिर सम्बन्धी विषयों तथा भिक्षुओं के मध्य झगड़ों पर निर्णय देते थे।

सम्राट् हुआन वू-ती के राज्य के प्रथम वर्ष में एक राजाज्ञा निकाली गई, जिसके द्वारा हत्या के अपराधी बौद्ध-भिक्षु के दंड की व्यवस्था सरकारी कानून के अनुसार निर्धारित कर दी गई। दूसरे अपराधों का दंडविधान मठ के अनुशासन के अनुसार चलता रहा।

(ख) पूर्वी वाई, पश्चिमी वाई, चाई और चाउ राज्यकालों में बौद्धधर्म

युआन वाई-वंश के अन्तिम काल में आन वू, ह्आओ मिंग और ह्आओ वू जैसे कुछ दुर्बल सम्राट् आपस में लड़ते रहे। ह्आओ वू के सिंहासनारूढ़ होने पर युआन वाई पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभाजित हो गया। इनमें से पहले का अस्तित्व बीस वर्ष तक रहा और दूसरे का केवल सत्रह वर्ष। इनके उत्तराधिकारी क्रमशः उत्तरी चाई और उत्तरी चाउ-वंश हुए।

सम्राट् ह्आओ वू-ती के सिंहासनारूढ़ रहने के समय (४७१–४९९ ई०) तक उत्तरी चीन में बौद्धधर्म फैल चुका था। उस काल में सेंग-युआंग, ताओ-तेंग, हुई-ची जैसे अनेक प्रख्यात बौद्ध पेंग-चेन में रहते थे और सत्यसिद्धि-सूत्र के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे[2]। भिक्षु चिह्-तान अभिधर्म-शास्त्र का आचार्य था।

उत्तरी चाउ-काल के आरम्भ में लोग भिक्षु मिंग-येन का आदर सत्यसिद्धि

---

१ दे० वही

२ दे० 'प्र० भि० सं०'

सम्प्रदाय का आचार्य मानकर करते थे और हुई-सुग को अभिधर्म का। फ़ा-शांग और उसके शिष्य हुई-युआन महापरिनिर्वाण-सूत्र के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे[1]। सत्यसिद्धि और अभिधर्म का प्रचार सारे चीन में था।

पूर्वी वाई सम्राट् हिआओ चिंग ने जब अपनी राजधानी लो-यांग से येत-चेन में स्थापित की, तब लो-यांग में रहने वाले भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी नई राजधानी को चले गए। उन दिनों नए बौद्धमठों के निर्माण के लिए लोग दान दिया करते थे। किन्तु ५३८ ई० में सम्राट् ने एक राजाज्ञा द्वारा नए मन्दिरों का निर्माण बन्द करवा दिया। तीन वर्ष के उपरान्त सम्राट् ने दूसरी राजाज्ञा द्वारा येन चेन में स्थित एक पुराने महल को 'स्वर्गीय शान्ति मठ' नाम में परिवर्तित किए जाने का आदेश दिया[2]। इससे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजनीतिक अशांति के बावजूद मन्दिरों के निर्माण की प्रवृत्ति जारी रही।

इसके अतिरिक्त स्वयं सम्राट् हिआओ-चिंग भी बौद्धधर्म में अभिरुचि रखता था। वह प्रमुख भिक्षुओं को बौद्धधर्म पर प्रवचन करने के लिए राजमहल में आमंत्रित किया करता था। राजधानी में उस समय चार हजार बौद्ध मठ थे, जिनमें अस्सी हजार भिक्षु-भिक्षुणी रहते थे और राजधानी के बाहर अन्यत्र चालीस हजार मठों में बीस लाख भिक्षु-भिक्षुणी थे।[3]

पश्चिमी वाई-वंश द्वारा राजधानी को लो-यांग से चांग-आन स्थानान्तरित करते समय शासन-व्यवस्था ठीक नहीं थी। लेकिन सम्राट् वेन-ती और यू वेन बौद्धधर्म के दृढ़ भक्त थे। उन्होंने ता चुंग-हिजन मठ की स्थापना की और संघ सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध के लिए भिक्षु ताओ-चेन को वाई-राज्य का ता-तुंग बनाकर आमंत्रित किया। उन्होंने तान-हिजएन नामक एक भिक्षु को 'बोधि-सत्त्व-पिटक-सूत्र की रूप-रेखा' और '१२० धर्म-पर्याय की पुस्तक' लिखने का आदेश दिया। भिक्षु तान-येन और ताओ-आन को धर्म-प्रचार तथा अनुवाद के कार्य में भी सम्राट् यू-वेन सहायता दिया करता था।[4]

पश्चिमी वाई-वंश ने कनफ्यूशिअन मतावलम्बी तथा बौद्धधर्म के भी विद्वान्

---

१ देखो 'प्र० भि० स० अवशेष'

२ दे० 'लो-यांग मन्दिरों के अभिलेख' और 'बौद्धधर्म तथा ताओवाद के अभिलेख'

३ दे० 'प्र० भि० सं० अवशेष'

४ दे० 'काइ-युआन-काल (में संकलित) शा० उ० अ०'

सु-चाओ द्वारा प्रस्तुत दीवानी शासन-व्यवस्था के प्रारूप को स्वीकार कर लिया। उसने 'बुद्ध-स्वरूप पर निबन्धमाला' नामक एक पुस्तक भी लिखी है। उसकी शासन-व्यवस्था के अनुसार, "ता-चुग-पो" नामक एक अधिकारी की नियुक्ति होने लगी, जिसका कार्य बौद्धों और ताओवादियों के साथ कानून को नियमित रूप मे व्यवहार में लाना था।[१]

उत्तरी चाई और उत्तरी चाउ शासन-कालों में भी बौद्धधर्म का प्रचार सर्वत्र था और उस अवधि में अनेक भारतीय भिक्षु चीन आए। उदाहरणार्थ, पश्चिमी भारत स्थित उज्जैन निवासी श्रमण पारमिता, जिसका दूसरा नाम गुण-रत था, ५४९ ई० में चीन आया और चाई सम्राट् वेन ह्जुआन ती के आदेशानुसार चिग-कुआन मठ तथा अन्य स्थानों मे रहकर उसने बीस खंडों में दस पुस्तकों का अनुवाद किया, जिनमें वसुबन्धु के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। उज्जैन के राजा के पुत्र श्रमण उपसेन ने चीन मे ५३८ ई० से ५४१ ई० तक तीन पुस्तकों का अनुवाद सात खंडों में किया, जिनमें प्रमुख विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र और सुविक्रांतविक्रमी-परिपृक्खा है। उज्जैन के निवासी यशगुप्त और उसके साथी ज्ञानगुप्त ने मिलकर चाउ वू ती के राज्यकाल (५६१–५७८ ई०) में तीन या चार पुस्तकों का अनुवाद चांग-आन के विभिन्न मन्दिरों में रहकर किया। किन्तु ७३० ई० में छः खंडों में उनके केवल दो ग्रन्थ ही उपलब्ध थे। और अब तो उनका अनूदित केवल एक ही ग्रन्थ—अवलोकितेश्वर एकादश मुख धारणी—शेष है। धर्मप्रज्ञा वैशाली का एक श्रमण और भिक्षु प्रज्ञारुचि का ज्येष्ठ पुत्र था। उसने 'कर्मफल-विभंग सूत्र' का अनुवाद चीनी भाषा में किया।

इसके साथ ही बौद्धधर्म-विरोधी आन्दोलन ने उत्तरी चीन में अपना सिर फिर उठाया। तान-चिएन और चिन-सुग जैसे प्रमुख भिक्षु महायान-संपरिग्रह-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए दक्षिण चले गये थे। चिह्-आई भी उसी ओर चला गया। इनमें से प्रथम को एक दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ, जिससे बुद्ध-स्वभाव सम्प्रदाय की स्थापना की प्रेरणा ग्रहण कर उसने तिएन ताई मत को स्थापित किया।

---

१ दे० 'उत्तरी चीन वृत्तान्त'

अध्याय ७

सूइ-वंश के शासन-काल में बौद्धधर्म

पूर्वी वाई-वंश का ५५० ई० में अन्त होने पर राजसत्ता काओ कुलीन उत्तरी चाई-वंश के हाथ में आई, जिसने येट में (५५०–५७७ ई०) केवल सत्ताईस वर्ष राज किया। लगभग एक शताब्दी के बाद यू-वेन कुल ने उत्तरी चाई-वंश को पराजित करके चांग-आन में उत्तरी चाउ-वंश की स्थापना की। ५५७ ई० से ५८१ ई० के मध्य चांग-आन में यांग-चिएन द्वारा स्थापित सूइ-वंश ने राज्य किया। यांग-चिएन आगे चलकर काओ-त्सू के नाम से विख्यात हुआ। वह एक असाधारण शासक था। उसने प्रजा के करों का भार हलका किया, कानूनों को विधिपूर्वक संगृहीत किया और अपने सरल जीवन से एक आदर्श राजा का उदाहरण सामने रक्खा। उसकी छत्रछाया में समस्त चीन एक राष्ट्र बन गया। उत्तरी और दक्षिणी चीन को एक करने के लिए उसने पीत नदी और यांग-त्ज़ी नदी के बीच नहरों का एक जाल-सा बिछवा दिया। सम्राट् ने बौद्धधर्म को अपना संरक्षण और विपुल प्रोत्साहन प्रदान किया। उसने एक राजाज्ञा द्वारा बौद्धधर्म के प्रति सहिष्णुता का आदेश प्रजा को दिया। "अपने शासन-काल के अन्त में उसने बौद्ध और ताओ धर्म सम्बन्धी प्रतिमाओं के विध्वंस या उनके साथ दुर्व्यवहार का निषेध कर दिया।"[१] सूइ-वंश के इतिहास में उस समय उपलब्ध सभी ग्रन्थों के नाम दिए हुए हैं। उसमें बौद्ध-ग्रन्थों की संख्या १९५० दी हुई है और यह लिखा है कि उस समय अनेक लोकप्रिय भारतीय और चीनी अनुवादक बौद्धधर्म के प्रचार में संलग्न थे। उस काल के प्रसिद्धतम बौद्ध अनुवादकों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

नालंदयशस—पश्चिम भारत स्थित उज्जैन का निवासी था। वह अल्पवय में ही भिक्षु हो गया था, और बौद्धधर्म के तीर्थ-स्थानों की यात्रा करके अन्त में ५५८ ई० में चीन जा पहुंचा। चांग-आन के ता-ह्लिज़न-चांग मठ में रहकर उसने ५५९ ई० में धर्मप्रज्ञा के साथ इक्यावन खंडों में सात ग्रन्थों का अनुवाद

---

१ दे० एडकिन, वही, पृ० १११

किया। उसके बाद उसने तेईस खंडों में आठ अन्य ग्रन्थों का भी अनुवाद पूर्ण किया।[1]

ज्ञानगुप्त—उत्तर भारत में गांधार का निवासी था। छोटी आयु में भिक्षु होकर धर्म का उपदेश और प्रचार करते हुए वह देश का पर्यटन करता रहा। मध्य एशिया में अनन्त कष्टों को झेलकर वह ५५७ ई० में चीन पहुँचा। सूइ-सम्राट् ने एक विशेषाज्ञा द्वारा उसको चांग-आन में ता-ह्सिन-चांग मठ के बौद्ध अनुवादकों की परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद में धर्मगुप्त तथा दो अन्य चीनी बौद्ध-भिक्षुओं ने उसकी सहायता की। ५६१ ई० से लेकर ५७८ ई० तक उसने पाँच खंडों में चार ग्रन्थों का अनुवाद किया; किन्तु ७३० ई० में उनमें से दो खंडों में केवल दो ग्रन्थ ही उपलब्ध थे। इस कार्य के उपरान्त उसने ५८५–५९२ ई० के मध्य १९२ खंडों में उनतालीस ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिनमें से चौदह खंडों में दो ग्रन्थों का अनुवाद ७३० ई० तक नष्ट हो चुका था। उसके द्वारा अनूदित समस्त ग्रन्थों में सब से महत्त्वपूर्ण सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र है, जो चीन का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म-ग्रन्थ बन गया है। उसका देहान्त ७८ वर्ष की आयु में ६०० ई० में हुआ।[2]

विनीतरुचि—उज्जैन का निवासी था और बौद्धधर्म पर लगे प्रतिबन्धों के सूइ-सम्राट् द्वारा हटा लिए जाने पर ५८२ ई० में उसने चीन में पदार्पण किया। उसने गयाशीर्ष-सूत्र और महायान-वैपुल्य-धारणी-सूत्र नामक दो ग्रन्थों का अनुवाद किया।

बौद्ध-धर्मग्रन्थों की सूचियों का संकलन—सूइ-सम्राटों ने बौद्धधर्म के प्रचार में बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। इस वंश के राज्य-काल में जो सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, वह है चीनी भाषा में उपलब्ध बौद्ध-धर्मग्रन्थों की अनेक सूचियों का संकलन। सम्राट् काओ-त्सू ने ५९४ ई० में भिक्षु फ़ा-चिंग को चीनी भाषा में प्राप्त बौद्ध-ग्रन्थों की एक सूची तैयार करने की आज्ञा दी। उसके द्वारा संकलित सूची 'सूइ-चुंग-चिंग-मु-लो' अथवा 'सूइ-वंश के राज्यकाल में (संगृहीत) बौद्ध-धर्मग्रन्थों की सूची' के नाम से विख्यात हुई। इसमें ५,२९४ जिल्दों में प्राप्त २,२५७ ग्रन्थों का उल्लेख है, जिनका वर्गीकरण नीचे लिखे प्रकार

---

१ दे० 'महातांग-वंश (में संकलित) बौद्ध-ग्रन्थ-सूची'

२ दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण'

से किया गया है :—

सूत्र—महायान :	१,७१८	जिल्दों में	७८४	ग्रन्थ
हीनयान :	१,०३४	जिल्दों में	८४५	ग्रन्थ
विनय—महायान :	८२	जिल्दों में	५०	ग्रन्थ
हीनयान :	३८१	जिल्दों में	६३	ग्रन्थ
अभिधर्म—महायान :	३८१	जिल्दों में	६८	ग्रन्थ
हीनयान	४८२	जिल्दों में	११६	ग्रन्थ
उत्तरकालीन ग्रन्थों के सार संग्रह—	६२७	जिल्दों में	१४४	ग्रन्थ
भारतीय और चीनी अभिलेख—	१८६	जिल्दों में	६३	ग्रन्थ
निबन्ध—	१३४	जिल्दों में	११९	ग्रन्थ

'लि-ताइ-सान-पाओ-चि' अथवा 'क्रमागत राजवंशों के समय में त्रिरत्न सम्बन्धी अभिलेख' नामक दूसरी सूची बौद्ध-ग्रन्थों के प्रसिद्ध अनुवादक फ़ाइ-चांग-फांग ने संकलित की। सूइ-सम्राट् काओ-त्सू की संरक्षकता में इस सूची का कार्य ५९७ ई० में पूर्ण हुआ। इसकी गणना सर्वोत्तम सूचियों में की जाती है। इसमें समस्त धर्म-ग्रन्थों को हीनयान और महायान दो भागों में विभाजित किया गया है और उनमें से प्रत्येक के अन्तर्गत सूत्र, विनय और अभिधर्म के परम्परागत वर्गों में ग्रन्थों का वर्गीकरण है। इस सूची में ३,३२५ जिल्दों में प्राप्त १,०७६ ग्रन्थों का उल्लेख है और उसमें बुद्ध के जन्म से लेकर संकलन के समय तक बौद्धधर्म के क्रमबद्ध इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास प्रथम बार किया गया है।

सूइ-सम्राट् काओ-त्सू की राजाज्ञा के अनुसार एक तीसरी सूची का संकलन ६०३ ई० में किया गया, और वह भी सूइ-चुंग-चिंग-मु-लो के नाम से प्रख्यात हैं। सम्राट् के इस आदेश पर ता-ह्जिन-चांग मठ के बहुत-से भिक्षु और विद्वान् चांग-आन में एकत्र हुए। इस सूची में ५,०५८ जिल्दों में प्राप्त २,१०९ विभिन्न ग्रन्थों का उल्लेख है। इसके वर्गीकरण की पद्धति भी ५९४ ई० में फ़ा-चिंग द्वारा संकलित सूची से भिन्न है। इस तृतीय सूची के संकलनकर्त्ताओं ने एक नई प्रणाली अपनाकर अपनी कृति को आलोचनात्मक रूप देने का प्रयत्न किया। प्रामाणिक और अप्रामाणिक ग्रन्थों को छाँटने का प्रयास सर्वप्रथम उन्होंने किया और अप्रामाणिक ग्रन्थों की संख्या २०९ निश्चित की। सूची में ४०२ ग्रन्थों को विलुप्त माना गया है।

सम्राट् काओ-त्सू के बाद उसका दूसरा पुत्र कुआंग गद्दी पर बैठा, जो इति-

हास में यांग-ती के नाम से प्रसिद्ध है ; किन्तु एक राजविद्रोह के कारण उसके राज्य का अन्त शीघ्र ही हो गया। इस विद्रोह का नेता लि-युआंग नामक उसका एक सेनापति था, जो तुर्कमानों से संधि करके साम्राज्य के एक बड़े अंश का स्वामी बन बैठा। सम्राट् यांग-ती भागकर नानकिंग में शरण लेने को विवश हुआ, जहाँ थोड़े ही समय बाद किसी ने उसकी हत्या कर दी। उसके बाद उसके दो पोते गद्दी पर बैठे और दोनों ही अयोग्य सिद्ध हुए। अन्त में लि-युआंग सिंहासन पर बैठा और उसने तांग-वंश की स्थापना की। यद्यपि सूइ-वंश ने केवल ५९० ई० से ६१८ ई० तक ही राज्य किया। उसका राज्य-काल चीन के इतिहास में—और विशेषकर चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में—एक अत्यन्त गौरवशाली स्थान रखता है।

अध्याय ८

तांग-वंश के राज्यकाल में बौद्धधर्म

(क) बौद्धधर्म का स्वर्णयुग

अल्पजीवी सूइ-वंश के उत्तराधिकारी तांग-वंश की स्थिति दृढ़ होने से चीन के इतिहास को एक नया मोड़ मिला। एक बार फिर सारा देश ६१८ ई० से ९०७ ई० तक एक ही केन्द्रीय राजसत्ता के अधीन रहा। तांग-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक सोलह वर्षीय किशोर ली शिह्-मिंग था, जिसने सूइ-वंश की शक्ति पूर्णतया नष्ट कर दी थी। वह तातार सामन्तों से वैवाहिक सूत्रों से सम्बद्ध उत्तरी चीन के एक प्रसिद्ध परिवार का वंशज था। उसने अपने पिता लि-युआंग के साथ सूइ-साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊंचा किया और सात वर्षों के जटिल तथा भयानक गृहयुद्ध के उपरान्त अपने विभिन्न प्रतिद्वंद्वियों को नष्ट करके चीन को पुनः एकता प्रदान की। कुछ समय तक उसका पिता नाम-मात्र के लिए सम्राट् बना रहा। उसके बाद ६२७ ई० में स्वयं राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् उसने उत्तरी प्रान्तों में संकट उपस्थित करने वाले तुर्कों के दलों को खदेड़कर उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया। देश में शांति और एकता स्थापित करने के बाद अपने शासन के बाईसवें वर्ष में उसने साम्राज्य का पुनर्संगठन किया। यह कार्य उसने इतनी अच्छी तरह संपन्न किया कि उसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों को समस्त विरोधियों का सामना करने में सक्षम स्वामिभक्त शासन-व्यवस्था विरासत में प्राप्त हुई।

इतिहास में ली-शिह्-मिंग अपने मरणोपरान्त प्राप्त 'ताई-त्सुंग' नाम से प्रसिद्ध है। उसकी मृत्यु उनचास वर्ष की अल्पायु में ६४९ ई० में हुई; किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त चीन में एक शताब्दी से अधिक तक आन्तरिक शान्ति स्थापित रही। उसकी विजयों तथा शासन-व्यवस्था से प्रसूत इस सुदीर्घ शांति-काल में कला, साहित्य और धर्म का खूब विकास हुआ, जिसके लिए इतिहास में यह वंश विख्यात है।

तांग-सम्राट् काओ-त्सु का राज्यकाल बौद्धधर्म का स्वर्णयुग है। फा-लिन कृत 'सत्य पर एक निबन्ध' में लिखा है कि काओ-त्सु ने चांग-आन

में वाई-चांग, ह्त्रिन यत, तृजी-पाई और चिन-कू आदि मठों का ; ताई-युआन में लि-सान मठ का और पिएन चाउ में यी-ह्त्जिन मठ का निर्माण कराया। सम्राट् ताई-त्सुंग भी बौद्धधर्म का पोषक था। सिंहासनारूढ़ होने पर दूसरे सरदारों के साथ दीर्घकालीन युद्ध में अपने सैनिकों तथा अपनी प्रजा को मरते देखकर वह बहुत दुखी हुआ। युद्ध में मृत व्यक्तियों की स्मृति में उसने दस बौद्ध मठों का निर्माण कराया, जिनमें अभी तक सात मौजूद हैं :—

(१) 'प्रभामय मानवता मठ', पिन चाउ में जहां उसने सेनापति ह्त्जुएह-चू को पराजित किया था।

(२) 'प्रभामय बोधि मठ' लो चौ में, जहाँ उसने सेनापति वांग शिह-चुंग को हराया था।

(३) 'प्रभामय मंगल मठ' लो चौ में, जहाँ उसने सेनापति लिऊ हाई-ताई को हराया था।

(४) 'विशाल साहाय्य मठ', फेन चौ में, जहाँ उसने सेनापति लिऊ वो-चौ को पराजित किया था।

(५) 'करुणामय मेघ मठ' चिन-चौ में, जहाँ उसने सेनापति सुंग-चिनकांग को पराजित किया था।

(६) 'सर्व साहाय्य मठ' ताई-चौ में जहाँ उसने सेनापति सुंग लाओ-सेन को हराया था।

(७) 'सर्व दया मठ' चेंग चौ में जहाँ उसने सेनापति तोउ-चिएन-ती को पराजित किया था।

सम्राट् ताई-त्सुंग नें अपने राज्य के चेन-कुआन-कालीन बीसवें वर्ष में उत्तरी चीन से विजय प्राप्त करके लौटने पर 'मिन चुंग-की' अथवा सैनिकों की सहायता के लिए एक महल बनाए जाने की आज्ञा दी। उन्हीं दिनों सम्राट् ने भारतवर्ष से आए हुए भिक्षु प्रभाकरमित्र और वहाँ की यात्रा से लौटे हुआन-त्सांग का स्वागत-सत्कार किया। ताई-त्सुंग की मृत्यु के बाद सम्राट् काओ-त्सुंग सिंहासन पर बैठा। वह भी बौद्धधर्म पर अत्यधिक कृपालु था। 'राजमहलों के विषय-सम्बन्धी अभिलेख' के अनुसार उसने मठों की भाँति उपयोग किए जाने के लिए सारे महल बौद्धों को दे दिए। उसने भिक्षु हुआन-त्सांग को एक विशेष आज्ञा द्वारा राजमहल में इच्छानुसार प्रवेश करने की स्वतंत्रता दे दी। जब सम्राट् की उपपत्नी साम्राज्ञी वू-चाओ के संतान उत्पन्न होनें का समय निकट आया, तब सम्राट् ने हुआन-त्सांग से अनागत शिशु का नामकरण करने की प्रार्थना

की। हुआन-त्सांग ने उसका नाम 'फू कुआंग वांग' अथवा 'बुद्ध प्रकाश का राजा' रक्खा। काओ-त्सुंग की मृत्यु के बाद फ़ू-कुआंग-वांग गद्दी पर बैठा और पूर्व तथा पश्चिम की राजधानियों में अपने नाम पर दो बौद्ध-मठों के निर्माण की आज्ञा उसने दी। अपने पुत्र के नाम-मात्र के शासन में राज्य की असली शक्ति सम्राज्ञी वू चाओ ने प्रकटरूप से अपने ही हाथ में रक्खी। उसने तांग-वंश का नाम बदलकर चाउ-वंश कर दिया। राजसत्ता के सम्बन्ध में कनफ्यूशिअस के समस्त सिद्धान्तों के विपरीत एक स्त्री को प्रत्यक्षरूप से साम्राज्य पर शासन करते देखकर पुरातनवादी इतिहासकारों को बड़ा आघात लगा और इस कारण वे सम्राज्ञी वू-चाओ के प्रति न्याय नहीं कर सके। सम्राज्ञी के शासन की उत्कृष्टता और बौद्धधर्म के प्रति उसकी भक्ति को तो वे अस्वीकार नहीं कर पाए, और इसलिए उन्होंने उसके व्यक्तिगत जीवन को, जो एकदम निष्कलंक नहीं था, अपनी आलोचना का विषय बनाया।

सम्राज्ञी वू-चाओ के ६८२—७०४ ई० तक के बाईस वर्षीय राज्य-काल में बौद्धधर्म देश भर में फैल गया। तांग-काल के लोकप्रिय अनुवादकों की सूची नीचे दी जा रही है :—

प्रभाकरमित्र मध्य भारत का एक श्रमण था और सम्राट् ताइ-त्सुंग के शासन के चेन कुआन-कालीन प्रथम वर्ष (६२७ ई०) में चीन आया था।[1]

अतिगुप्त मध्य भारतीय श्रमण था और तांग सम्राट् काओ-त्सुंग के युंग-हुई-कालीन तृतीय वर्ष (६५२ ई०) में चीन आया। उसने आगामी दो वर्षों में धारणी-संग्रह-सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा में किया[2]।

नादि मध्य भारत का एक प्रसिद्ध भिक्षु था और वह चीन में सम्राट् काओ-त्सुंग के राज्य के युंग-हुई कालीन छठे वर्ष (६५५ ई०) पहुंचा। वह अपने साथ हीनयान और महायान सम्प्रदायों के १५०० से अधिक ग्रन्थ ले गया था। इन ग्रन्थों का संग्रह उसने भारत और लंका में अपनी यात्रा में किया था। ६५६ ई० में सम्राट् काओ-त्सुंग ने उसे एक अज्ञात औषधि की खोज में कुन लुन देश अर्थात् चीन सागर में स्थित कोंडोर द्वीप को भेजा। ६६३ ई० में वह चीन वापस आया।

बुद्धपाल काबुल का निवासी था और वह चीन में सम्राट् काओ-त्सुंग के

---

१ दे० 'रहस्य० मि० स०'

२ दे० 'काई युआन० शा० उ० अभि० और रहस्य० मि० सं०'

आई-फ़ोंग-कालीन प्रथम वर्ष (६७६ ई०) में चीन पहुँचा। उसने 'सर्वदुर्गति-परिशोधन-उष्णीष विजय-धारणी' नामक ग्रन्थ का अनुवाद किया।

दिवाकर मध्य भारतीय भिक्षु था और उसने ६९६ ई० में चीन आकर चौबीस खंडों में अठारह ग्रन्थों का अनुवाद किया।

खुतन-निवासी भिक्षु **देवप्रज्ञा** ने ६८९ से ६९१ ई० के मध्य सात खंडों में छः ग्रन्थों का अनुवाद किया।

शुभाकरसिंह भी मध्य भारत का निवासी और शाक्य मुनि के चाचा अमृतोदन का वंशज था। वह पूर्वी भारत के नालंदा विश्वविद्यालय में रह चुका था। चांग-आन में सम्राट् हुआन-त्सुंग के काई-युआन-कालीन चतुर्थ वर्ष (७१६ ई०) में पहुंचा। अपने साथ वह बहुत-से बौद्ध-ग्रन्थ ले गया था। उसकी मृत्यु ९९ वर्ष की आयु में ७३५ ई० में हुई[1]।

अमोघ के शिष्य हुई-लिन ने 'बौद्ध-शब्दों और शब्द-संयोगों का उच्चारण और अर्थ-प्रकाशक कोष' का निर्माण किया, जिसमें एक सौ अध्याय थे। इस कार्य को ७८८ ई० में आरम्भ करके उसे उसने ८१० ई० में पूर्ण किया।

हुआन-त्सांग, ई-त्सिंग, शिक्षानन्द, बोधिरुचि—यह चार उपर्युक्त सूची म सब से अधिक प्रसिद्ध थे। इनकी संक्षिप्त जीवनियाँ नीचे दी जा रही हैं:—

हुआन-त्सांग—तांग-वंश के उदय के साथ-साथ चीनी बौद्धधर्म के एक महानतम व्यक्तित्व का अविर्भाव हुआ। वह था प्रसिद्ध यात्री और अनुवादक हुआन-त्सांग (५९६–६६४ ई०)।

उसका ऐहिक गोत्र-नाम चेन था और वह कोउ-शिह का निवासी था। तेरह वर्ष की आयु में उसने मठ-प्रवेश किया और भारतस्थित बौद्ध तीर्थ-स्थानों के दर्शन करने की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित होकर सम्राट् ताई-त्सुंग के राज्य के चेन-कुआन-कालीन तृतीय वर्ष (६२९ ई०) में वह भारत-यात्रा के लिए अकेला ही निकल पड़ा। उसकी इस यात्रा ने उसे अन्ततः जगत्प्रसिद्ध कर दिया। मध्य एशिया के दुर्गम पर्वतों और रेगिस्तानों की खतरनाक यात्रा कर के अनेक बार मृत्यु के मुख से बाल-बाल बचकर अन्त में वह ६३३ ई० में सकुशल भारतवर्ष पहुंचा। स्वदेश की ओर प्रस्थान करने के पूर्व उसने अध्ययन और यात्रा करते हुए भारतवर्ष में दस वर्ष बिताए। वापसी यात्रा भी उसने मध्य एशिया होकर की और अपने साथ ६५७ बौद्ध-ग्रन्थों को ले गया, जिनका संग्रह उसने अपने भारत-प्रवास में किया था। अनुवादक के रूप में हुआन-त्सांग ने वसु-

१ वही और वही

बन्धु और धर्मपाल द्वारा विकसित बौद्धधर्म के विशिष्ट प्रकार को चीन में प्रविष्ट कराने में विशेष उत्साह दिखलाया ; अतः उसकी कृतियों की आत्मा चीनी की अपेक्षा भारतीय अधिक है और वे बौद्धधर्म के प्रति विशुद्ध चीनी प्रतिक्रियाओं के साथ, जिनका अध्ययन हम अभी तक करते रहे है, तुलनात्मक अध्ययन की उत्तम सामग्री उपस्थित करती हैं। दार्शनिक दृष्टि से, जैसा हम आगे देखेंगे, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वह सम्राट् ताई-त्सुंग के शासन के चेन-कुआन-कालीन १९ वें वर्ष (६४५ ई०) में चांग-आन पहुंचा, जहाँ उसका एक विजेता की भाँति स्वागत हुआ। उसके जीवन का शेषांश राजधानी में अपने शिष्यों के साथ अनुवाद-कार्य करने में बीता। अपनी मृत्यु के समय, ६६४ ई० तक, उसने ७५ ग्रन्थों का अनुवाद पूर्ण कर लिया था, जिनकी गणना शैली और विशुद्धता की दृष्टि से संस्कृत-ग्रन्थों के सर्वोत्कृष्ट चीनी अनुवादों में की जाती है।

ईत्सिग—हुआन-त्सांग की मृत्यु के उपरान्त शीघ्र ही एक अन्य समान रूप से प्रसिद्ध बौद्ध ने भारत की यात्रा की। अपनी यात्रा का वृत्तांत उसने स्वयं ही लिखा हैं। उसका जन्म ६३४ ई० में फान-यांग में सम्राट् ताई-त्सुंग के शासन-काल में हुआ। सात वर्ष की आयु में उसने मठ-प्रवेश किया। जब वह बारह वर्ष का हुआ, तब उसके गुरु की मृत्यु हो गई। तब उसने लौकिक साहित्य का अध्ययन समाप्त करके बौद्धधर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया। चौदह वर्ष की अवस्था में वह भिक्षु बना। उसका कहना है कि भारतवर्ष की यात्रा करने की आकांक्षा उसके मन में तभी उठी थी, जब वह अठारहवें वर्ष में था ; किन्तु सेतीस वर्ष का होने पर ही उसकी यह इच्छा पूर्ण हो सकी। उसने अपनी यात्रा का श्रीणेश यांग-चौ से एक पारसीक नौका में किया। बीस दिन के बाद नौका सुमात्रा पहुँची। वहाँ वह आठ महीने रहा—छः महीने श्रीविजय (पालेम वांग) और दो महीने मलाया में। तदुपरान्त उसने एक सुमात्रीय नौका द्वारा बंगाल की खाड़ी पार की और ६७३ ई० में ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बन्दरगाह में उतरा। देश के भीतर यात्रा में आगे बढ़ने के प्रथम, संस्कृत भाषा का अपना ज्ञान बढ़ाने के उद्देश्य से वह सालभर ताम्रलिप्ति में ही रहा।

सर्वप्रथम उसने गया और कुशीनगर की यात्रा की और तत्पश्चात् दस वर्ष तक नालंदा में रहकर अध्ययन करता रहा। वहाँ उसने लगभग ४०० संस्कृत-ग्रन्थों का संग्रह किया। स्वदेश की ओर प्रत्यावर्तन करते समय, वह श्रीविजय में चार वर्ष रहा और वहाँ संस्कृत और पाली के बौद्ध-ग्रन्थों के अध्ययन तथा अनुवाद में संलग्न रहा ; किन्तु यह कार्य केवल एक व्यक्ति की शक्ति के परे

था ; अतः सहायकों की खोज में वह ६८९ ई० में चीन गया। वहाँ वह कैंटन में उतरा और अपने शिष्यों को एकत्र करके चार महीने बाद फिर सुमात्रा वापस आ गया।

अपनी व्यक्तिगत टिप्पणियों का संपादन तथा संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करते हुए वह श्रीविजय में पाँच वर्ष से अधिक समय तक रहा। अन्त में वह ६९५ ई० में स्वदेश लौटा और उसी वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में लो-यांग में प्रवेश किया और वहाँ के 'परम सुख मठ' में रहने लगा। वह तांग-वंश की राजधानी चांग-आन स्थित 'पश्चिमी उज्ज्वल मठ' में भी कुछ समय तक रहा। उसने २३० खंडों में छप्पन ग्रन्थों का अनुवाद किया। इनमें से कुछ का अनुवाद पहले भी हो चुका था। उसका देहान्त ७९ वर्ष की आयु में ७१३ ई० में हुआ। उसके समकालीन सम्राट् चुंग-त्सुंग ने 'त्रिपिटक-सूची' के आमुख में उसके जीवन और कार्य की बड़ी प्रशंसा की है[१]।

शिक्षानन्द—खुतन का निवासी और शक जाति का था। वह हीनयान और महायान दोनों का विद्वान् था। वह सम्राज्ञी वू-चाओ का समकालीन था, जिसने चीन में महायान सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने का बड़ा प्रयास किया था। उन्हीं दिनों यह पता लगा कि अवतंसक-सूत्र की चीन में सुरक्षित संस्कृत प्रति के कुछ अंश नष्ट हो गए हैं। सम्राज्ञी को यह भी ज्ञात हुआ कि खुतन में उक्त सूत्र की पूर्ण प्रति वर्तमान है ; अतः उसने पांडुलिपि की खोज करने तथा उसके अनुवाद के निमित्त एक विद्वान् लाने के लिए अपना राजदूत वहाँ भेजा। फल-स्वरूप अवतंसक-सूत्र की पूर्ण प्रति के सहित शिक्षानन्द चीन आया और उसने उसका अनुवाद चीनी भाषा में पूर्ण किया। उनसठ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु ७१० ई० में हुई।

बोधिरुचि—इस का नाम पहले धर्मरुचि था, जिसको बदल कर सम्राज्ञी वू-चाओ ने उसे यह नाम दिया था। वह दक्षिण भारत का कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण था। तांग-वंश के राज्य के प्रथम काल में यह चीन आया। उसने ६९३ ई० से ७१३ ई० तक १११ खंडों में ५३ ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिन में से बौद्ध-त्रिपिटकों के आधुनिक संस्करण में इकतालीस उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि उसका देहान्त १५६ वर्ष की आयु में ७२७ ई० में हुआ[२]।

---

१ दे० 'रहस्य० भि० सं०' और 'दक्षिणी सागर से लौटने वाले यात्री के द्वारा प्रेषित आन्तर धर्म का अभिलेख'

२ दे० 'रहस्य० भि० सं०', 'सूत्रों के नए तथा पुराने अनुवादों के चित्र के अभिलेख का परिशेष'

(ख) चाई-त्सांग और त्रिशास्त्र संप्रदाय

इस संप्रदाय का यह (सान-लुन-त्सुंग) नाम उसके तीन शास्त्रों पर आधारित होने के कारण है। वह माध्यमिक (फ़ा-ह्ज़िग) अथवा प्रत्ययवादी संप्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है, किन्तु इस नाम का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में, हुआ येन, तिएन ताई, और गुह्य संप्रदायों का समावेश करते हुए, किया जाता है।

परम्परानुसार इस संप्रदाय के आद्याचार्य बोधिसत्त्व मंजुश्री, द्वितीय आचार्य अश्वघोष, और तृतीय अश्वघोष थे। चतुर्थ शताब्दी ईसवी के अन्त में त्रिशास्त्र का अनुवाद करने वाला कुमारजीव इस संप्रदाय की चीनी शाखा का प्रवर्तक माना जाता है।

कुमारजीव के लगभग ३,००० शिष्य थे, जिनमें ताओ-योन, सेंग-जुई, ताओ-शेंग और सेंग-चाओ सर्वोत्कृष्ट थे और वे कुआन-चुंग में बौद्धधर्म के 'चार-वीर' के नाम से प्रसिद्ध थे।

इस संप्रदाय के आधार, उपर्युक्त तीन शास्त्रों के नाम निम्नलिखित हैं :—

१. चुन कुआन लुन अथवा प्राण्यमूल-शास्त्र टीका।

२. शिह एर्ह मेन लुन अथवा द्वादश निकाय। यह दोनों ग्रन्थ नागार्जुन कृत हैं।

३. पाइ लुन अथवा शतक-शास्त्र—आर्यदेव (और वसुबन्धु ?) कृत।

यह तीनों शास्त्र तर्कविद्या के अपूर्व ग्रन्थ माने जाते हैं और इनमें हीनयान तथा महायान के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन है। उनमें बौद्ध धर्मावलंबियों के समक्ष सत्य-प्राप्ति के विविध साधनों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसका परिणाम सत्य के परस्पर विरोधी पक्षों पर बल देना न होकर उनके सूत्रीकरण की विविधता में परिलक्षित हुआ है। जैसे लुंग शू (नागार्जुन) ने चुंग-लुन की एक गाथा में सत्य को इस प्रकार सूत्रबद्ध किया है :—

कर्मों के संयोग से जन्य भव प्रपंच को
मैं असत् कह सकता हूँ
उसको मैं रूप रहित नाम भी कह सकता हूँ
या उसकी कल्पना मध्यम प्रतिपद् के रूप में कर सकता हूँ।

बौद्धधर्म में भव-प्रपंच के दो रूप माने गए हैं—यिऊ वाई फ़ा अथवा प्रतिबद्ध और अ-वू वाई फ़ा अथवा अप्रतिबद्ध। बौद्ध-दर्शन के अनुसार प्रतिबद्ध

भव प्रपंच जन्म, विकास, परिवर्तन और विनाश इन चार विकारों से युक्त होता है।

मध्यम प्रतिपद् के विषय में विचार करते समय बौद्ध दार्शनिक उसके गंभीर अर्थ के प्रति सजग रहता है ; क्योंकि यह मध्यम प्रतिपद् अपरोक्ष परम तत्त्व का ही दूसरा नाम है। यद्यपि इस परम तत्त्व के कुछ पक्षों का वर्णन किया जा सकता है और इस प्रकार वे निर्वचनीय हैं, किन्तु उसका सारतत्त्व, वाणी और अक्षर की सीमा के परे है और इसलिए उसे अनिर्वचनीय कहा जाता है।

ता चिह तु लुन अथवा कुमारजीव द्वारा अनूदित महा प्रज्ञापारमिता-शास्त्र में तीन प्रकार की पान-जो (प्रज्ञा) का वर्णन है—वास्तविक प्रज्ञा अर्थात् तात्त्विक अथवा सत्य ज्ञान, जो कुछ कुछ स्पिनोज़ा के सब्स्टैंस—द्रव्य, वस्तु—से मिलती जुलती है ; प्रत्यक्षीकरण की प्रज्ञा और अक्षरीय प्रज्ञा। बौद्ध-सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में पान-जो के दो अर्थ होते हैं—एक है अनिर्वचनीय और दूसरा निर्वचनीय। पहली वास्तविक प्रज्ञा से तात्पर्य है सत्य का अपरोक्ष, सापेक्षताओं से अतीत, स्वरूप। प्रत्यक्षीकरण की प्रज्ञा अथवा लौकिक पान-जो उसी सत्य का एक दूसरा और निम्नस्तरीय रूप है, जो विश्व-प्रपंच से संबद्ध होता है। तीसरी और अन्तिम अक्षरीय प्रज्ञा व्यक्तिगत अनुभूतियों को दूसरे व्यक्तियों तक प्रेषित करने के निमित्त शब्दों और अक्षरों के माध्यम से दूसरी प्रज्ञा की अभिव्यक्ति होती है।

त्रिशास्त्र संप्रदाय का एक अन्य सिद्धान्त समस्त भौतिक पदार्थों में तीन पक्षों का प्रतिपादन करता है—असत्यता, मिथ्यात्व और मध्यम प्रतिपदा। असत्यता का अर्थ यह है कि वस्तुओं की सत्ता वास्तविक नहीं होती। मिथ्यात्व से तात्पर्य है कि वस्तुओं का अस्तित्व तो होता है, लेकिन 'व्युत्पन्न' और 'उधार लिए' जैसे रूपों में ही जो स्थायी तत्त्वों से निर्मित होते हैं। मध्यम प्रतिपदा अपरोक्ष परम सत्य के हित में इन दोनों स्थितियों को अस्वीकार करती है। उदाहरणार्थ, वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र के एक पद में कहा गया है कि—

"जिसे बौद्धधर्म कहा जाता है वह बौद्धधर्म नहीं है, और इसीलिए वह बौद्धधर्म है।"

यदि हम 'बौद्धधर्म' के स्थान पर 'चाय का प्याला' रख दें, तो इस सूत्र का रूप यह हो जाएगा—"जिसे चाय का प्याला कहा जाता है, वह चाय का प्याला नहीं है, और इसीलिए वह चाय का प्याला है।" यहाँ मैं थोड़ी व्याख्या करदूं। चाय के प्याले की परिभाषा है—चाय पीने के लिए चीनी मिट्टी का

एक पात्र। इसलिए, चीनी मिट्टी के अतिरिक्त प्याले की सत्ता कहाँ है? और जिस प्याले में हम आज चाय पीते हैं, कल उसी का उपयोग कादंब के लिए कर सकते हैं। उस दशा में क्या 'चाय का प्याला' एक असत्य और मिथ्या नाम-मात्र नहीं रह जाता। बौद्ध-दर्शन के अनुसार "जिसे चाय का प्याला कहा जाता है" वाक्य, वस्तुओं के असत्य पक्ष का निर्देश करता है; "चाय का प्याला नहीं है" वाक्य मिथ्यात्व के पक्ष का निर्देश करता है; और "अतः वह चाय का प्याला है" वाक्य माध्यमिक सिद्धांत के अनुसार है। माध्यमिक संप्रदाय यह प्रतिपादित करता है कि शून्य सभी संबंधों और विशेष स्थापित सापेक्षताओं को नष्ट कर देता है; और मध्यम पथ सभी सापेक्षताओं से अतीत तथा उनको एकता के सूत्र में पिरो देता है।

चीन में इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का विकास प्रसिद्ध भिक्षु चाई-सांग (५४९—६२३ ई०) ने किया। उसके विषय में 'प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं के संस्मरणों के अवशेष' में हमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है:—

"चाईत्सांग का गोत्र-नाम आन था और वह आन-ह्जाई का रहने वाला था। एक प्रतिशोध के चक्कर से बच निकलने के उद्देश्य से उसके पूर्वज दक्षिण चीन की ओर चले गए थे और वहां आगे चलकर चिआओं तथा कुआंग के मध्य उन्होंने अपना घर बना लिया। तदुपरांत वे चिन-लिंग गए, जहां चाई-त्सांग का जन्म हुआ। वहां जिंग-ह्वांग मठ के भिक्षु ताओ-लांग के प्रवचनों में उपस्थित होकर, उसने जो कुछ सुना, उसका अर्थ तत्काल ही ग्रहण कर लिया, जैसे उसमें एक नैसर्गिक प्रतिभा पहले से ही वर्तमान हो। सात वर्ष की आयु में अपने को लांग को समर्पित कर वह भिक्षु हो गया। समस्त गूढ़ रहस्यों को समझते और नित्य ही नूतन गहनताओं पर अधिकार करते हुए, उसने विद्याध्यन में अपनी अविरल प्रगति जारी रक्खी। जिस किसी विषय की वह जिज्ञासा करता था, या उसके संबंध में कुछ कहता था, उसके सारतत्त्व को वह आश्चर्यजनक रूप से समझ लेता था।"

चाई-त्सांग के साहित्यिक कृतित्व में, जो उसके पूर्व तथा उसके समकालीन युग में अद्वितीय है, निम्नलिखित ग्रन्थ सम्मिलित हैं—'माध्यमिक-शास्त्र का गूढ़ अर्थ', 'शतक-शास्त्र' और 'द्वादश-शास्त्र'। इन ग्रन्थों में अभिव्यक्त विचार सामग्री पांडित्य और दर्शन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है; अतएव हम अपने को यहाँ केवल 'एर्ह ताई चांग' (द्विविध सत्य पर अध्याय) नामक ग्रन्थ में प्रति-

ह्वान-त्सांग (५८६–६६४)
महान् तांग-काल के त्रिपिटकाचार्य

अमिताभ बुद्ध

पादित द्विविध-सत्य के सिद्धान्तों की समीक्षा तक ही सीमित रक्खेंगे। उक्त ग्रन्थ में उसने लिखा है :—

"ह्जिग ह्वांग के प्रधान स्थविर ने समस्त मठों को आदेश दिया है कि द्विविध सिद्धांत का प्रतिपादन तीन कोटियों में किया जाए। पहली कोटि के अनुसार सत् के विषय में कुछ कहना लौकिक सत्य है, किंतु असत् के विषय में कुछ कहना परमार्थिक सत्य है। दूसरी के अनुसार सत् और असत् के विषय में कुछ कहना दो अतियों में पड़ जाना है और इसलिए यह भी लौकिक सत्य है। सत् और असत् के विषय में कुछ न कहना, दो अतियों से बचना है और इसलिए पारमार्थिक सत्य है। द्विविध सत्य की तीसरी कोटि (दूसरी कोटि में पहुँचकर) सत् और असत् की दोनों अतियों से बचना है। यहां पर यह कहना कि दो अतियां हैं या नहीं हैं, लौकिक सत्य है ; किंतु यह कहना कि न तो वे हैं और न वे नहीं हैं, पारमार्थिक सत्य है।

द्विविध-सत्य इन तीन कोटियों पर आधारित होने के कारण बौद्ध सिद्धांतों की व्याख्या करते समय उसकी सहायता सदैव ली जाती है। ग्रन्थों में वर्णित कोई भी बात इन तीन कोटियों का अतिक्रमण नहीं करती।"

इनके माध्यम से उसने त्रिशास्त्र-संप्रदाय के विकास में बड़ी सहायता पहुँचाई। चाई-त्सांग की मृत्यु के उपरांत एक उत्तरी और एक दक्षिणी मत का जन्म हुआ।

यह संप्रदाय तांगवंश के उत्तरकालीन युग तक चलता रहा और यद्यपि उसका अस्तित्व विलुप्त हो गया है, उसके सिद्धांतों का अध्ययन अब भी मनोयोग से किया जाता है।

(ग) हुआन-त्सांग और धर्मलक्षण-सम्प्रदाय

महान् धर्माचार्य हुआन-त्सांग ने, हर्षवर्धन और पुलकेशिन् द्वितीय की छत्रछाया में पनपे भारतीय साम्राज्यवाद के अत्यंत गौरवशाली युग में, ६२९ से ६४५ ई० तक सोलह वर्ष भारतवर्ष में बौद्धधर्म का अध्ययन करने के उपरांत, चीन के महान् सम्राट् ताई-त्सुंग (६२७—६५० ई०) की संरक्षता में व्यापकरूप से अपनी मातृभूमि में धर्म का प्रचार किया और धर्मलक्षण-संप्रदाय की नींव डाली।

यह संप्रदाय कई नामों से प्रसिद्ध है, जिनमें सर्वाधिक प्रचलित वाई शिह त्सुंग और फा हिआंग त्सुंग हैं। वाई शिह का तात्पर्य 'केवल चैतन्य', 'विज्ञान मात्र', चैतन्य के सिवा और कुछ नहीं के अर्थ में विशुद्ध चेतना है। फा हिआंग (धर्म-

लक्षण) शब्द विशुद्ध प्रत्ययवादी (माध्यमिक) दर्शन की अपेक्षा जगत् को अधिक सत्य मानने वाले दर्शन के लिए प्रयुक्त होता है।

परंपरा के अनुसार भारत में धर्मलक्षण-संप्रदाय की स्थापना एवं विकास करने वाले मैत्रेय, जिन, असंग, वसुबंधु और धर्मपर आदि मनीषी हैं, जो मैत्रेय (जो इस नाम के बुद्ध से भिन्न है) को छोड़कर सभी चतुर्थशती ईसवी में हुए थे। हुआन-त्सांग ने इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का प्रवर्तन चीन में किया और 'ता-चेंग फ़ा-हिआंग वाई शिह त्सुंग पाई फ़ा मिग मेन लुन शास्त्र' अथवा 'विश्व रूप ज्ञान-कर्ता सूत्र' के अनुवाद तथा 'चेंग वाई शेह् लुन' अथवा 'विशुद्ध चैतन्य की प्राप्ति पर निबंध' के संकलन में, जिन पर इस संप्रदाय की चीनी शाखा आधारित है, बड़ा कार्य किया। वह इस संप्रदाय की चीनी शाखा का प्रथम प्रधान धर्माचार्य माना जाता है।

इन शास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धांतों और वसुबंधु द्वारा लंकावतार-सूत्र के आधार पर संकलित तीस गाथाओं के सिद्धान्तों में बहुत साम्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके सिद्धांतों का प्रादुर्भाव वसुबंधु के समय के बहुत पहले ही हो चुका था, किंतु उसने तथा असंग ने उनको संगठित रूप दिया और उनकी व्याख्या प्रस्तुत की। नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य और हुआन-त्सांग के गुरु शीलभद्र ग्रन्थ के लेखक माने जाते हैं। यद्यपि भिक्षु ताइ ह्ज़ के मतानुसार ग्रन्थ कई व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयास का फल है और कुछ व्यक्ति तो स्वयं हुआन-त्सांग को ही ग्रन्थकर्त्ता मानते हैं।

उपर्युक्त दो शास्त्रों में समस्त गोचरजगत् का वर्गीकरण पाँच वर्गों और उनके एक सौ उपवर्गों में किया गया है :—

१. ह्जिग फ़ा अथवा चित्त और उसके आठ उपवर्ग
२. ह्जिग सो यिऊ फ़ा अथवा चैतसिक धर्म और उसके इक्यावन उपवर्ग
३. से फा अथवा रूप और उसके ग्यारह उपवर्ग
४. ह्जिग पू जिह्आग मिग ह्जिग फा अथवा चित्त विप्रयुक्त धर्म
५. वू वाई फा अथवा असंस्कृत

इन शत उपवर्गों में केवल अंतिम पाँच ही उपाधियों से परे क्षेत्र के हैं। अदीक्षित व्यक्तियों के लिए प्रथम आठ का अध्ययन ही समीचीन है, और इसके अतिरिक्त उनको द्वितीय वर्ग की इक्यावन चित्त शक्तियों पर भी ध्यान देना चाहिए। यहाँ हम चित्त की आठ शक्तियों तक ही अपने अध्ययन को सीमित रक्खेंगे और अन्य वर्गों तथा उपवर्गों का उल्लेख आवश्यकतानुसार करेंगे।

चित्त वर्ग के आठ उपवर्ग निम्नलिखित हैं :—

१. येन शिह् (दृष्टि आश्रित विज्ञान)

२. एर्ह् शिह् (शब्दाश्रित विज्ञान)

३. पाई शिह् (गंधाश्रित विज्ञान)

४. शी शिह् (रसाश्रित विज्ञान)

५. शेन शिह् (स्पर्शाश्रित विज्ञान)

६. यी शिह् (विचाराश्रित विज्ञान)

७. मोनो शिह् (मनस अथवा आत्मविज्ञान)

८. अ लाई येह् शिह् (आलय-विज्ञान)

यद्यपि इस प्रथम वर्ग को चित्त की संज्ञा दी गई है, पर हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इसके अन्तर्गत चित्त और उसकी शक्तियों के विश्लेषण-मात्र की अपेक्षा और भी बहुत कुछ विचार किया गया है।

इन दोनों शास्त्रों का उद्देश्य स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करना है कि चित्त और भौतिक तत्त्व वस्तुतः एक ही हैं। प्रथम दो वर्गों—चित्त और चित्त के लक्षणों—के चार वर्गों में सामान्य विभाजन से यह बात और भी सुस्पष्ट हो जाती है :–

१. ह्ज़ि आंग फ़ेन (लक्षण भाग)

२. चिएन फ़ेन (दर्शन भाग)

३. त्ज़ी चेंग फ़ेन (स्वसंवित्ति भाग)

४. चेंग त्ज़ी चेंग फ़ेन (स्वसंवित्ति-संवित्ति भाग)

इनमें से प्रथम, ह्ज़ि आंग फ़ेन शब्द विषयगत-जगत् के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसमें चित्त और जिसका ज्ञान उसे होता है वह भौतिक प्रपंच दोनों सम्मिलित है। चिएन फेन का अनुवाद संवेदना किया जा सकता है और वह वस्तुतः मानसिक क्षेत्र का विषय है 'चेंग वाई शिह् लुन' में उल्लेख है :—

"अशुद्ध चेतना उत्पन्न होने पर अपने को विषय और विषयी इन दो प्रतीयमान पक्षों में व्यक्त करती है। यही बात सभी संबद्ध मानसिक प्रक्रियाओं के संबंध में भी सत्य है। प्रतीयमान विषय की स्थिति में उसको ह्ज़िआंग फ़ेन (प्रत्यक्षीकृत वर्ग) कहते हैं और प्रतीयमान विषयी के रूप में उसे चिएन फ़ेन (प्रत्यक्षकर्ता वर्ग) कहते हैं।.......किंतु जो प्रत्यक्ष करता है वह, तथा जिसका प्रत्यक्ष होता है, वह दोनों ही किसी ऐसी वस्तु पर अवलंबित हैं, जो उनका वास्तविक स्वरूप है। इसको त्ज़ी चेंग फ़ेन (स्वयं को प्रमाणित करने वाला वर्ग) कहते हैं। इसका अभाव होने पर चित्त (से उत्पन्न वस्तुओं) और

उसकी प्रक्रियाओं को स्मरण रखने का कोई साधन नहीं रह जाएगा। . . .किंतु यदि हम सूक्ष्म विश्लेषण करें, तो एक चौथा वर्ग भी है और वह स्वयं प्रमाणित करने वाले वर्ग को प्रमाणित करने वाला वर्ग — चेंग त्ज़ी चेंग फ़ेन — है। क्योंकि यदि यह न हो, तो तीसरे वर्ग को किससे प्रमाणित किया जा सकेगा? "

'चेंग वाई शिह लुन' में यु केन शेन अथवा 'मूल शरीर' का विस्तृत वर्णन मिलता है। पश्चिमी विज्ञान की भाषा में हम इसे मनोविज्ञान और शरीरविज्ञान की दृष्टि से मानव शरीर का अध्ययन कह सकते हैं। बौद्ध-दर्शन में मनुष्य के शरीर को विभिन्न व्यापार करने वाले दो अंशों में विभक्त किया गया है, जिनके नाम वू सी शेन और केन यी चू हैं। केन यी चू के अन्तर्गत मानव-देह तथा उसके विविध संस्थानों, त्वचा, मांसपेशियों आदि की गणना की जाती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मध्य स्थापित संबंध मूलतः इसी पर आश्रित माने जाते हैं। वू सी केन (पंच आकार मूल) अथवा चिग सी केन (विशुद्ध आकार मूल) इंद्रिय प्रत्यक्ष के परे हैं, क्योंकि स्वयं वे ही इंद्रिय प्रत्यक्ष के साधन हैं। प्रथम श्रेणी के दृश्य, शब्द, गंधादि विज्ञानों के पाँच उपवर्ग इन्हीं पंचमूलों से उत्पन्न होते हैं। यह पंचमूल पश्चिमी विचार-धारा में स्नायुमंडल की प्रक्रियाओं के समान रूप हैं। समस्त विज्ञानों के आगार आलाइ येह शिह (आलय) में प्रपंचात्मक जगत् की प्रतिमाएँ ही नहीं, सप्तविधि विज्ञानों तथा चित्त के इक्यावन लक्षणों से उद्भूत प्रवृत्तिजन्य प्रतिमाएँ —'बीज'—भी समाविष्ट रहती हैं। 'बीज' शब्द का प्रयोग एक रूपक की भांति इन 'अद्यतन प्रवृत्तियों' के प्राग्भाव को व्यक्त करने के लिए किया गया है। जिस प्रकार मिट्टी में पड़े हुए बीजों को अंकुरित होने के लिए ताप, नमी तथा अन्य उपादानों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आलय विज्ञान में अंतःनिष्ठ 'बीजों' को सचेतन प्रत्यक्षीकरण अंकुरित करने के निमित्त 'हेतु' की आवश्यकता पड़ती है। अतीत में प्राप्त सभी संवेदन, चाहे वे मानस-स्तर के हों चाहे शारीरिक स्तर के, स्मृति प्रतिमाओं के रूप में पुनर्जाग्रत होने के लिए इन्हीं 'बीजों' पर अवलंबित होते हैं। 'चेंग वाई शिह लुन' में इन हेतुओं के चार प्रकार दिए हुए हैं:—

१. यिन युआन (अतीत के बीज),
२. तेन वू चिएन युआन (तात्कालिक हेतु),
३. सो युआन युआन (विषयनिष्ठ प्रपंच)
४. त्सेन शांग युआन (उपर्युक्त तीन श्रेणियों में न आने वाले अन्य हेतु)।

इन में से तृतीय का वर्गीकरण फिर किया गया है। 'चेंग वाई शिह लुन'

में इन उपविभागों का निम्नलिखित वर्णन मिलता है :—इस (सो युआन युआन) हेतु के दो प्रकार होते हैं, एक प्रत्यक्ष और अपरोक्ष तथा दूसरा अप्रत्यक्ष और परोक्ष। दृष्टि-शक्ति से संबद्ध होने पर उत्पादक संवेदन प्रत्यक्षीकरण के द्वारा उद्दीप्त होता है, और इस स्थिति में उसको अपरोक्ष वास्तवीकरण मानना चाहिए। दृष्टि-शक्ति से संबद्ध न होने पर कार्यकारी पदार्थ उत्पादक संवेदन को उद्दीप्त करता है और उसे परोक्ष वास्तवीकरण माना जाना चाहिए। मन से असंबद्ध पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण के संबंध में महायान संप्रदाय का मत भौतिकवाद के विरुद्ध लेखक की युक्ति के सदृश है। यद्यपि विषयगत जगत् का विषयकरण आलय-विज्ञान द्वारा होता है और उसका प्रत्यक्षीकरण पंचविज्ञानों द्वारा होता है, तथापि वह मन से असंबद्ध रहता है। जिस प्रक्रिया द्वारा वह मन से संबद्ध होता है, वह पदार्थों और मन के संयोग पर आधृत होती है। ऊपर उद्धृत अवतरण में इसको "अपरोक्ष वास्तवीकरण" की संज्ञा दी गई है। असंबद्धता की दशा में, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, कार्यकारी पदार्थ हेत्वात्मक संवेदन को उद्दीप्त करता है, और उसे "परोक्ष वास्तवीकरण" का नाम दिया गया है।

यह तो हम पहले ही बतला चुके हैं कि वू सी केन अथवा "पंच आकार-मूल" स्नायुमंडल के समानुरूप हैं। इस संबंध में बौद्ध-सिद्धांत अधुनातन शरीर-विज्ञान की स्थापनाओं से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। इस वैज्ञानिक निरीक्षण में बौद्ध-दर्शन ने एक दार्शनिक तत्त्व भी जोड़ दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विषयगत जगत् पंचविज्ञानों के माध्यम से आलय-विज्ञान की सर्जना-मात्र है।

समस्त मानस संवेदनों की उत्पत्ति सीधे पंचविज्ञानों से होती है और साथ-ही-साथ वे आलय-विज्ञान के वास्तवीकृत रूप-मात्र होते हैं। इस बौद्ध धारणा और शरीर-विज्ञान तथा शरीर-रचना-शास्त्र की स्थापनाओं में केवल शब्दों का ही अंतर है।

बौद्ध-दार्शनिकों ने चेतना को अपने विशिष्ट अनुशीलन का विषय बनाया। उसके दो रूप माने गए हैं—एक तो वह जो पंचविज्ञानों के साथ ही उत्पन्न होती है और उनके द्वारा प्रत्यक्षीकृत पदार्थों के निश्चयीकरण में सहायता देती तथा सीधे इन पंचविज्ञानों में संगृहीत पदार्थों पर आश्रित रहती है। दूसरी चेतना, तू तो यी शिह, में दृष्टि-शक्ति के समस्त अतीत-कालीन "बीज", स्मृतियाँ, आशाएँ और कल्पनाशक्ति संगृहीत रहती हैं। आलय-विज्ञान में संगृहीत "बीजों" तथा आशाओं एवं कल्पनाओं के यथार्थ द्रव्य से रहित होने के कारण इन प्रक्रियाओं को हम चेतना का स्वयं-उद्भूत विषयकरण कहते हैं। चेतना के लक्षणों के आधार

पर उसका एक दूसरा वर्गीकरण भी किया गया है। इसके अनुसार चेतना का एक प्रकार है फ़ेन पी यी शिह् अथवा निर्धारक चेतना, जो समस्त चेतन व्यापारों का संचालन करती है और दूसरा चू शेंग यी शिह् अथवा सह-जात चेतना है, जो मोटे तौर से पश्चिमी मनोविज्ञान की शब्दावली में अवचेतन अथवा अचेतन के समरूप है। यह हम पहले बता चुके हैं कि पंचविज्ञानों की उत्पत्ति पंच-आकार-मूलों से होती है, इसी प्रकर चेतना भी ऐसे ही किसी "मूल" पर आश्रित होती है। किंतु चेतना का यह "मूल" पूर्वकथित पंचमूलों की भाँति इस आकारिक जगत् का एक यंत्र नहीं है, उसका संबंध व्यावर्तक रूप से मानस-क्षेत्र से है और वह सीधे मो नो शिह् अथवा आत्म-चेतना पर निर्भर होती है। यह मो नो शिह् अपना कार्यकारी पदार्थ आलय-विज्ञान से इस अर्थ में प्राप्त करती है कि उस (आलय) में संगृहीत पदार्थ अहंता-प्रत्यय अथवा आत्म-चेतना में घनीभूत हो जाते हैं।

पुनर्जन्म और कर्म के विभिन्न स्तरों का संबंध समझने के लिए पहले हम मन या चित्त के विविध लक्षणों पर विचार करेंगे। इक्यावन चेतसिक धर्मों अथवा मन के लक्षणों का पुनवर्गीकरण निम्नलिखित छः वर्गों में किया गया है:—

१. पिएन ह्जिन, अथवा पाँच सर्वसामान्य चेतसिक धर्म
२. पिएन चिंग, अथवा पाँच विशेष चेतसिक धर्म
३. शान ह्जिन सो, अथवा ग्यारह शोभन चेतसिक धर्म
४. फ़ान नाओ, अथवा छ: मौलिक क्लेश
५. सूइ फ़ान नाओ, बारह सहकारी क्लेश
६. यू तिंग ह्जिन सो, अनिर्दिष्ट चेतसिक धर्म।

इन चेतसिक धर्मों के प्रथम वर्ग के पंचम उपवर्ग ह्जिन सो के घटक विचार, निश्चय, गति, वाणी इत्यादि हैं। सुजी ह्जिन सो में संगृहीत शक्तिशाली बीज यी शु येह् मृत्यु के समय आलय-विज्ञान के प्रपंचात्मक जगत् के बीजों से संयुक्त होकर आलय-विज्ञान के पुनर्जन्म के कारण बनते हैं। व्यक्तिगत कर्मों में अंतर ही पाँचों स्तरों में से किसी एक में जन्म पाने का कारण होता है।

धर्मलक्षण संप्रदाय के अनुसार समस्त गोचर विषय प्रत्येक क्षण (क्षण एक मिनट का ४५०० वाँ, अथवा एक विचार का ९९ वाँ अंश होता है) में चार अवस्थाओं को पार करता है—उत्पत्ति, विकास, परिवर्तन और विनाश। उस में दो आभासिक रूप से भिन्न, मानसिक और भौतिक क्षेत्रों का वर्णन भी है। इन

दो क्षेत्रों का उपविभाजन "बीजों" और "प्रस्फुटनों" में किया गया है। मानसिक क्षेत्र के प्रस्फुटनों का अर्थ है दृष्टि-शक्ति द्वारा संवेदनों की उत्पत्ति और भौतिक क्षेत्र के प्रस्फुटनों का अर्थ संवेदन-शक्ति के पंचविज्ञानों द्वारा गृहीत प्रतिमाओं का वास्तवीकरण है। मानसिक और भौतिक जगत् दोनों के "बीज" आलय-विज्ञान के पदार्थजगत् में संगृहीत रहते हैं। इन दोनों क्षेत्रों के समग्र प्रस्फुटन अपने "बीजों" पर अवलंबित और हेत्वात्मक उपादानों से प्रसूत होते हैं। जन्म का अनिवार्य अंत विनाश में होता है, और विनाश नए "बीजों" को जन्म देता है। यदि हेत्वात्मक शक्तियाँ अपना उद्दीपक प्रभाव जारी रखती हैं, तो आगामी क्षण दोनों क्षेत्रों के नूतन प्रस्फुटनों की सृष्टि करता है। इस प्रकार गोचर भवप्रपंच एक ऐसा सतत आभास प्रस्तुत करता है, जिसकी स्थिति कुछ क्षण, अथवा एक दीर्घकाल, अथवा एक कल्पांत की अकल्पनीय अवधि तक रह सकती है। हेवात्मक प्रभाव के शमित होने पर उस के द्वारा उद्भूत "बीजों" का विनाश स्वतः हो जाता है। इन "बीजों" की विनष्टि स्वयं अपने प्रभाव से एक ऐसे "नवीन बीज" की सृष्टि कर सकती है, जो मौलिक हेतु के सातत्य पर आश्रित न हो। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मानसिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों के प्रपंच वास्तव में "बीजों" के प्रस्फुटन-मात्र हैं, जो प्रस्फुटित होते ही विनष्ट हो जाते हैं, परंतु क्रमागत परिवर्तन की आत्यंतिक त्वरित गति के कारण स्थिरता का आभास देते हैं।

इस संप्रदाय का उद्देश्य "वान फा वाई शिह" के पीछे छिपे तत्त्वों को, अथवा 'समस्त पदार्थों के स्वरूप और धर्मों' को समझना तथा यह प्रतिपादित करना है कि सभी कुछ मन अथवा चैतन्य है, और प्रपंच के क्षणभंगुर आभासों से विमुक्त अवस्था में वही परम सत्य है। "चेग वाई शिह लुन" का कथन है :—

"अतः प्रपंचात्मक अथवा परमतत्त्व संबंधी प्रत्येक वस्तु, 'सत्य' और 'असत्य' प्रतीत होनेवाला प्रत्येक पदार्थ, चैतन्य से अभिन्न है। "मात्र" शब्द (मात्र-चैतन्य मात्र-विज्ञान, शब्द संयोग में प्रयुक्त) का प्रयोग इस बात का निराकरण करने के लिए किया गया है कि विज्ञान के परे भी कुछ सत्य पदार्थ हो सकते हैं, किंतु यह अस्वीकार करने के लिए नहीं कि मानसिक व्यापारों और धर्मों इत्यादि का अस्तित्व विज्ञान अथवा चेतना से अभिन्न है।

'विकसित करती हुई' (शब्द संयोग का प्रयोग) यह निर्देश करता है कि आंतरिक चेतना प्रतीयमान अहंता और वाह्य जगत् के धर्मों के प्रस्फुटनों को विकसित करती है। इस विकास प्रेरक शक्ति को मिथ्या विवेक की संज्ञा दी

जाती है। क्योंकि उसका स्वभाव हीमिथ्या विवेक करना अर्थात् त्रिगुणात्मक जगत से संबंधित मन और उसके व्यापारों को (सत्य पदार्थ) मानना है। जिन विषयों से वह संलग्न हो उता है, उनको विविक्त कहते है, और उसके विषय अहंता तथा वे धर्म हैं जिन को वह भ्रांतिवश सत्य समझता है। इस प्रकार विवेक मित्या अहंता और धर्मों के रूप में बाड्य पदार्थों का विकास करता है। किंतु इस प्रकार सत्य स्वीकार की हुई अहंता और धर्मों की सत्ता ही नहीं होती। हम ने उपर्युक्त उद्धरणों और युक्ति के द्वारा इस धारणा का पर्याप्त खंडन कर दिया है।

अतएव सब कुछ चेतना या विज्ञान मात्र है। जहां तक मिथ्या विवेक का प्रश्न है उसको एक निश्चित तथ्य माना जा सकता है। क्योंकि "मात्र विज्ञान" धर्मों को उस समय तक अस्वीकार नहीं करता जब तक वे विज्ञान से संयुक्त रहते हैं और इस अर्थ में आकाश आदि की सत्ता है। इस प्रकार हाम (विज्ञान में कुछ) जोड़ने और (विज्ञान का) उच्छेदन करने के दो अतिवादों से बच जाते हैं। मात्र विज्ञान का अर्थ सुनिश्चित हो जाने से हम मध्यम पथ में स्थिर रहने में समर्थ हो सकते हैं।"

बौद्धिक विवेचन द्वारा हमने स्वीकार कर लिया कि समस्त पदार्थ चित्त-मात्र हैं। फिर भी बहुधा व्यावहारिक जीवन में हम इस विश्वास से रागात्मक रूप से चिपके रहते हैं कि उन (पदार्थों) की सत्ता सत्य है। विषयीपरक अहंता और विषयपरक पदार्थों की सत्ता में विश्वास हमारे मन में अत्यंत दृढ़ता से जमा हुआ है। अतः 'जाग्रत होने और चित्र-मात्र' में प्रवेश करने के लिए हमें बौद्धिक और रागात्मक स्तरों पर विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है। चेंग वाई शिह लुन के अनुसार इस प्रयास या साधना के पाँच पद है :—

"जाग्रत होने और चित्र-मात्र में प्रविष्ट होने के लिए पांच पद कौन से हैं? प्रथम पद शील संपदा का है। इसका अभ्यास महायान के आदेशों के अनुसार बौद्धिक स्तर पर भ्रांति से मुक्ति मिल जाने तक करना चाहिए। दूसरा पद प्रचुर प्रयत्न का है। महायान के अनुसार इसका अभ्यास सम्यक चयन और निश्चय करने की क्षमता प्राप्त करने तक करना चाहिए। तीसरा पद अनिरुद्ध प्रज्ञा का है। इसका अर्थ बोधिसत्त्वों द्वारा प्राप्त सत्य में अंतर्दृष्टि की स्थिति है। चौथा पद साधना का अभ्यास है। इसका अर्थ बोधिसत्त्वों द्वारा लब्ध सत्य का अभ्यास है। पंचम पद चरम सद्धि का है। इसका अर्थ शाश्वत और अनुपम पूर्ण प्रज्ञा है।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि चीन में धर्मलक्षण संप्रदाय के प्रवर्तक हुआन-

त्सांग के शिष्यों की संख्या लगभग तीन हजार थी। उनमें कुआई-ची और युआन-त्सी प्रसिद्धतम है, और पु-कुआंग, फ़ा-पाओ, ह्जिन कुंग, चिन-माइ, ह्जुन-चिन, चिआ-शान, हुइ-लि, येन-त्सुंग, ह्जिन-फ़ाग और त्सुंग-ची आदि भी बौद्धधर्म के क्षेत्र में प्रख्यात थे।

कुआई-ची हुआन-त्सांग के शिष्यों में महानतम था। उसने विद्यामात्रसिद्धि सिद्धांत के संबंध में गुह्य ज्ञान अपने गुरु से प्राप्त किया था और उसके कार्य में सहयोगी भी था। विद्यामात्रसिद्धि पर लिखे हुए चीनी ग्रन्थों के अध्ययन में कुआई-ची की टीका में सुरक्षित व्याख्याओं से वड़ी सहायता मिलती है। यह व्याख्याएँ अनुवाद लिखाते समय स्वयं हुआन-त्सांग द्वारा विषय-निरूपण संबंधी टिप्पणियाँ होने के कारण असाधारण महत्त्व रखती हैं। ग्रन्थ की भूमिका में शिष्य स्वयं ही कहता है :—

"मेरा गुरु मुझे मूर्ख नहीं समझता था। उसने अपने विचारों को प्रकाशित करने की आज्ञा मुझे दी। जिस समय अनुवाद कार्य हो रहा था, मुझे उस पर गुरुवर की व्याख्या प्राप्त हुई और उसी आधार पर मैंने इस टीका की रचना की है।"

कुआई-ची ने यह व्याख्या ६६१ ई० में प्राप्त की। वह इस कार्य को संपन्न करने की पात्रता रखता था, क्योंकि वह पहले चेंग वाई शिह लुन अथवा विज्ञप्ति मात्रता-सिद्धि ग्रन्थ के अनुवादन में सहायता कर चुका था, जिसका अनुवाद ६५९ ई० में पूर्ण हुआ था। यह ग्रन्थ हुआन-त्सांग की सर्वोत्तम कृति है। यह वसुबन्धु के विद्यामात्रसिद्धि का प्रामाणिक चीनी अनुवाद है और मूल के अतिरिक्त उसमें दस महत्त्वपूर्ण भारतीय टीकाओं का सार भी संकलित है। उसकी मृत्यु ६१ वर्ष की आयु में ६८२ ई० में हुई। उसके द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची निम्नलिखित है :—

१.	तुषित लोके वोधिसत्त्व मैत्रेय उपपत्ति ध्यान-सूत्र पर स्मारक विज्ञप्ति	२ खंड
२.	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र विज्ञापक गुणानुवाद	६ खंड
३.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता माहात्म्य	२ खंड
४.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता वृत्ति	४ खंड
५.	प्रज्ञापारमिता हृदय-सूत्र माहात्म्य	२ खंड
६.	सद्धर्म पुंडरिक-सूत्र गुह्य माहात्म्य	१० खंड
७.	सुखावती व्यूह विज्ञप्ति	१ खंड

८.	विद्यामात्रसिद्धि टीका	२० खंड
९.	विद्यामात्रसिद्धि की अतिरिक्त प्रति	३ खंड
१०.	विद्यामात्रसिद्धि का एक खंड	४ खंड
११.	विद्यामात्रसिद्धि त्रिदश-शास्त्र कारिका की व्याख्या	१ खंड
१२.	विंशत् श्लोकी ग्रन्थ की टीका	३ खंड
१३.	विद्यामात्रसिद्धि की भूमिका	२ खंड
१४.	योगाचारभूमि-शास्त्र वर्णन	१६ खंड
१५.	महायान अभिधर्म संयुक्त संगीति-शास्त्र वर्णन	१० खंड
१६.	मध्यांत विभाग-शास्त्र वर्णन	३ खंड
१७.	महायान (धर्मोद्यान उपवन) अध्याय	७ खंड
१८.	हेतुविद्या-शास्त्र महाविज्ञापक	३ खंड
१९.	हुआन-त्सांग कृत विनय धर्म	१ खंड
२०.	विविध संप्रदाय सिद्धांत चक्र-शास्त्र अभिलेख	१ खंड

यह भी सुना जाता है कि उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुआई-ची ने सुखावती-व्यूह-सामान्य-माहात्म्य दो खंडों में और सुखावती सम्यक् मार्ग दो खंडों में लिखा था, किन्तु यह सूचना ठीक नहीं लगती, क्योंकि इन ग्रन्थों की विचार-धारा तुषित स्वर्ग में जन्म पाने के सम्बन्ध में कुआई-ची के मूल-भूत विचार के विरुद्ध है।[1]

हुआन-त्सांग का दूसरा शिष्य युआन-त्सी, तांग साम्राज्य की राजधानी चांग-आन स्थित 'पश्चिमी दीप्ति मठ' का एक श्रमण था। एक बार जब उसका गुरु कुआई-ची को विद्यामात्रसिद्धि के सिद्धान्तों की शिक्षा दे रहा था, तब युआन-त्सी भी सुनने के लिए व्याख्यान-भवन में आ गया। उसने भवन में प्रवेश पाने के लिए संतरी को कुछ रिशवत दे दी थी। हुआन-त्सांग ने कुआई-ची को योगाचार भूमि-शास्त्र का उपदेश दिया, जो युआन-त्सी ने भी प्राप्त किया। इस प्रकार वह विद्यामात्रसिद्धि का पंडित बना और बौद्ध-दर्शन के अपने विशद ज्ञान के कारण प्रख्यात हो गया। उसकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं :—

१.	संधिनिर्मोक्षण सूत्र (?) विज्ञापक	१० खंड
२.	देश पालक भद्रराज प्रज्ञापारमिता-सूत्र विज्ञापक	६ खंड
३.	विद्यामात्रसिद्धि विज्ञापक	१ खंड

१ दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण'

इनमें से तीसरा ग्रन्थ नष्ट हो चुका है, प्रथम दो अब भी उपलब्ध हैं।

कुआई ची का उत्तराधिकारी हुआई-चाओ हुआ, जो चि चाउ का निवासी था। वह बुद्ध के स्वरूप और स्वभाव के गम्भीर अर्थ का ज्ञाता था और उसने महारत्न-कूट-सूत्र के अनुवादन में बोधिरुचि की सहायता की थी। उसने निम्नलिखित ग्रन्थों को लिखा है :—

१.	सुवर्ण प्रभास विज्ञापन	१० खंड
२.	हेतुविद्या न्यायप्रवेश-शास्त्र की रूप-रेखा	२ खंड
३.	हेतुविद्या न्यायप्रवेश-शास्त्र का अन्तिम अर्थ	१ खंड
४.	हेतुविद्या न्यायप्रवेश-शास्त्र विज्ञापन का अनुबन्ध	१ खंड
५.	एकादश मुखरिद्धि वत्र हृदय-सूत्र टीका	१ खंड
६.	विद्यामात्रवेद के पूर्ण अर्थ पर टीका	१३ खंड

हुआई-चाओ का उत्तराधिकारी चिह्-चाउ हुआ, जो तांग-काल मे सू-चाउ का निवासी था। उसके ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१.	सद्धर्म पुंडरीक-सूत्र के गुह्य माहात्म्य की व्याख्या	८ खंड
२.	ब्रह्मजाल-सूत्र विज्ञापन	२ खंड
३.	चेग वाई शिह् लुन की गुह्य व्याख्या	१४ खंड
४.	हेतुविद्या न्यायप्रवेश-सूत्र का पूर्व अभिलेख	२ खंड
५.	हेतुविद्या न्यायप्रवेश-सूत्र का उत्तर अभिलेख	२ खंड

चिह्-चाउ के उपरान्त धर्मलक्षण सम्प्रदाय की अवनति होने लगी।

हुआन-त्सांग के बहुत-से ऐसे शिष्य थे, जिन्होंने विद्यामात्रसिद्धि के सिद्धान्तों का अध्ययन किये बिना ही अभिधर्म-कोष-शास्त्र का अनुशीलन किया था। ऐसे शिष्यों में उस समय यू-कुआंग, फ़ा-पाओ और ह्जिन ताई के नाम प्रसिद्ध थे। उन्होंने अभिधर्म कोष-शास्त्र विज्ञापक और टीकाएँ लिखीं और लोग उन्हें इस शास्त्र का विशेषज्ञ मानते थे। इसके अतिरिक्त कुआई-ची ने भी 'अभिधर्म-कोष-शास्त्र पर अभिलेख' नामक पुस्तक लिखी और भिक्षु हुआई-सु ने 'अभिधर्म-कोष-शास्त्र-विज्ञापक' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह दोनों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इसके उपरान्त तांग-काल में 'महान् मेघ मठ' का युआन-हुई नामक श्रमण हुआ, जिसने १९ खंडों में अभिधर्म-कोष-शास्त्र पर टीका और विज्ञापक लिखा, जिसको अभिधर्म के विद्यार्थी विशेष महत्त्वपूर्ण समझते हैं। यह ज्ञात हुआ है कि युआन-हुई ने चीन के तत्कालीन उप-गृहमंत्री चिआ-त्सा के अनुरोध पर अपने इस ग्रन्थ की रचना की थी। 'प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' के अनुसार :—

"पू-कुआंग और फ़ा-पाओ के दो भिक्षुओं के देहावसान के उपरान्त जगत् में एक युआन-हुई नामक धर्माचार्य का उदय हुआ है। उसकी प्रख्यात रचना 'अभिधर्म कोष कारिका का विज्ञापक और टीका" का प्रचार पीत और यांगत्ज़ी नदियों के मध्य देश, पूर्वी और पश्चिमी चीन की राजधानियों तथा होपेह, शांतुंग, स्ज़ीच्वान प्रदेशों तक में है।"

थुंग लिंग द्वारा २९ खंडों में प्रणीत 'अभिधर्म कोष शास्त्र के विज्ञापकों के अभिलेख' और वाई-हुई कृत अभिधर्म-कोष-शास्त्र पर वृत्ति की रचना युआन-हुई के अभिधर्म-कोष-कारिका की टीका और विज्ञापक नामक ग्रन्थ की व्याख्या करने के उद्देश्य से की गई।

हुआन-त्सांग के अभिधर्म-कोष-शास्त्र का अनुवाद करने के पहले अनेक चीनी बौद्ध विद्वान् उसके परमार्थ कृत चीनी भाषांतर का अध्ययन किया करते थे। इस अनुवाद में कोष के बाईस खंड और टीका के इकसठ खंड मिलाकर कुल ८३ खंड थे।

तांग-सम्राट् काओ-त्सुंग के शासन के लिन-ता-कालीन प्रथम वर्ष में १३ अक्तूबर को हुआन-त्सांग का देहान्त हो जाने पर उसके महान् शिष्य हुई-ली ने अपने संस्मरणात्मक टिप्पणी और गुरु के साथ वार्त्तालाप के अभिलेखों के आधार पर उसकी जीवनी लिखी, किन्तु मृत्यु ने उसके कार्य को पूर्ण नहीं होने दिया। उसके अपूर्ण कार्य को येन-त्सुंग ने हाथ में लिया। हुआन-त्सांग तथा हुई-ली की पांडुलिपियों को एकत्र करके उनको क्रमबद्ध किया। हुई-ली के पांच खंडों की अशुद्धियों को ठीक किया और हुआन-त्सांग की जीवनी को परिवर्धित करके दस खंडों में पूर्ण किया। इस कृति का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद श्री जुलिय ने और अंग्रेजी में श्री एस० बील ने किया है।[1]

(घ) तू-शुन और अवतंसक सम्प्रदाय

अवतंसक सम्प्रदाय अथवा ह्वा येन सम्प्रदाय का नाम बुद्धावतंसक-महा-वैपुल्य-सूत्र से निकला है। परम्परा के अनुसार इस सम्प्रदाय का प्रथम संघराज नागार्जुन था, यद्यपि प्रथम चीनी महास्थविर तू-शुन को इसका संस्थापक माना जा सकता है।

---

१ दे० 'सर्वकालीन बुद्धों और महास्थविरों के सम्बन्ध में पूर्ण वक्तव्य' और 'प्र० भि० सं०'

धर्म के जाल में सभी सूत्रों के विशाल और विस्तीर्ण समन्वय से युक्त होने के कारण अवतंसक-महावैपुल्य-सूत्र को सूत्र-राज माना जाता है। यह कहा जाता है कि संकलित किए जाने के उपरान्त यह सूत्र एक लौह-मीनार में छिपा दिया गया था। नागार्जुन नें सरसों के कुछ दानों की सहायता से इस मीनार को खोला। मीनार के भीतर उसको इस सूत्र की तीन पांडुलिपियाँ प्राप्त हुईं—वृहत्, जिसमें असंख्य श्लोक थे, मध्यम और लघु जिनमे केवल एक लाख श्लोक थे। प्रथम दो प्रतियाँ मानव-बुद्धि की पहुँच के परे होने के कारण केवल लघुतम पांडुलिपि का उपयोग किया गया। जापान के प्रकांड बौद्ध विद्वान् डा० सुजुकी ने इस सूत्र की बड़ी प्रशंसा की है। उसका कथन है—"मेरी समझ मे संसार का कोई भी धार्मिक साहित्य कल्पना की विशालता, भावना की गम्भीरता और रचना की विराटता मे इस सूत्र की समता नहीं कर सकता। वह जीवन का चिरतन निर्झर है, जिससे कोई भी धार्मिक जिज्ञासु प्यासा या अधप्यासा नही लौट सकता।" इस सम्बन्ध में एक पुरानी कविता भी है, जिसमें कहा गया है कि अवतंसक-सूत्र पढ़ लेने के बाद किसी को कोई अन्य लौकिक पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इस सूत्र के तीन चीनी अनुवाद हैं। पहला ६० खंडों में त्सिन चिन अथवा 'प्राचीन सूत्र' के नाम से बुद्धभद्र कृत है, जो चीन में ४०६ ई० में आया था। दूसरा लगभग ७०० ई० में ८० खंडों में शिक्षानन्द कृत है और तांग चिन अथवा नूतन-सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। तीसरा ४० खंडों में लगभग ८०० ई० में प्रज्ञा द्वारा प्रणीत है।

इस सूत्र पर टीकाओं की संख्या प्रचुर है और सामग्रिक रूप से वे अवतंसक-खंड के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें लगभग ७०० ई० में हुई-युआन कृत अवतंसक (अर्थ और उच्चारण) कोष भी सम्मिलित है।

चीनी अवतंसक सम्प्रदाय का संस्थापक तू-शुन वान निएन जिले का निवासी था। अठारह वर्ष की आयु में मठ-प्रवेश करके उसने भिक्षु ताओ-चेन से बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त की। अपने को समस्त मलों से मुक्त कर के बाधा रहित हो, उसने षट्-सिद्धियाँ प्राप्त कीं, अतः उसको तांग-सम्राट् ताई-त्सुंग ने अपने दरबार में बुलाया। एक दिन सम्राट् ने उससे कहा—"मै चिन्ताकुल हो रहा हूँ। तुम इसका उपचार अपनी सिद्धियों के प्रयोग से किसी तरह कर सकते हो?" तू-शुन ने तत्काल उत्तर दिया—"यदि आप देश भर के बन्दियों को मुक्त कर दें, तो आपका आन्तरिक ताप तत्काल नष्ट हो जाएगा।" सम्राट् ने

वैसा ही किया और रोगमुक्त हो गया। सम्राट् ने उसे ति-ह्जिन का सम्राटीय नाम प्रदान किया। तू-शुन की मृत्यु तांग-सम्राट् ताइ-त्सुग के शासन के चेन-कुआन कालीन १४ वें वर्ष (६४० ई०) में हुई।[1]

उसने अवतंसक सिद्धान्तों पर दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जिनके नाम निम्न-लिखित हैं :—

१. फा चिआ कुआन मेन अथवा नाम रूपात्मक जगत् पर विचार।

२. वांग चेन ह्राउन युआन कुआन अथवा मिथ्या-विचार-शामक और मूल की ओर प्रत्यावर्तन के निमित्त अवतंसक ।

उसके उपरान्त चिह्-येन कार्य-क्षेत्र में आया, जिसका जन्म सुई-सम्राट् वेन-ती के शासन के काई-ह्वांग-कालीन बीसवें वर्ष (६०० ई०) में हुआ था। अठारह वर्ष की आयु में उसने मठ-प्रवेश किया। वह त्रिपिटकों के आगे नित्य प्रार्थना किया करता था और बुद्धावतंसक-महावैपुल्य-सूत्र के प्रथम भाग का नित्य पाठ करता था। उसकी मृत्यु तांग-सम्राट् काओ-त्सुंग के चुग-चांग-कालीन प्रथम वर्ष (६६८ ई०) में हुई।

उसका उत्तराधिकारी फा-त्सांग हुआ, जिसका जन्म ६४३ ई० में हुआ था। उसका पितामह सोगदिअन था और चीन में बस गया था। उसने बौद्धधर्म की शिक्षा मध्य एशिया के भिक्षु दिवाकर से प्राप्त की थी। बाईस वर्ष की अवस्था में उसने हुआन-त्सांग के अनुवाद-कार्य में सहायता दी थी। आगे चल कर मतभेद के कारण उसे अनुवाद-परिषद् से सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ा। तदुपरान्त उसने स्वतंत्र रूप से परिश्रम कर के भिक्षु-तू-शुन और चिह्-येन के सिद्धान्तों को विकसित किया। इस प्रकार अवतंसक सिद्धान्तों की स्थापना हुई और उनका प्रचार चीन में हुआ। फा-त्सांग के जीवन के विषय में 'शुंग-कालीन प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण' में लिखा है :—

"फा-त्सांग ने सम्राज्ञी वू त्सी-तिएन (६८४–७०५) के लिए अवतंसक सूत्र के नए पाठांतर की व्याख्या प्रस्तुत की, किंतु जब उसने इन्द्रजाल के दस रहस्यों के विषय में विविध मतों, समुद्र-प्रतीक समाधि, षड्गुणों के समन्वय, सार्विक प्रत्यक्षीकरण आदि सिद्धान्तों को, जिनके आधार पर सभी लोग अवतंसक में सामान्य या विशिष्ट सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं, स्पष्ट करना चाहा, तो सम्राज्ञी भ्रम और शंका में पड़ गई। तब दृष्टांत के लिए फा-त्सांग ने राजमहल के सभाकक्ष के रक्षक स्वर्ण सिंह की ओर संकेत किया। इस प्रकार सुपरिचित

१ दे० वही

उदाहरणों की सहायता से वह अपने नए सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया करता था, जिससे उनकी व्याख्या शीघ्र और सहज ही हो जाती थी। उसने चिन-शिह-त्जी अथवा 'स्वर्ण सिंह पर विमर्श' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें उसने दस तत्त्वों के सामान्य और विशिष्ट लक्षणों का निरूपण किया। तब उसका सही अर्थ सम्राज्ञी की समझ में आ गया।"

अपने शिष्यों के इन्द्रजाल का गुह्यार्थ न समझ पाने पर उसने एक चातुर्यपूर्ण उपाय किया। उसने दस दर्पणों को लेकर उन्हें अष्ट दिशाओं की रेखा पर तथा एक ऊपर और एक नीचे, एक दूसरे के सम्मुख इस प्रकार रक्खा कि उनमें से प्रत्येक के बीच १० फीट का अन्तर था। तदुपरान्त केन्द्र-स्थान में उसने एक बुद्ध-प्रतिमा रक्खी और उसको एक दीपज्योति से प्रकाशित कर दिया, जिससे उसका प्रतिविम्ब एक दर्पण से दूसरे दर्पण में चमक उठता था। इस प्रकार उसके शिष्यों की समझ में 'पृथ्वी और सागर (ससीम जगत्) से असीम में' प्रवेश का सिद्धान्त आ गया।

फा-त्सांग की मृत्यु तांग-सम्राट् ह्जुआन-त्सुंग के शासन के काई-युआन-कालीन प्रथम वर्ष (७१३ ई०) में ७० वर्ष की आयु में हुई। उसने बौद्धधर्म पर लगभग ६० पुस्तकें लिखी, जिनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं:—

१.	लंकावतार-सूत्र टीका	४ खंड
२.	ब्रह्मजाल-सूत्र टीका	६ खंड
३.	अवतंसक-सूत्र परीक्षण अभिलेख	१० खंड
४.	अवतंसक-सूत्र पंच मत का अध्याय	५ खंड
५.	स्वर्ण सिंह पर अध्याय	१ खंड
६.	धर्मधातु निर्विकल्प टीका	१ खंड
७.	अवतंसक प्रश्नोत्तरी	२ खंड
८.	अवतंसक-सूत्र की रूप-रेखा	१ खंड
९.	श्रद्धोत्पाद-शास्त्र अर्थ अभिलेख	३ खंड
१०.	श्रद्धोत्पाद-शास्त्र पर अतिरिक्त अभिलेख	१ खंड
११.	द्वादशनिकाय-शास्त्र अर्थ अभिलेख	२ खंड

फा-त्सांग का उत्तराधिकारी उसका शिष्य चेन-कुआन हुआ, जो शांसी प्रांत की वू-ताई पर्वतामाला में स्थित चिग-लिआंग मठ में रहा करता था। उसने अवतंसक-सूत्र पर एक नई टीका ७८४ ई० में आरम्भ की और उसे ७८७ ई० में पूर्ण किया। चिन-युआन-कालीन सप्तम वर्ष (७९१ ई०) में ह्रो-तुंग

के राज्यपाल के निमंत्रण पर चुग फू-मठ में उसने अवतंसक-सूत्र पर नई टीका का उपदेश किया। उसकी धारणा थी कि अवतंसक-सूत्र में चार प्रकार के धर्मधातुओं को मान्यता दी गई है—गोचर, अगोचर, और गोचर-अगोचर के मध्य व्यवधानाभाव। उसने 'अवतंसक धर्मधातु गुह्य दर्पण' नामक ग्रन्थ लिखा। उसकी मृत्यु तांग-सम्राट् ह्जिएन-त्सुग के युआन-हो-कालीन ११ वें वर्ष (८१६ ई०) में ७० वर्ष की आयु मे हुई।[1]

चेन-कुआन का उत्तराधिकारी ध्यान का आचार्य कू-चौ निवासी त्सुंग-मी हुआ। वह ८०७ ई० (तांग-सम्राट् ह्जिएन-त्सुंग के युआन-हो-कालीन द्वितीय वर्ष) में राज सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने जा ही रहा था कि उसकी भेंट ध्यान के प्रसिद्ध आचार्य ताओ-युआन से हो गई। परिणाम-स्वरूप उसने सरकारी नौकरी का विचार त्याग दिया और बौद्ध भिक्षु हो गया। उसने अवतंसक-सूत्र का अध्ययन किया और चेन-कुआन का शिष्य होने के लिए उसको एक पत्र लिखा। उसने अवतंसक-सूत्र पर व्याख्या और टीका ९० खंडों में लिखी। उसका देहान्त ८४१ ई० (तांग-सम्राट् वू-त्सुंग के हुई-चांग-कालीन प्रथम वर्ष) में हुई। मृत्यु के उपरान्त बौद्ध रीति के अनुसार उसके शव का दाह-कर्म कुआई-फ़ेंग पर्वत में किया गया। चिता की भस्म से कई देहावशेष प्राप्त हुए।

संक्षेप में, अवतंसक सम्प्रदाय के आधारिक सिद्धान्तों के दो पक्ष हैं:—पहला रूप और द्रव्य के सम्बन्ध का है, जिसका अतिसामान्य उदाहरण सागर और उसकी लहरें हैं। अगोचर जगत् को 'तत्त्व-क्षेत्र' मना गाया है और गोचर को 'वस्तु-क्षेत्र'। अगोचर सत्ता धर्म लक्षण का द्रव्य तत्त्व है, जिसका निवास तथागत गर्भ में है और शाश्वत-काल से जो स्वतः परिपूर्ण और समर्थ है। वह न तो मलीन तत्त्वों के संसर्ग से दूषित होता है, न साधना से पवित्र होता है। इसी कारण उसको स्वतः शुद्ध और पवित्र कहा जाता है। उसका सत्त्व सर्वत्र प्रकाशमान है, कोई भी ऐसा अन्धकार नहीं है, जिसको वह प्रकाशित न कर सके। इसीलिए उसको परिपूर्ण ओर ज्योतिर्मय कहा जाता है। अगोचर की तुलना जल से की जा सकती है और गोचर जगत् (के पदार्थों तथा विषयों) की जल बीचियों से। जो व्यक्ति प्रज्ञा की सर्वोच्च भूमिका में ध्यान की साधना द्वारा पहुँच जाते है, उनको गोचर जगत् का भान होता है न

---

१ दे० वही

अगोचर जगत् का। और इस स्थिति में पहुँच जाने का अर्थ यह नहीं है कि वे वहाँ सर्वदा स्थित ही रहने को विवश हैं। 'अवतंसक उद्देश्य सागर शतशील' में उल्लेख है :—

"बुद्ध-पद की अनुभूति का अर्थ है भौतिक पदार्थ की शून्यता, व्यष्टिगत अहंता का अभाव, गोचरता लक्षण का अभाव, किन्तु इस भूमिका में पहुँचकर कोई सर्वदा प्रशांत शून्य में वास नहीं करता रह सकता, क्योंकि ऐसा करना बुद्धों के धर्म के विपरीत होगा। शिक्षा उसी को देनी चाहिए जो कल्याणकारी और प्रीतिकर हो और बुद्धों की प्रज्ञा तथा उपायों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस स्थिति में पहुँचकर ही इन सब विषयों के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए।"

यह इसलिए कि बुद्ध महाप्रज्ञा और महाकरुणा दोनों के आगर होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि वे महाप्रज्ञा प्राप्त करने के उपरान्त जन्म-मरण के चक्र के अधीन नहीं रहते, फिर भी अपनी महाकरुणा के कारण वे निर्वाण-पद में ही निवास नहीं करते रहते।

इस सम्प्रदाय का प्रधान सिद्धान्त, जो ताओ दर्शन और कनफ्यूशिसवाद के सदृश है, समस्त भिन्नताओं के परे एक निरपेक्ष अद्वैत में विश्वास करता है, जिसमें परस्पर विरोधी तत्त्व भी उसी प्राक्तन तत्त्व के विकार-मात्र सिद्ध होते हैं।

(च) हुई-नेंग और ध्यान सम्प्रदाय की दक्षिणी शाखा

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि चीन में ध्यान सम्प्रदाय की संस्थापना बोधिधर्म द्वारा हुई थी। यह सम्प्रदाय कर्मकांड और सूत्रों की उपेक्षा कर के आन्तरिक प्रकाश के सहारे ज्ञान की अपरोक्ष उपलब्धि में विश्वास करता था।

बोधिधर्म के उत्तराधिकारी हुई-की, सेंग-त्सान, ताओ-ह्जिन, हुंग-जेन, और हुई-नेंग हुए। इनमें से अन्तिम को ध्यान-सम्प्रदाय का छठा महास्थविर माना गया है। तब से ध्यान सम्प्रदाय उत्तरी और दक्षिणी शाखाओं में विभक्त हो गया। उत्तरी शाखा का नेता हुई-नेंग और दक्षिणी का शेंग-ह्जिऊ था, जो 'हृदय निरीक्षण' के सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था।

हुई-की उत्तरी वाई-काल में लो-यांग का एक निवासी था। उसका आरम्भिक नाम शेंग-कुआंग था। जब बोधिधर्म होनान के ह्जुन पर्वत स्थित शाओ लिन मठ में एकान्त वास कर रहा था और ध्यानाभ्यास में कई वर्ष तक

संलग्न रहा था, हुई-की उसके पास ध्यान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रायः जाया करता था। एक रात को जब विकट हिम-वर्षा हो रही थी, तब उसने बौद्धधर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के प्रति अपने दृढ़ संकल्प का प्रमाण देने के निमित्त अपनी एक बाँह काट डाली थी, अतः बोधिधर्म उससे बहुत प्रभावित हुआ और उसको अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। आगे चलकर बोधिधर्म ने उसे निःशब्द दीक्षा प्रदान की और तब वह चीनी ध्यान सम्प्रदाय का द्वितीय महास्थविर बना। उसके उपरान्त चार अन्य चीनी महास्थविर हुए। यद्यपि उनके शिष्यों की संख्या काफी बड़ी थी, वे अपने सिद्धान्त की दीक्षा प्रदान करने में बड़ी सख्ती से काम लेते थे और अपने उत्तराधिकारियों के चुनने में बहुत सावधान रहते थे।

इन पाँच चीनी महास्थविरों में से चतुर्थ हुंग-जेन आधुनिक हु-पेह प्रांतस्थ ह्वांग-माइ में रहता था। उसके समय में एक कैन्टनवासी लकड़हारा था, जिसका ऐहिक नाम लो था। वह इतना अभागा था कि उसके पिता की मृत्यु उसकी माता को दीन और दुखी छोड़कर, तभी हो गई थी, जब वह केवल तीन वर्ष का था। एक बार जब वह बाजार में लकड़ियाँ बेच रहा था, तब उसने किसी को वज्रच्छेदिका-सूत्र का पाठ करते सुना। वह उसके इन शब्दों से बहुत प्रभावित हुआ—"विचार को अनासक्त स्थिति से उत्पन्न होना चाहिए" तब उसने इस बात का पता लगाया कि यह सदुपदेश कहाँ से प्राप्त हो सकता है। महास्थविर हुंग-जेन का नाम ज्ञात होते ही वह उनकी अभ्यर्थना करने तत्काल ह्वांग-माइ जिले को गया। महास्थविर ने उससे पूछा कि वह कहाँ का रहने वाला है और उनसे क्या पाने की आशा लेकर आया है। उसने उत्तर दिया—"मैं लिंग-नान का एक प्रजाजन हूँ, मैंने इतनी लम्बी यात्रा आपको अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिए ही की है और मैं बुद्धपद के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता हूँ।" महास्थविर ने कहा—"तुम लिंग-नान के निवासी हो, और उस पर भी एक आदिवासी हो। तुम बुद्धपद प्राप्त करने की आशा कैसे कर सकते हो।" लो ने उत्तर दिया—"यद्यपि उत्तरी लोग हैं, और दक्षिणी लोग हैं; किन्तु उत्तर और दक्षिण उनके बुद्ध-स्वरूप में कोई अन्तर नहीं डालते। एक आदिवासी शारीरिक दृष्टि से आप से भिन्न अवश्य है; किन्तु हमारी बुद्ध-स्वरूपता में कोई अन्तर नहीं है" तव हुंग-जेन ने अनुभव किया कि व्यक्ति बुद्धिमान है और उसे मठ के कार्य में सम्मिलित होने की आज्ञा दी।

आठ महीने तक हुई-नेंग निम्नतम प्रकार के कार्यों को करता रहा और

तभी हुंग-ज़ेन का अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का समय आया। चुनाव करने में पूरी सावधानी बरतने के उद्देश्य से हुंग-ज़ेन ने अपने शिष्यों से अपने-अपने पद प्रस्तुत करने के लिए कहा, जिनके आधार पर उनकी योग्यता की जाँच की जा सके। उनमें से एक शिंग-ह्जिउ ने, जो मठ में उपदेशक भी था, निम्न-लिखित पद की रचना की, जिसकी सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की :—

शरीर पवित्र बोधिवृक्ष के समान है,
इसे धूल से सदा मुक्त रक्खो,
मन प्रतिविम्ब देने वाला दर्पण है,
धूल का पर्दा उस पर न पड़ने दो।

जब लकड़हारे ने, जिसे हुई-नेंग का धर्म नाम मिल चुका था, इस पद को सुना, तब उसने किसी से प्रार्थना की कि वह उसे पढ़कर सुना दे। उसे सुनकर उसने उस पद के उत्तर में दूसरा पद कहा, जिससे प्रमाणित हो गया कि ध्यान सिद्धान्तों में उसकी पैठ शेंग-ह्जिऊ से कहीं अधिक थी। उसका पद इस प्रकार था :—

जहां न बोधिवृक्ष है
न दर्पण है,
कुछ नहीं, कुछ नहीं है,
धूल किस पर पर्दा बनेगी?

पंचम महास्थविर इस उत्तर से, जो ध्यान सम्प्रदाय के सिद्धान्त की गम्भीर ग्राहिका-शक्ति का परिचायक था, इतना प्रसन्न हुआ कि उसने महास्थविर-पद के प्रतीक चीवर और कमंडलु उसको प्रदान कर दिये। लेकिन यह उसने गुप्त-रूप ही से किया, जिससे एक निरक्षर भिक्षु को ऐसा सम्मान मिलने से अन्य भिक्षु ईर्ष्यालु न हो उठें। हुई-जेंग तब दक्षिण की ओर चला गया, जहाँ उसने त्साओ-ह्जी में ध्यान सम्प्रदाय की अपनी शाखा स्थापित की। उसका देहान्त तांग-सम्राट् ह्जुआन-त्सुंग के काई-युआन-कालीन प्रथम वर्ष (७१३ ई०) में हुआ। सम्राट् ह्जिएन-त्सुंग ने छठे महास्थविर को 'ता काम चान शिह' अथवा 'महान दर्पण ध्यानाचार्य' की मरणोत्तर उपाधि दी और जिस पैगोडा में उसकी समाधि है, उसके लिए अग्रलिखित चैत्य-लेख लिखा—"समन्वित आत्मा दिव्य रूप से प्रकाशमान होती है।" उन्हीं दिनों शेंग-ह्जिऊ ने, जिसने पहला पद रचा था, उत्तर में एक प्रतिद्वंद्वी शाखा की स्थापना की; किन्तु राजकीय संरक्षण

के बावजूद वह शीघ्र ही विलुप्त हो गई और हुई-नेंग की शाखा का प्रचार जापान तथा कोरिआ तक हो गया।

दक्षिणी शाखा आगे चलकर प्रमुख हो गई और उससे नान-याओ और चिंग-युआन नामक दो उपशाखाएँ निकली, जिनके नेता क्रमशः मात्सु और शिह-तोउ थे। नान-याओ अथवा दक्षिणी पवित्र पर्वत शाखा की स्थापना हुई-नेंग के प्रसिद्ध शिष्य हुआई-जांग (६८०—७४४ ई०) ने की थी। 'हुआई-जांग की सूक्तियों का अभिलेख' में निम्नांकित वर्णन मिलता है :—

"मा-त्सु अर्थात् ताओ-इ, नान-याओ पर्वत स्थित धर्म-प्रचारक विहार में रहता था। वह किसी एकान्त स्थान में रहकर अकेले ही ध्यान का अभ्यास किया करता था और अपने दर्शनों के निमित्त आए हुए व्यक्तियों की चिन्ता बिलकुल नहीं करता था। एक दिन उसका गुरु (यानी हुआई-जांग) उसकी कुटी के सामने ईंटे पीसता रहा, किन्तु मा-त्सु ने कोई ध्यान नहीं दिया। जब ऐसा बहुत दिन चलता रहा, तब अन्त में उसने अपने गुरु से पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं? गुरु ने उत्तर दिया कि एक दर्पण बनाने के लिए ईंटें पीस रहा हूँ। मात्सु ने पूछा कि ईंटों से दर्पण कैसे बनेगा? गुरु ने उत्तर दिया कि यदि ईंटें पीसने से दर्पण नहीं बन सकता है, तो ध्यान करने से कोई बुद्ध कैसे बन सकता है? 'ध्यान करने से कोई बुद्ध नहीं बन सकता' यह कहने का अर्थ था कि आध्यात्मिक सिद्धि की साधना नहीं की जा सकती। उसी पुस्तक में फिर लिखा है—यह प्रश्न पूछा गया कि आध्यात्मिक सिद्धि की साधना फिर किस प्रकार की जा सकती है? तब आचार्य, यानी मा-त्सु ने उत्तर दिया कि आध्यात्मिक सिद्धि, साधना की कोटि में नहीं आती, क्योंकि यदि यह माना जाए कि उसकी प्राप्ति साधना से हो सकती है, तो साधना के बाद वह नष्ट भी हो जा सकती है, जैसा श्रावकों के साथ होता है। यदि हम यह मानते हैं कि उसकी साधना नहीं हो सकती, तो वह जनसाधारण के समान है।"

आध्यात्मिक साधना की पद्धति न तो साधना करने की है और न साधना न करने की है, वह बिना साधना के द्वारा साधना करने की है। मात्सु का देहान्त तांग-सम्राट् ती-त्सुंग के चिन-युआन-कालीन चतुर्थ वर्ष (७८८ ई०) में हुआ।

मात्सु का उत्तराधिकारी हुआई-हाइ हुआ, जो हुंग-चौ में पाइ-चांग पर्वत का निवासी था। उसने ध्यान सम्प्रदाय सम्बन्धी अनुष्ठानों के नियमों की रचना की, जो पाइ चांग चिंग क्-वाई अथवा पाइ-चांग के मठीय नियम नाम से प्रसिद्ध

हैं। समस्त चीन मे बौद्ध भिक्षु इस नियमावली का पालन करते थे। उसकी मृत्यु तांग-सम्राट् ह्विज़एन-त्सुग के युआन-हो कालीन नवें वर्ष (८१४ ई०) में ९५ वर्ष की आयु में हुई। वह अपने शिष्यों को एक विचित्र प्रकार से—परम सत्य के विषय में सभी धारणाओं और विचारों का परित्याग कर, सीधे परमसत्य की ओर संकेत करके—उपदेश दिया करता था। एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :—

किसी ने हुआइ-हाइ से पूछा—" निर्वाण की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? "

" कोई ऐसा कर्म न करो, जो पुनर्जन्म का कारण बने। "

" पुनर्जन्म का कारण कौन-सा कर्म होता है ? "

" निर्वाण-प्राप्ति का प्रयास करना, मलीन का त्याग करना और निर्मल का अभ्यास करना, यह कहना कि कुछ साध्य और प्राप्य है, द्वंद्वों से मुक्त न होना आदि कर्मों से पुनर्जन्म होता है। "

" तो मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? "

" आरम्भ से ही कोई बन्धन न रखकर। "

" और मुक्ति प्राप्त करने से लाभ क्या है ? "

" अपनी इच्छानुसार काम करो, जैसे भावे वैसे चलो, दूसरा विचार मत आने दो। यही अनुपम मार्ग है। "

हुआई-हाइ के अन्तिम वाक्य से यह न समझ लेना चाहिए कि ध्यान का अर्थ प्रस्तुत में चैन और मूर्खतापूर्ण ढंग से जीवन बिताना और जीवन जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार कर लेना है। ध्यान के सम्बन्ध में यह सूत्र उपयोगी हो सकता है—" ताओ क्या है ? " उसने चिल्लाकर कहा—" चले चलो। " अर्थात् जब यह सोचो कि ध्यान के विषय में यह धारणा ठीक है, तो उसे त्याग दो और चलते रहो।

हुआई-हाइ से दो शाखाएँ—लिन-ची और कुआई-निआंग—निकलीं।

लिन-ची शाखा ने बड़ी उन्नति की। अन्य सम्प्रदायों को पराभूत कर, वह उत्तरी और दक्षिणी चीन में दूर-दूर तक फैल गई। इसका संस्थापक आई-हुआन (मृत्यु ८६७ ई०) था, जिसने ध्यान की दीक्षा ही-युन से प्राप्त की थी। ही-युन किआंग-सी प्रान्त के नान चांग नगर के पश्चिम में ह्वांग-पो पर्वत पर अनेक वर्ष रहा, जिससे उसको तथा ध्यान मत की उसकी व्याख्या को यह

विशिष्ट नाम मिला। वह छठे महास्थविर हुई-नेंग की सीधी शिष्य-परम्परा में तृतीय और श्रद्धेय हुआई-हाइ का "आध्यात्मिक भतीजा" था। उच्चतम यान की केवल अपरोक्ष पद्धति में, जो शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती, श्रद्धा रखते हुए वह चित्ताद्वैत के सिद्धान्त को छोड़कर कोई अन्य उपदेश नहीं करता था। वह यह मानता था कि "चित्त और द्रव्य शून्य हैं, और कारणता की शृंखला स्थिर है, अतः किसी अन्य उपदेश की आवश्यकता नहीं है। चित्त धूलि के लघुतम कण से मुक्त भव्य प्रकाश-दाता आकाशगामी सूर्य के सदृश है। जिसने परमसत्य के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसके लिए नया और पुराना जैसा कुछ नहीं है, और छिछलेपन तथा गहराई के प्रत्यय भी अर्थ-हीन हैं। उसके विषय में जो कुछ कहते हैं, उसकी 'व्याख्या करने' का प्रयास नहीं करते, न किसी मत की स्थापना करते हैं, न कोई दरवाजा या खिड़की खोलते हैं। जो तुम्हारे सामने है, वही 'वह' है। उस के विषय में तर्क करने लगो, तो तुरन्त ही भ्रम में पड़ जाओगे। जब इतना समझ लोगे तभी प्राक्तन बुद्ध-धर्म से अपने अद्वैत का ज्ञान तुम्हें हो सकेगा।" इसी कारण उसके शब्द सरल होते थे; उसकी युक्तियाँ सीधी, उसकी जीवन-शैली उदात्त, और उसके कार्य अन्य लोगों से भिन्न होते थे। उसके महान् शिष्य और लिन-ची शाखा के संस्था-पक आई-हुआन ने भी कहा है :—

"आजकल जो लोग आध्यात्मिक साधना में लगते हैं, वे सफल नहीं होते। उनमें क्या कोष है? उनमें दोष यह है कि वे अपने (आन्तरिक प्रकाश) में श्रद्धा नहीं रखते।" उसने अन्यत्र कहा है—"तुम लोग जो साधना में लगे होऔर बुद्ध-दर्शन में सिद्धि प्राप्त करना चाहते हो, तुम्हारे लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। केवल एक ही मार्ग है और वह है कुछ विशेष न करके साधारण काम करते रहना, मल-मूत्र त्याग करना, खाना खाना और कपड़े पहनना, थकने पर लेट जाना और एक सरल व्यक्ति की तरह इन कामों पर अपने ऊपर हँसना — ज्ञानी पुरुष ही वस्तुतः इनके महत्त्व को समझता है।' विशिष्ट साधना में संलग्न व्यक्ति को अपने में पर्याप्त विश्वास करना चाहिए और अन्य सब कुछ छोड़ देना चाहिए। विशिष्ट साधना करते समय दैनन्दिन जीवन के साधारण कार्यों के परे कुछ प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, वरन् दैनिक जीवन के मध्य ही न तो किसी पदार्थ का बोध ग्रहण करना चाहिए, न कोई विचार मन में आने देना चाहिए। यही अ-साधना द्वारा साधना, अ-प्रयत्न द्वारा प्रयत्न है।"

कुआई-निआंग शाखा की स्थापना फू-चौ-निवासी ध्यानाचार्य लिंग-यू ने की थी। वह पन्द्रह वर्ष की आयु में ही भिक्षु हो गया था और उसने चीकिआंग प्रांत की राजधानी हांग-चौ के लुंग-हिन मट में हीनयान और महायान का अध्ययन किया था। तेईस वर्ष का होने पर वह भिक्षु हुआई-हाइ के चरणों में बैठकर ध्यान की शिक्षा प्राप्त करने किआंग-सी प्रांत को गया। तदुपरांत वह कुआई पर्वत को गया। वहाँ उस ने ध्यान के प्रचार के निमित्त एक मन्दिर बनवाया। उसका देहान्त ८३ वर्ष की आयु में हुआ। निआंग पर्वत-वासी उसके शिष्य हुई-चेन ने अपने गुरु के सिद्धान्तों का प्रचार जारी रक्खा। इस प्रकार उसने एक लोकप्रिय संप्रदाय की स्थापना की, जिसका नाम कुआई-निआंग पड़ा। दुर्भाग्यवश यह शाखा लिंग-यू और हुइ-चेन की मृत्यु के बाद शीघ्र ही समाप्त हो गई।[1]

शिह-तोउ शाखा से तीन उपशाखाएँ और निकलीं—त्साओ-तुंग, यू-मेन और फ़ा-येन। शिह-तोउ के उत्तराधिकारी एक ओर यो-शान के वाइ-येन और दूसरी ओर तिएन-वांग के ताओ-वू हुए।

ध्यानाचार्य शिह-तोउ का लौकिक नाम चेंग था और वह हेंग पर्वत के दक्षिणी मठ में रहता था। मठ के पूर्व में अलिंद के बराबर एक पत्थर था। एक बार उसने एक चट्टान के शिखर पर कुटी बनाई, जिसमें वह ध्यानाभ्यास किया करता था। इसलिए लोग उसे 'पाषाण भिक्षु' कहते थे। उसने 'त्स-आन तुंग ही' अथवा 'रसायन-शास्त्र' नामक एक पुस्तक की रचना की।

वाई-येन के उत्तराधिकारी तान-हुएह, तुंग शान का लिआंग चिएह और त्साओ शान का पेन-शिह हुए। अन्तिम दो ने त्साओ-तुंग शाखा की स्थापना की। उनकी धारणा थी कि अज्ञान से ज्ञान की ओर जाते समय मनुष्य अपनी मरणशील मानवीयता को पीछे छोड़कर ज्ञान-भूमिका में प्रवेश करता है। ऐसा हो जाने पर उसके तथा साधारण मनुष्य के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं रह जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुष एक बार मुक्ति लाभ कर लेने के उपरान्त अपने साथ आराम से रहता है। लिआंग-चिएह ने इस बात को इस तरह व्यक्त किया है :—

"एक बार आचार्यवर किसी मी नामक व्यक्ति के साथ नदी पार कर रहे थे। उन्होंने मी से पूछा कि नदी पार करना किस प्रकार का कर्म है? मी ने

---

१ दे० 'ध्यान-संप्रदाय के महत्त्वपूर्ण आचार्यों की वंशावली संग्रह का अवशेष'

उत्तर दिया कि ऐसा कर्म जिसमें पानी, पैरों को नहीं भिगोता। आचार्य ने कहा—'महा श्रद्धेयवर, तुमने उसे घोषित कर दिया है।' तब भी ने पूछा कि फिर उसका वर्णन किस तरह करना चाहिए? आचार्य ने उत्तर दिया—'पैर पानी से नहीं भीगते'।[१]

उसके शिष्य त्साओ-शान ने भी कहा है—"साधारण चित्त ही ताओ है।" ज्ञानी का चित्त साधारण चित्त ही है। इसी का वर्णन 'ज्ञानी पद पीछे छोड़कर मरणशील मानवता में प्रवेश' कहकर किया गया है। ज्ञानी की भूमिका पीछे छोड़कर मरणशील मानवता में पदार्पण करने को 'गिरना' कहा गया है, किन्तु 'गिरना' ज्ञानी भूमिका से च्युत होने और उस के भी ऊपर उठ जाने दोनों को कह सकते हैं। ज्ञानी की भूमिका से ऊपर उठने का ही वर्णन "सौ फ़ीट ऊँचे बाँस की चोटी के ऊपर एक पग आगे और ऊँचे जाना" कहकर किया गया है।[२]

ताओ-वू के उत्तराधिकारी लुंग-तान का त्सु-हिन, ती-शान का हुआन-चिएह, और हुह-फ़ेंग का ई-त्सुन हुए।

लुंग-तान के भिक्षु त्सुंग-हिन को तिएन-वांग के भिक्षु ताओ-वू ने दीक्षा दी थी। उसने अपने गुरु की सेवा पूर्ण तन्मयता से की। एक दिन उसने अपने गुरु के निकट जाकर कहा—"जब से मैं यहाँ आया हूँ, एक बार भी आपने ध्यान का तत्त्व मुझे नहीं बतलाया।" आचार्य ने उत्तर दिया—"जब से तुम मेरे पास आए हो, मैं ध्यान के तत्त्व की ओर संकेत करते रहने में कभी नहीं चूका हूँ।" "आपने ऐसा कब किया?" त्सुंग-हिन ने पूछा। गुरु ने उत्तर दिया—"जब-जब तुम चाय का प्याला ऊँचा करके लाए हो, मैं उसे स्वीकार करने में कभी नहीं चूका हूँ; जब-जब तुमने हाथ जोड़कर प्रणाम किया है, मैंने सदा अपना सिर झुकाया है। तुम बताओ, "मैंने ध्यान का उपदेश कब नहीं किया?" त्सुंग-हिन बड़ी देर तक चुप बैठा रहा। तब आचार्य ने फिर कहा—"यदि तुम्हें समझना है, तो तुम्हें सीधे समझना होगा, एक क्षण में; यदि तुम ध्यान के तत्त्व को ग्रहण करने में तर्कना पर ज़िद करते हो, तो सदा पथ-भ्रष्ट होते रहोगे"। और तत्क्षण आचार्य का मंतव्य त्सुग-हिन की बुद्धि में चमक गया।

ई-त्सुन ने ध्यान की दीक्षा हुआन-चिएह से प्राप्त की थी। उस में तांग-

---

१ दे० 'तुग-शान-सूक्ति-अभिलेख'

२ दे० 'त्साओ-शान-सूक्ति-अभिलेख'

सम्राट् ई-त्सुंग के शासन-काल में फ़ू-चौ स्थित हुएह-फेंग में एक ध्यान-मठ का निर्माण करवाया था। उसकी मृत्यु पंचवंशीय लिआंग साम्राज्य के सम्राट् ताई-त्सु के काइ-यिंग-कालीन तीसरे वर्ष (९९९ ई०) में ८७ वर्ष की आयु में हुई।

ई-त्सुन से दो परवर्ती शाखाओं का जन्म और हुआ, जिन के नाम युन-मेन और फ़ा-येन हैं। इनके नेता क्रमश: वेन-आन और वेन-ई थे।

युन-मेन शाखा का संस्थापक चीकिआंग-प्रान्त के चिआ-हिन ज़िले का निवासी वेन-आन था। वह ध्यान-प्रचार के निमित्त युन-मेन पर्वत में रहता था। इस कारण उसके द्वारा प्रवर्तित शाखा का नाम युन-मेन पड़ा। वेन-आन के सिद्धांत के अनुसार चित्त या मन निरभ्र आकाश के सदृश शून्य है और वह किसी एक वस्तु को, चेतना और शून्य को भी धारण नहीं करता। यद्यपि ज्ञानी पुरुष सभी साधारण कार्य करता है, वह उन में लिप्त नहीं होता, न उनके विकारों में फंसता है। युन-मेन का कथन है :—

"सारे दिन विविध विषयों पर विवाद करने के उपरान्त भी तुम्हारे ओठों या दांतों पर कुछ भी (शब्द) न आना, एक भी शब्द न बोलना। दिन भर चावल खाने और कपड़े पहने रहने पर भी एक भी चावल के संपर्क में न आना और न रेशम के एक भी धागे को छूना" ज़ेन है।[1]

फ़ा-येन शाखा का प्रवर्तक नानकिंग के चिंग-लिआंग पर्वत-वासी वेन-ई था। वह प्रत्येक पदार्थ में पाए जाने वाले छ: लक्षणों की शिक्षा दिया करता था—"पूर्ण और अंश", "एकता और विविधता", "समग्रता और अंशता"। वह यह भी उपदेश देता था कि तीनों लोक[2] कल्पना-मात्र हैं और चित्त-मात्र हैं। चीन में इस शाखा का अन्त हो गया, किन्तु वह कोरिआ में प्रचलित है।

चीन में ध्यान-संप्रदाय उत्तरी और दक्षिणी शाखाओं में क्रमश: शेंग-सिऊ और हुई-नेंग के नेतृत्व में विभक्त हो गया। उत्तरी शाखा एक इकाई के रूप में बनी रही। दक्षिणी शाखा पाँच उपशाखाओं में बँट गई। अग्रांकित रेखाचित्र में दक्षिणी ध्यान का विकास प्रस्तुत किया गया है :—

---

१ दे० 'पूर्वकालीन ध्यान-संप्रदायी स्थविरों की सूक्तियों का अभिलेख'

२ यहाँ अभिप्राय कामधातु, रूपधातु, अरूपधातु के तीन मरणोत्तर लोकों से है।

त्साओ-ही-वासी हुई-नेंग
नान याओ-वासी हुआई-जांग
मात्सु, अर्थात् ताओ-ई
पाई चांग-वासी हुआई-हाइ
कुआई पर्वत-वासी लिंग-यू
निआंग पर्वत-वासी हुई-चेन
कुई-निआंग शाखा
ह्वांग-पो-वासी ही-युन
लिंग-ची का ई-हुआन
लिंग-ची शाखा
चिंग युआन-वासी हिंग-ज्ञी
शिह-तोउ-वासी ही-चिएन
यो-शान-वासी वाई-येन
युन-येन-वासी तान-हुएन
तुंग-शान-वासी लिआं चिएह
त्साओ-शान-वासी पेन-शिह
त्साओ-तुंग शाखा
तिएन-वांग-वासी ताओ-वू
लुंग-तान-वासी त्सुंग-हिन
ती-शान-वासी हुआन-चिएह
हुएह-फ़ेंग-वासी ई-त्सुन
युन-मेन-वासी वेन-आन
युन-मेन शाखा
चिंग-लिआंग-वासी वेन-ई
फ़ा-येन शाखा
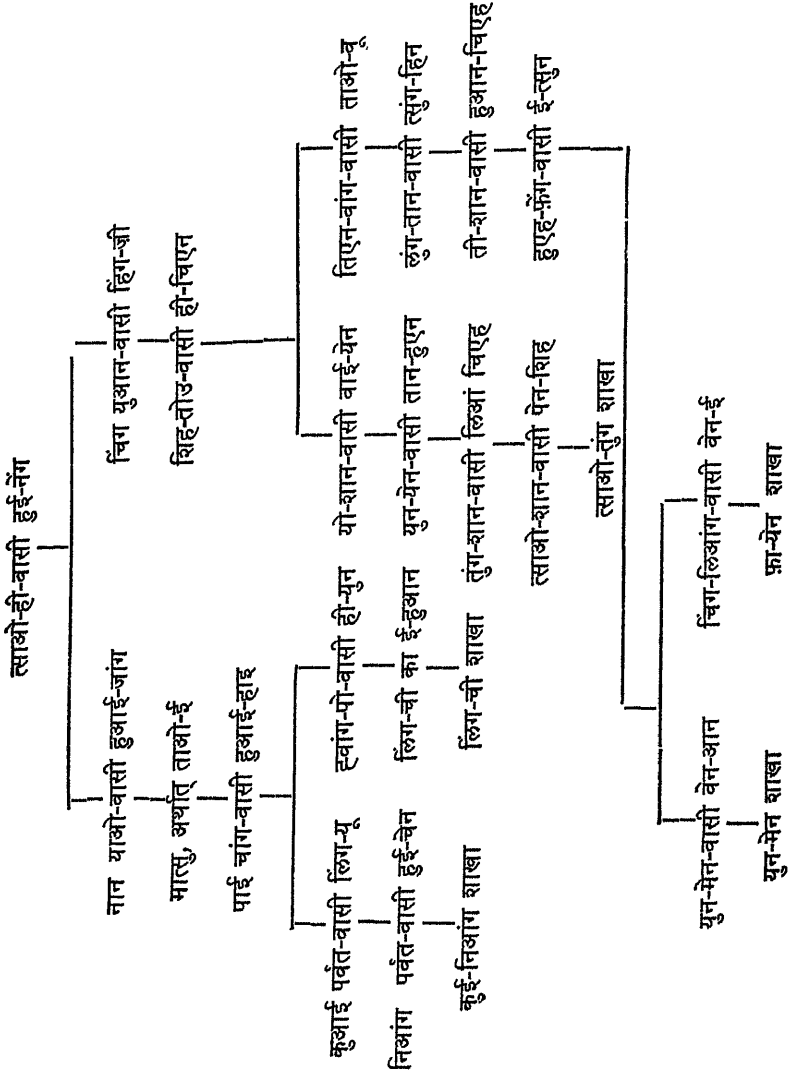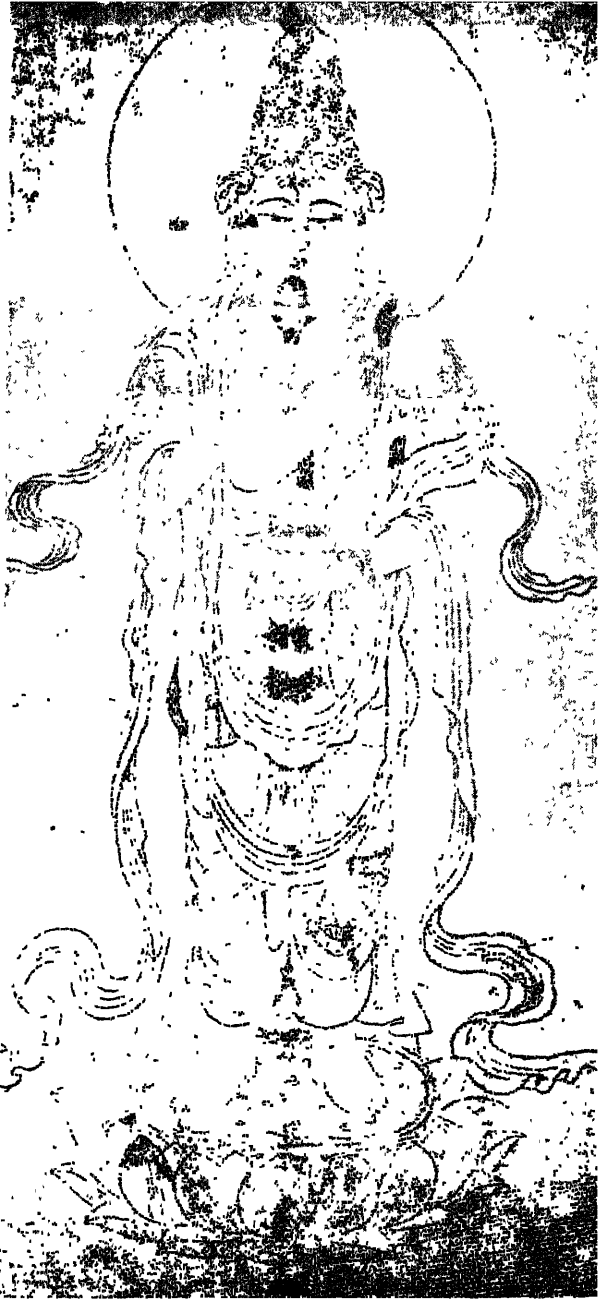
बोधिसत्त्व क्षितिगर्भ

बोधिसत्त्व मंजुश्री

(छ) पुंडरीक सम्प्रदाय की दो शाखाएँ

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि महायान और हीनयान में मुख्य अन्तर यह है कि इन में से प्रथम यह विश्वास रखता है कि जो अपने प्रयत्न से प्रज्ञा लाभ करने में असमर्थ हैं, उनको उसकी प्राप्ति बोधिसत्त्व के संचित पुण्य के द्वारा हो सकती है। इस सिद्धान्त का अनुयायी प्रमुख मत पुंडरीक-संप्रदाय अथवा सुखावती-व्यूह संप्रदाय है।

परम्परा की मान्यता के अनुसार इस संप्रदाय का प्रथम प्रधानाचार्य नागार्जुन था और दूसरा वसुबन्धु, जिसने इस मत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुखावती-व्यूह की रचना की। इस मत की चीनी शाखा का प्रथम प्रधानाचार्य त्सिन-कालीन हुई-युआन (३३६-४१६ ई०) था, जिसका उल्लेख हम पीछे चौथे अध्याय में कर चुके हैं।

तांग-काल में पुंडरीक-संप्रदाय की दो शाखाएँ हो गई थीं, जिनके संस्थापक क्रमशः भिक्षु त्ज़ी-मिन और भिक्षु शान-ताओ थे। त्ज़ी-मिन का मूल नाम वाइ-ज़ेन था। वह वर्तमान शान-तुंग प्रदेश के तुग-लाई ज़िले का निवासी था। वह तांग-सम्राट् चुंग-त्सुंग के स्ज़ू-शेंग-काल में भिक्षु हुआ था। भारत यात्री ई-त्सिंग उसका प्रशंसक था, अतः उसने ई-त्सिंग का अनुगमन करने का निश्चय किया। तांग-सम्राज्ञी वू-चाओ के चांग-आन-काल में उसने चीन से प्रस्थान किया और नान-हाइ और लंका होता हुआ बुद्धभूमि में पहुंचा। भारत में वह लगभग तेरह वर्ष रहा और पाश्चात्य स्वर्ग के स्थान के विषय में जिज्ञासा करता हुआ बहुत से बौद्ध-भिक्षुओं से मिला। अनेक बौद्ध-भिक्षुओं ने उसे बतलाया कि पाश्चात्य स्वर्ग पश्चिमी जगत् में अमिताभ के निवास-स्थान में है। वह मध्य एशिया होकर स्वदेश वापस लौटा और तांग-सम्राट् हुआन-त्सुंग के काई-युआन-काल के सातवें वर्ष (७१९ ई०) में चांग-आन पहुँचा। यह कहा जाता है कि जब वह गांधार से होकर आ रहा था, तब वहाँ एक पहाड़ी पर उसने बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति देखी। सात दिन तक वह उस मूर्ति की पूजा करता रहा और तब बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर उसके सम्मुख प्रकट हुए और उससे कहा :—

" यदि तुम बुद्ध-धर्म का प्रचार अपने तथा दूसरों के हित के लिए करना चाहते हो, तो तुम्हें पवित्र भूमि मार्ग के सिद्धान्तों को, जो अन्य सब सिद्धान्तों से श्रेष्ठ हैं, अवश्य जानना होगा। पवित्र भूमि अथवा पाश्चात्य स्वर्ग के अधीश्वर अमिताभ हैं। सृष्टि के दशों लोकों के सभी प्राणियों को अमिताभ में आश्वस्त और आनन्दमय

श्रद्धा रखनी चाहिए, और स्वर्ग में जन्म पाने, अमिताभ और मेरे दर्शन पाने तथा महासुखों की प्राप्ति की आकांक्षाओं को जाग्रत रखने के लिए उनके नाम का आश्रय लेना चाहिए।"

चीन लौटने के उपरान्त उसने अपना शेष जीवन अमिताभ के सिद्धान्तों के प्रचार में बिताया।[1]

त्ज़ी-मिन का दर्शन शान-ताओ के तान-लुआन के सिद्धान्त पर आधारित दर्शन से भिन्न था। वह अमिताभ के संभोग-काय सिद्धान्त में विश्वास करता है, जिसके अनुसार अयिताभ बुद्ध का संभोग-काय अथवा पुरस्कार-शरीर है, जिसके द्वारा वह अपने सुकृत पुण्य का भोग करते हैं ; अतः वह पाश्चात्य स्वर्ग को फल अथवा पुरस्कार-लोक मानता है।

शान-ताओ लिंग-त्ज़ी का निवासी था। एक बार उसे अपरिमितायु-सूत्र की एक प्रति मिली। वह उसके षोडश ध्यानों के अद्‌भुत दर्शन का चीनी अनुवाद करने में संलग्न हो गया। वह लू शान पर्वत, जहाँ हुई-युआन ने पुंडरीक संप्रदाय की स्थापना की थी, हो आया था। तदुपरान्त वह एकांतवास के लिए चुंग-आन पर्वत चला गया और वहाँ कई वर्ष तक प्रत्युत्पन्न समाधि का अध्ययन करता रहा। उसके बाद अपरिमितायुः-सूत्र पढने वह भिक्षु ताओ-चाओ के पास गया और चांग-आन में उसके सिद्धान्तों का उपदेश करता रहा। कहा जाता है कि अपने युग में बुद्ध की आकांक्षा को ठीक तरह से समझने वाला वह प्रथम व्यक्ति था।[2]

शान-ताओ ने पुंडरीक सिद्धान्तों पर अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं, जैसे :—

१.	ध्यान-मार्ग और सुखावती-संप्रदाय के सिद्धान्त	१ खंड
२.	बुद्धभाषित अमितायुर्बुद्ध-सूत्र टीका	४ खंड
३.	धर्म विषय-स्तोत्र	१ खंड
४.	पाश्चात्य स्वर्ग जन्मलाभ स्तोत्र	१ खंड
५.	प्रत्युत्पन्न समाधि-स्तोत्र	१ खंड

कहा जाता है कि इस युग में चीनी बौद्ध-भिक्षुओं ने समस्त चांग-आन और सम्राट् काओ-त्सुंग को भी सुखावती, पवित्र भूमि, संप्रदाय का अनुयायी बना डाला था।

---

१ देखिये 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण' और 'सुंग-कालीन प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'

२ देखिये 'बुद्ध और महास्थविरों का वंशानुक्रम'

तांग-काल के पूर्व पुंडरीक-संप्रदाय की दो शाखाएँ थीं, एक अमिताभ के पवित्र लोक की और दूसरी मैत्रेय के पवित्र लोक की। दोनों शाखाओं ने अनेक ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया, जिनकी सूची निम्नलिखित है :—

१. मैत्रेय परिपृच्छा—आन शिह्-काओ कृत
२. मैत्रेय परिपृच्छा—बोधिरुचि कृत
३. मैत्रेय व्याकरण—धर्मरक्ष कृत
४. मैत्रेय व्याकरण—कुमार जीव कृत

अमिताभ शाखा की सूची :—

१. अमिताभ व्यूह-सूत्र, २ खंड—आन शिह्-काओ कृत
२. अमिताभ व्यूह-सूत्र, २ खंड—चिह्-चिएन कृत
३. अमिताभ व्यूह-सूत्र, २ खंड—धर्मरक्ष कृत
४. अपरिमितायु:-सूत्र, २ खंड—संघवर्मा कृत
५. अपरिमितायु:-सूत्र-शास्त्र, १ खंड—बोधिरुचि कृत

ताओ-आन के देहावसान के उपरान्त मैत्रेयी शाखा का ह्रास होने लगा और अमिताभ शाखा का प्रसार तान-लुआन के प्रचार के फलस्वरूप उत्तरी चीन भर में हो गया। वह शान्सी प्रदेश के वू-ताई पर्वत के निकटस्थ एक स्थान का रहने वाला था। अल्पवय में ही उसने मठ-प्रवेश किया था। वह चतु: शास्त्रों (प्राण्य-मूल-शास्त्र-टीका, शत-शास्त्र, द्वादश निकाय शास्त्र, महाप्रज्ञापारमिता-शास्त्र) तथा बुद्ध-स्वरूप के अर्थ में विशेष अभिरुचि रखता था। उसने दक्षिण चीन के ताओवादी ताओ हुंग-चिह् के दर्शन किये थे और उससे योग-साहित्य पर दस ग्रन्थ प्राप्त किए थे। लो यांग लौटने पर उसकी भेंट बोधिरुचि से हुई, जिसने उसे अपरिमितायु:-सूत्र देकर कहा—"यदि तुम इसके सिद्धान्तों के अनुसार ध्यान करोगे, तो मुक्ति-लाभ कर सकोगे।" अतएव तान-लुआन ने उसे स्वीकार किया और यौगिक सिद्धान्तों के प्रति उत्कट उत्साह से भर उठा। उसने अपना सारा जीवन पुंडरीक-संप्रदाय के प्रचार में लगा दिया। उसका देहावसान ६७ वर्ष की आयु में में ५४२ ई० में हुआ। उसकी मृत्यु के उपरान्त त्ज़ी-मिन और शान-ताओ अमि-ताभ-सूत्र का प्रचार करते रहे।[1]

पुंडरीक-संप्रदाय अमिताभ बुद्ध का नाम जपने का लोकप्रिय मत है। अपने आविर्भाव के समय से ही यह संप्रदाय अन्धविश्वासी प्रतीत होता है ; किन्तु उसके

---

१ दे० 'प्रमुख बौद्ध-भिक्षुओं के संस्मरणों का अवशेष'

सिद्धान्तों का गंभीर अध्ययन करने पर हम देखेंगे कि वे भौतिक पदार्थ शून्य हैं, शून्य भौतिक पदार्थ हैं तथा कारणता और उपाधि के सिद्धान्तों से संगत हैं। जहाँ तक मेरा ज्ञान है, अमिताभ बुद्ध चुंबक के सदृश हैं और उनका नाम जपने वाले लोहे के टुकड़ों की तरह। जैसे लोहे के टुकड़े चुंबक की ओर खिंच जाते हैं, उसी प्रकार अमिताभ बुद्ध का नाम जपने वाले आकर्षित होकर इन बुद्ध की पवित्र भूमि में जन्म पाएँगे। लोहा कारण है और चुंबक उपाधि है, उसी प्रकार जपकर्ता का चित्त कारण है और बुद्ध की प्रतिज्ञा उपाधि है। चुंबकीय शक्ति लोहे के परमाणुओं के व्यवस्थित संयोजन से उत्पन्न होती है। उसी प्रकार जब चित्त अमिताभ के नाम-जप में एकाग्र होता है, तब विचार भी एक व्यवस्थित क्रम में संयोजित हो जाते हैं, जिससे एक आकर्षक शक्ति उत्पन्न होती है, जो जपकर्ता को अमिताभ के पवित्र लोक में जन्म दिलाने में समर्थ करती है। लोहे का टुकड़ा जब चुंबक बनता है, तब लोहे का परिमाण घटता या बढ़ता नहीं। इसी प्रकार एक साधारण मनुष्य भी जब बुद्धत्व प्राप्त करता है, तब बुद्धत्व घटता या बढ़ता नहीं। इसके अतिरिक्त, वह पवित्र-लोक चित्त से भिन्न नही है, उसकी सृष्टि अमिताभ बुद्ध और उनके नाम का जप करने वालों की शक्ति से ही होती है।

बौद्ध प्रयोगों की अनेक पद्धतियाँ हैं, जिनमें बुद्ध के नाम-जप के प्रभाव से पवित्र लोक में जन्म पाना सर्वसाधारण के लिए पहला सरल पग है। यह संप्रदाय चीन में अभी भी प्रचलित है।

(ज) ताओ-हुआन और विनय-संप्रदाय

यह कहा जाता है कि रात्रि का प्रथम प्रहर बीतने के उपरांत जब चन्द्रमा चमक रहा था और सभी नक्षत्र आकाश में थे और उपवन में नीरव शान्ति छाई हुई थी, बुद्ध ने महा करुणा से प्रेरित होकर धर्म के विषय में अपने शिष्यों को उपदेश किया। वे इस प्रकार बोले :—

"मेरे देहान्त के पश्चात् तुम लोग विनय में श्रद्धा रखना और उसका पालन इस प्रकार करना कि जैसे वही तुम्हारा शास्ता हो, जैसे दीप अन्धकार में प्रज्वलित रहता है, या जैसे दरिद्र व्यक्ति रत्न की रक्षा सावधानी से करता है। जो अनुशासन मैं तुम्हें देता रहा हूँ, उनका अनुसरण और पालन तुम को करना चाहिए, उसको तुम मुझसे भिन्न न समझना।"

बुद्ध परिनिर्वाण के उपरान्त उनके शिष्यों ने राजगृह में प्रथम संगीति आयोजित की और शास्ता के समस्त अनुशासनों का पाठ कर के भविष्य में बौद्धों के

अनुसरण के निमित्त उनका संकलन किया। अनुशासन के नियमों का उद्देश्य व्यक्ति की जीवन-शैली को बदलकर उसे साधना के लिए नियोजित करना है। श्रावकों को बुद्ध, धर्म और संघ में त्रिशरण लेना और अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मादक द्रव्य-त्याग और असत्य-त्याग के पाँच नियमों का पालन करना चाहिए। भिक्षुओं के लिए भिक्षु-अनुशासन है और चूंकि वे उपदेष्टा की स्थिति में हैं, उनसे सम्बन्ध रखने वाले नियम अधिक कठोर हैं। नियम कठोरतर होने के कारण वे शरीर और मन को इच्छाओं से मुक्त रखने में अधिक सहायता पहुँचाते हैं और इस प्रकार साधक का साधना-यंत्र अधिक सुकुमार बन जाता है, जिससे वह विभिन्न मनोभूमिकाओं का सूक्ष्मतर विश्लेषण करने और उनका समुचित उपाय करने में अधिक समर्थ हो जाता है ; अतः नियमों के पालन में एक गंभीर अर्थ निहित है। जब यूरोपवासियों ने चीन के मठ-जीवन को देखा, तब उसे अमानवीय जीवन कहकर उसकी भर्त्सना की। ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि वे केवल वाह्य भौतिक जगत् में ही सत्य की खोज से परिचित थे, मन के अंतराल में सत्य की खोज को वे जानते ही नहीं थे। बौद्ध-दर्शन मन और भौतिक पदार्थ को दो भिन्न तत्त्व नहीं मनता, और यदि मन का प्रयोग भौतिक पदार्थ के अनुशीलन में किया जाता है, तो वह व्यर्थ ही श्रांत होता है और भौतिक पदार्थ के स्वरूप का भी पता नहीं चलता। यदि कोई अपने मन को पहले शुद्ध और वाह्य विघ्नों से मुक्त कर ले, तो वह भौतिक पदार्थ के तात्त्विक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। तब वह सत्य को समझ ही नहीं लेगा, उसका सर्वोत्तम उपयोग भी कर सकेगा ; अन्यथा जो कुछ वाह्यतः प्राप्त होता है, वह मन को दूषित करता है और उस के ऊपर भार सिद्ध होता है, तथा तृष्णा, घृणा, वासना और हिंसा की विषैली भावनाएँ उत्पन्न करता है ; अतएव बौद्धों के लिए नियमों के पालन का आदेश उनके मन और शरीर को इच्छाओं से मुक्त करने के निमित्त है, जिससे उनकी ज्ञान-शक्ति विशालतर हो सके। इसी कारण विनयपिटक का महत्त्व समस्त बौद्ध धार्मिक वाङ्मय में सर्वोपरि है और भारत तथा चीन के प्रत्येक संप्रदाय के पास अपना-अपना विनयपिटक है, किन्तु इनमें से अधिकांश के मूल नष्ट हो गए हैं और केवल अपने चीनी रूप में ही उपलब्ध हैं।

चीन में सुरक्षित विनयपिटक निम्नलिखित हैं :—

१. महासांघिक विनयपिटक — ८४ परिच्छेदों में
२. सर्वास्तिवादी विनयपिटक — ६१ परिच्छेदों में

३. महीशासका: विनयपिटक ३० परिच्छेदों में

४. मूल सर्वास्तिवादी विनयपिटक

५. धर्मगुप्त विनयपिटक ६० परिच्छेदों में

अन्तिम विनय 'चतु:खंडीय विनयपिटक' के नाम से भी प्रसिद्ध है और चीनी बौद्धों में अधिक लोकप्रिय है। इसका चीनी अनुवाद बुद्धयशस नामक काश्मीरी बौद्ध-विद्वान् ने ४०५ ई० में किया था। धर्मगुप्त-विनय का अनुवाद ४१० ई० में आरम्भ होकर ४१३ ई० में समाप्त हुआ था।

चीन में विनय-संप्रदाय की स्थापना उत्तरी वाई-कालीन प्रसिद्ध भिक्षु हुई-कुआंग ने की, जिसके शिष्यों, ताओ-युआन और ताओ हुई ने 'धर्मगुप्त शाखा के विनयपिटक विज्ञापक' के कई खंड लिखे थे। इसी के आधार पर इस संप्रदाय की स्थापना हुई।

तांग-वंश के शासन-काल में इस संप्रदाय की तीन शाखाएं हो गईं :—

१. ताओ-हुआन द्वारा स्थापित दक्षिणी पर्वत-शाखा

२. हुआई-सु द्वारा स्थापित पूर्वी स्तूप-शाखा

३. फ़ा-ली द्वारा स्थापित हिआंग-पू-शाखा।

फ़ा-ली तथा हुआई-सु दोनों ने धर्मगुप्त-संप्रदाय पर टीकाएँ और टिप्पणियाँ लिखीं, जो क्रमशः 'टीका और टिप्पणियों की प्राचीन प्रति' तथा 'टीका और टिप्पणियों की नवीन प्रति' के नाम से प्रसिद्ध हैं। टीका-टिप्पणियों की इन प्राचीन और नवीन प्रतियों के विचारों के विषय में उन के अनुयायियों में मतभेद है। पूर्वी स्तूप-शाखा सत्यसिद्धि-शास्त्र की समर्थक थी। इस कारण उनकी धारणा थी कि शासन-आकार न भौतिक पदार्थ है और न चित्त या मन है, न गोचर है, न अगोचर; किन्तु हियांग-पु की शाखा महाविभाषा-शास्त्र और अभिधर्मकोष-शास्त्र पर आधारित थी, अत: उसके अनुसार शासन-आकार रूप अर्थात् भौतिक पदार्थ है, जो उत्पाद भी है, और अनुत्पाद भी। दक्षिणी-पर्वत-शाखा के सिद्धान्त भी सत्यसिद्धि-शास्त्र पर आधारित हैं, जो एक हीनयानीय ग्रन्थ प्रतीत होता है, लेकिन ताओ-हुआन इस ग्रन्थ को महायानीय विचार-धारा का मानता था। शासन-आकार के विषय में उसकी धारणा उपर्युक्त दो शाखाओं से भिन्न है। उसका विश्वास था कि शासन-आकार एक भौतिक धर्म है; और समस्त वस्तुओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—भौतिक और मानसिक। जिनमें द्रव्य और प्रतिरोध है, वे भौतिक हैं, और इनसे रहित मानसिक। उस समय देश में दक्षिणी-पर्वत का विनय-

धर्म-गुप्तक-संप्रदाय का प्रसार हो रहा था। उसके संस्थापक धर्माचार्य ताओ-हुआन ने बौद्धधर्म पर अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं[१] :—

१. 'धर्मगुप्त-निकाय के चतुर्वर्ग विनय में स्वभावानुसार संशोधित कर्म' ४ खंड
२. शाक्यमुनि लोक अभिलेख २ खंड
३. बौद्धों और ताओवादियों के मध्य विवादों के प्रामाणिक अभिलेख समुच्चय ४ खंड
४. (बुद्ध-उपदेशों के) प्रचार और दृष्टान्तों (पर प्रकीर्ण लेखों) का वृहत्तर समुच्चय ४० खंड
५. महान तांग-काल में (संकलित) बौद्ध-ग्रन्थों की सूची १६ खंड
६. प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरणों का अवशेष ४० खंड
७. 'ताओ-हुआन-चरित अभिलेख' ३ खंड
८. कर्म टीका ८ खंड
९. विनयार्थ अभिलेख ३ खंड
१०. भिक्षुणी अभिलेख ३ खंड

ताओ-हुआन की मृत्यु ६६७ ई० में हुई। वह सिद्धान्तों को महत्त्व नहीं देता था; किन्तु कठोर अनुशासन को धार्मिक जीवन का मूल तत्त्व मानता था। यद्यपि संप्रदाय के रूप में अब उसका कोई महत्त्व नहीं रह गया है, उसने चीन में बौद्ध-धर्म की चर्या पर सामग्रिक रूप से बड़ा प्रभाव डाला है। 'सत्य शब्द' संप्रदाय के एकमात्र अपवाद को छोड़कर अन्य सभी संप्रदाय विनय के संबंध में उसके ऋणी हैं।

(झ) गुह्य-सम्प्रदाय की स्थापना

गुह्य-संप्रदाय शाक्यमुनि भगवान् बुद्ध (निर्माणकाय बुद्ध) के उपदेशों पर आधारित अन्य सभी संप्रदायों के विरुद्ध है, और स्वयं धर्मकाय बुद्ध वैरोचन के सिद्धान्तों पर आश्रित है। इस संप्रदाय की विशेषता यह है कि वह बहुसंख्यक देवताओं—जो हिन्दू देवी-देवताओं से अभिन्न हैं—के पूजन पर बल देता है। इसकी साधना-पद्धति में उँगलियों को विशेष मुद्राओं में मोड़कर, मन को विशिष्ट विषयों पर एकाग्र करके, मंत्र का जप किया जाता है। धारणा यह है कि शरीर, मुख

---

[१] दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण' और 'काई-युआन-काल में संकलित शाक्यमुनि के उपदेशों की तालिका'

और मन के सामंजस्यपूर्ण संयोग से अपने वास्तविक मन को जानने और सब वस्तुओं के सच्चे स्वरूप को समझने में सहायता मिल सकती है।

चीन में इस संप्रदाय का प्रवर्तक पो श्रीमित्र माना जाता है, जो पश्चिमी त्सिन-वंश के शासन-काल में ३०७ और ३१२ ई० के मध्य हुआ और जो गुह्य-सिद्धान्तों के पथ-प्रदर्शकों में से था। उसने महामयूरी, विद्याराग्नि, महाभिषेकार्दिधारणी-सूत्र तथा अन्य धारणियों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। उसने अपने सिद्धान्तों का असली रहस्य अपने दो-एक विश्वासपात्र शिष्यों को छोड़कर सर्वसाधारण पर नहीं प्रकट किया। इस कारण चीन में इस संप्रदाय की प्रगति नहीं हुई।[1]

पो श्रीमित्र और अमोघवज्र के मध्य चार शताब्दियों में धारणी तथा तत्संबंधी साहित्य के बहुत-से ग्रन्थ चीन में प्रचलित हुए। उनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं:—

	ग्रन्थ	अनुवादक
१.	अनन्तमुख साधक-धारणी	चिह्-चिएन
२.	पुष्पकूट (?) सूत्र	चिह्-चिएन
३.	महामयूरी विद्याराज्ञी	कुमारजीव
४.	वज्रमंड-धारणी	ज्ञानगुप्त
५.	महातेजस-धारणी	ज्ञानगुप्त
६.	महाप्रज्ञा-पारमिता अपराजिता-धारणी	कुमारजीव
७.	अनन्तमुख साधक-धारणी	ज्ञानगुप्त
८.	सप्तबुद्धक-सूत्र	ज्ञानगुप्त
९.	द्वादश बुद्धक-सूत्र	ज्ञानगुप्त
१०.	मुनिरिद्धि मंत्र	धर्मरक्ष
११.	भद्रमायाचार रिद्धिमंत्र	धर्मरक्ष
१२.	पद्मचिन्तामणि धारणी-सूत्र	ई-त्सिग
१३.	महामयूरी विद्याराज्ञी-सूत्र	ई-त्सिग
१४.	सप्त तथागत पूर्व प्रणिधान विशेष विस्तार	ई-त्सिग*[2]

---

१ दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण' और '(चीनी भाषा में) अनूदित (संस्कृत) नामों के अर्थों का संग्रह'

२ दे० 'काई-चुआन-काल में (संकलित) शाक्यमुनि-उपदेश सूची'

गुह्य-संप्रदाय के दृष्टिकोण के अनुसार बौद्धधर्म के दो विशिष्ट पक्ष हैं—साधना-परक और सिद्धान्त-परक। साधना-परक पक्ष में योगाभ्यास और शक्ति की उपासना में अन्धविश्वास-युक्त क्रियाएँ की जाती हैं तथा सैद्धान्तिक-पक्ष मे देश-काल की किसी भी परिस्थिति से अविकृत सर्वव्यापी तत्त्व में विश्वास किया जाता है।

तांग-काल में गुह्य-संप्रदाय की स्थापना शुभाकर सिह और वज्रमति की सिद्धियों के कारण हुई और उसका विकास अमोघवज्र ने किया। शुभाकर सिंह चांग-आन में, ८० वर्ष की आयु में, ७१६ ई० में आया। उसने नालंदा-मठ में अनेक वर्ष तक रहकर धर्मगुप्त से शिक्षा प्राप्त की थी। उसके उपदेश का सार यह है कि संसार का कोना-कोना हमारी सिद्धियों में विघ्न डालने वाली प्रतिकूल शक्तियों, अधम भूत-प्रेतादि से परिपूर्ण है; किन्तु इनके लोक से ऊपर अधिक सामर्थ्ययुक्त ऐसी शक्तियों की सत्ता है, जो आवाहन किए जाने पर अपने भक्तों की रक्षा करती हैं, जिसके लिए भक्त को केवल उपयुक्त मंत्र चुनकर उसका जप करने की आवश्यकता होती है। वज्रमति ने इस संप्रदाय की दीक्षा लंका में नागार्जुन के प्रसिद्ध शिष्य नागार्जुन से प्राप्त की थी। ऐसा माना जाता है कि उसने गुह्य-संप्रदाय की स्थापना ७१९-७२० ई० में की थी और वह अमोघवज्र का गुरु था।

अमोघवज्र एक उत्तर भारतीय श्रमण था और वह चीन में केवल २१ वर्ष की आयु में अपने गुरु वज्रमति के साथ, जिनकी अवस्था उस समय ५८ वर्ष थी, ७१९ ई० में आया था। अपने गुरु की मृत्यु के अनन्तर उसने तंत्रयान के अध्ययन को अग्रसर किया। उसने अपने विषय में एक अनुलेख छोड़ा है, जो नीचे दिया जा रहा है:—

"अपने बचपन से ही मैंने अपने स्वर्गीय गुरु (वज्रमति) की सेवा चौदह वर्ष तक की और उनसे योग-दीक्षा प्राप्त की। उसके बाद मैंने भारतवर्ष के पांचो भागों की यात्रा की और ५०० से अधिक ऐसे ग्रन्थों का संग्रह किया, जो उस समय तक चीन में नहीं पहुँचे थे। ७४६ ई० में राजधानी लौट आया और तब से लेकर अब (७७१ई०) तक मैंने १२० खंडों में ७७ ग्रन्थों का भाषांतर किया है।"

अनुवाद-कार्य के अतिरिक्त उसने संस्कृत लिखने के लिए एक नई वर्णमाला तथा सर्व-मृतक-उत्सव (उल्लंबन ?) का समारंभ किया जो आज तक चीन में सर्वत्र लोकप्रिय है। वह चीनी बौद्ध रहस्यवाद का प्रमुख प्रतिनिधि है और उसने

तांग-वंश के सम्राट् हुआन-त्सुंग, जिसने उसको भारत लौट जाने के संकल्प से विमुख किया था; सम्राट् सु-त्सुंग और दाई-त्सुग, इन तीन अनुक्रमित सम्राटों का संरक्षण प्राप्त कर इस संप्रदाय का चीन में व्यापक रूप से प्रचार किया।

उसकी शिक्षाओं के विषय में हमें दुर्लभ और दुरूह गुह्य ग्रन्थों के लघु उद्धरणों से ही कुछ ज्ञान प्राप्त हाता है :—

"मनुष्य केलेके फलके समान नहीं है, जिसके भीतर कोई बीज ही नहीं होता। उसकी देह के भीतर अमर आत्मा का निवास है, जिसका मुख चीनी तांत्रिकों के अनुसार शिशुवत् होता है। मृत्यु के उपरान्त आत्मा परलोक जाती है, जहाँ उसके कर्मो पर विचार होता है। साधकों को प्रयारणा और दंड से मुक्ति का जो आश्वासन दिया जाता है, उसकी व्याख्या तांत्रिक इस प्रकार करते हैं कि यह न्याय की अवमानना नहीं है, वरन् किसी लोकोतर रक्षक द्वारा अपराधिनी आत्मा के निमित्त प्रार्थना का फल होता है। उस प्रार्थना से आत्मा को नरक की यातनाएँ भोगकर प्रायश्चित्त करने के स्थान पर शुभकर्मों द्वारा अपना निष्क्रय करने के लिए एक अवसर के रूप में नया जीवन मिल जाता है। इस संप्रदाय का यह भी विश्वास है कि प्रायश्चित्त से अधिक फलप्रद होने के कारण आभ्यन्तर न्यायकर्ता निष्क्रय को अधिक उत्तम मानते हैं और इसलिए तत्संबंधी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। यदि तंत्र का कोई भक्त अपनी मृत्यु के पूर्व किसी बुद्ध विशेष के लोक में जन्म पाने की प्रार्थना करता है, तो वह प्रार्थना स्वयं उसकी मानी जाती है और अंगीकार कर ली जाती है; किन्तु जिन पापियों और आस्थारहित व्यक्तियों ने अपने उद्धार के निमित्त कुछ भी नहीं किया है, उनकी मृत्यु के बाद उनकी पाप-क्षमा के लिए उनके मित्र और संबंधी या भिक्षु लोग प्रार्थना कर सकते हैं।.....मृत व्यक्तियों के उद्धार के संबंध में तंत्रानुयायी बहुत ही सजग होते हैं।[१]

वह चीनी बौद्धों में ही लोकप्रिय नहीं था, तांग-सम्राट् भी उसका आदर करता था। सम्राट् हुआन-त्सुंग ने उसे 'चिह-त्सांग' अथवा 'प्रज्ञा-निधान' की उपाधि दी। ७६५ ई० में उसने एक शासकीय पदवी के अतिरिक्त 'ता कुआंग चिह सान तांग' अथवा 'त्रिपिटक भदंत' की सम्मानीय उपाधि भी प्राप्त की। ७७४ ई० में उसके मरणोपरान्त उसको राज्य-मंत्री का पद और 'ता पिएन चिन क्वांग चिह शान त्सांग' अथवा 'महा वाग्मी विशुध् व्यापक प्रज्ञा' की मरणोत्तर

१ दे० विक्जर, उद्धृत, पृ० ५३७-३८

उपाधि प्रदान किया। साधारणतया वह पु-खोन अथवा अमोघ के नाम से विख्यात था।

गुह्य-संप्रदाय के सिद्धान्तों को चीनवासी कभी पूर्णरूप से स्वीकार नहीं कर पाए, लेकिन जापान में उसका प्रचार अवश्य हुआ और वहाँ उसका अस्तित्व अभी तक है। कोवो दाईशी नामक एक जापानी ने चीन आकर मंत्रों के रहस्य को प्राप्त किया और अपने देश में शिगोन नामक संप्रदाय की स्थापना की।

पिछले कुछ दशकों में उसकी स्थापना चीन में पूर्वी गुह्य-संप्रदाय के नाम से फिर हुई है और उसके थोड़े-से अनुयायी भी, विशेषकर दक्षिणी चीन में हैं। इसकी पश्चिमी शाखा चीन में 'तिब्बतीय गुह्य-संप्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे पद्मशाखा भी कहा जाता है। उसका यह दूसरा नाम आचार्य पद्मसंभव से संबंधित है।

(ट) तांग-काल में बौद्ध-विरोधी आन्दोलन

तांग-वंश का अस्तित्व ६१८ ई० से लेकर ९०७ ई० तक लगभग ३०० वर्ष रहा। किन्तु बौद्धधर्म के प्रति सभी सम्राटों और विद्वानों का रुख सदैव अनुकूल ही नहीं रहा। सामान्यतः तांग-शासक उसके प्रतिकूल नहीं थे और चीनी बौद्ध-धर्म के इतिहास में कुछ शीर्षस्थ नाम तांग-वंश के इतिहास से संबद्ध हैं; किन्तु इसके साथ ही राजदरबार चीन के अपने पुराने धर्म ताओवाद को भी प्रश्रय और आरक्षण प्रदान करता था। सम्राट् ताइ-त्सुंग के राज्यारोहण के उपरांत तांग-साम्राज्य की सीमा पश्चिमी एशिया तक पहुंच गई और वहाँ से नेस्टोरिअस-वाद, मैनिकीवाद, इस्लाम और ज़रथुश्त्रवाद आदि धर्मों का प्रवेश चीन में हुआ, यद्यपि इन में से कुछ अपनी जड़ वहाँ नहीं जमा पाए। वस्तुतः, उस समय जनता पर कनफ्यूशसवाद का प्रभाव सब से अधिक था। ताओवादियों ने विदेशों से आए हुए अनेक नए धर्मों के प्रवाह को देखा और अपने धर्म को अपनी जन्म-भूमि का ही मानकर वे उसके दृढ़ भक्त बने रहे। बौद्धधर्म भी विदेश से आया था, इस कारण वे उसके प्रति भी अनुकूल नहीं हो सके। इसके अतिरिक्त तांग-सम्राट् ली स्वयं ताओवाद के संस्थापक के वंश का था। इन कारणों से तांग-काल की तीन शताब्दियों में ताओवाद और बौद्धधर्म के मध्य संघर्ष चलता रहा।

हमें यह ज्ञात है कि सम्राट् काओ-त्सुंग के वू-ती-कालीन चतुर्थ वर्ष (६२१ ई०) में फ़ु-ई नामक एक ताओवादी सम्राटीय इतिहास-लेखक था। वह कनफ्यूशस मत का कट्टर अनुयायी और बौद्धधर्म का शत्रु था। उसने ६२८ ई०

में सम्राट् की सेवा में एक आवेदन-पत्र भेजा, जिसमें बौद्ध मठवाद के विरुद्ध कनफ्यूशसीय प्रत्यक्षवाद की आपत्तियों का वर्णन था :—

"बुद्ध का यह धर्म अत्युक्तियों और अनर्गल बातों से भरा हुआ है। राजा के प्रति प्रजा की और माता-पिता के प्रति पुत्र की भक्ति के कर्त्तव्यों को यह धर्म नहीं मानता। इस धर्म के अनुयायी अपना समय मौज करके बिताया करते हैं; वे कोई काम-धाम नहीं करते। वे हम से भिन्न परिधान, केवल राज्याधिकारियों को प्रभावित करने और अपने को पूर्णरूप से चिन्ता-मुक्त कर लेने के लिए ही, धारण करते हैं। अपनी मिथ्या कल्पनाओं द्वारा वे भोली-भाली जनता को एक मोहक निःश्रेयस के पीछे भटकने के लिए प्रेरित कर देते हैं और उनको हमारे राज्य के नियमों तथा हमारे पुरातन महात्माओं के प्रति तिरस्कार की भावना से भर देते हैं।"

स्पष्ट ही, यहाँ पंडित फ़ु-ई के प्रत्यक्षवाद के साथ श्रमण-जीवन के प्रति एक पुराने सैनिक का स्वाभाविक आक्रोश संयुक्त हो गया है। यही नहीं, फ़ु-ई ने स्वयं ली-युआन और ली शिह्-मिन को संबोधित कर के शान्तिवाद और अविवाहित जीवन के लिए बौद्धों की भर्त्सना की :—

"आज-कल इस सम्प्रदाय के अनुयायी भिक्षुओं की संख्या एक लाख से अधिक है, और लगभग इतनी ही भिक्षुणियां होंगी। यह लोग अविवाहित रहते हैं। उनको एक दूसरे से विवाह करने के लिए बाध्य करना राज्य के लिए हितावह सिद्ध होगा। उन से एक लाख परिवार बनेंगे, जिनसे आगे आने वाले युद्धों के लिए आवश्यक सेना में भरती होने वाली प्रजा की संख्या में अभिवृद्धि हो सकेगी। अभी तो यह लोग आलस्य में अपना जीवन बिताते हैं, समाज की कमाई पर जीते हैं और उस पर भारस्वरूप हैं। हमें उनको उसी समाज का सदस्य बनाकर सामाजिक कल्याण में योग देने के लिए विवश करना चाहिए, जिससे वे राज्य को उन बाहुओं से वंचित न कर सकें, जिनका कर्त्तव्य उसकी रक्षा करना है।"[1]

यह विचित्र क्षात्र श्रमण-विरोध तांगों की नीति के अनुरूप था। सम्राटीय इतिहासकार का आवेदन-पत्र पाने के बाद शीघ्र ही ली-युआन ने साम्राज्य-भर के मठों और संप्रदायों की जनगणना करने का आदेश दिया। तदनन्तर उसने सर्वव्यापी ऐहिकीकरण की आज्ञा निकाली, अपनी राजधानी में केवल तीन तथा

---

१ दे० रेने ग्राउजेट कृत 'इन द फ़ुट-स्टेप्स ऑफ़ द बुद्ध'

अन्य बड़े नगरों में केवल एक ही मठ रहने की अनुमति दी और मठों को जारी किए गए अनुज्ञापत्र अधिकारियों के कठोर निरीक्षण में रख दिए गए।

राज्यारोहण के उपरान्त ताई-त्सुंग ने भी अपने पिता की नीति जारी रक्खी। जैसे, ६३१ ई० में, अपने एतद् विषयक मंत्री फ़ु-ई की प्रेरणा से उसने एक राजाज्ञा निकाल कर भिक्षुओं को पितृभक्ति के कनफ्यूशसी कृत्यों को संपन्न करने के लिए बाध्य किया।

तांग-वंश के युआन हो-कालीन १४ वें वर्ष (८१९ ई०) में सम्राट् हिएन-त्सुंग ने, जो स्वयं भी एक उत्साही बौद्ध था, एक विख्यात प्राचीन अवशेष—बुद्ध की अंगुलि-अस्थि—को फ़ेंग-सिआंग फ़ु के धर्म पर्याय मठ से चांग-आन लाने का विचार किया, जहाँ उसे तीन दिन तक राजमहल में रखने के उपरान्त राजधानी के विविध मन्दिरों में प्रदर्शित करने की योजना थी। यही वह अवसर था, जिस पर हान-यु ने सम्राट् को संबोधित कर के बौद्धधर्म के विरोध में अपना सुप्रसिद्ध आवेदन-पत्र लिखा था। बहुत लम्बा होने के कारण उसको संपूर्ण उद्धृत करना उचित नहीं होगा, किन्तु प्रशासकीय इतिहास में समाविष्ट उसके संक्षिप्तरूप से उसके विषय में पर्याप्त परिचय मिल जाता है :—

"बुद्ध पश्चिमी देशों का एक देवता है। यदि महाराज उसका सम्मान और पूजन करते है, तो केवल दीर्घायुष्य और शांतिमय तथा सुखी शासन-काल पाने के उद्देश्य से। पुरातन-काल में हुआंग-ति, यू, विजेता तांग, और वेन तथा वू आदि सभी राजाओं ने दीर्घायु पाई और उनकी प्रजा ने अविच्छिन्न शान्ति का उपयोग किया, यद्यपि उस समय बुद्ध नहीं था। हानवंशीय सम्राट् मिंग-ती के समय में ही साम्राज्य में इस सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ और तब से युद्धों तथा बिप्लवों का तांता लगा रहा है, जिससे अपार क्षति हुई और सम्राटीय वंश का विध्वंश हो गया। षट्-वंशों के राज्यकाल से ही इस सम्प्रदाय का प्रसार हुआ है, और वह समय हमारे अपने समय से अभी बहुत दूर नहीं गया है।

"इन सभी वंशों के सम्राटों में केवल एक लिआंग वू-ती ने ४८ वर्ष राज्य किया, और उसने बुद्ध से सुख तथा शान्ति पाने के लिए क्या-क्या नहीं कर डाला? मठ में दास बन जाने के लिए अपने को उसने तीन बार बेचा, लेकिन इसका पुरस्कार उसे क्या मिला?"[1]

---

१ यह कथन इस तथ्य का निर्देश करता है कि लिआंग वू-ती तीन बार संसार त्याग कर भिक्षु बना, किन्तु प्रत्येक बार अनुनय करने पर उसने सिंहासन

"हाउ-चिंग द्वारा घेर लिए जाने पर भूख द्वारा गर्हित मृत्यु। इस पर भी वह सदा यही कहा करता था कि एक सम्राट् के लिए नितांत गर्हित कार्यों को केवल मैं बुद्ध से सुख पाने की आशा से ही किया करता हूँ। लेकिन उस सब के पुरस्कार-स्वरूप उसे अधिकाधिक कष्ट ही मिला। क्योंकि बुद्ध तो पश्चिमी देशों का एक असभ्य जातीय व्यक्ति-मात्र था, जो न राजा और प्रजा को एक सूत्र में बांधनेवाली राजभक्ति को मानता था और न पिता के प्रति पुत्र की आज्ञाकारीता के ऋण को।[1] यदि इस समय जीवित होता और आपकी राजसभा में आता, तो श्रीमान् भले ही उसको हुआन-च्येंग भवन में एक बार दर्शन दे देते, लि-पि कार्यालय के किसी प्रीतिभोज में भी आमंत्रित कर लेते, उस को उपहार दे देते; किंतु उसको जनता के अल्पतम संपर्क में आने का अवसर दिए बिना ही आरक्षकों के साथ साम्राज्य के सीमांत तक भेज देते।

"यह आदमी, बुद्ध, न जाने कब मरकर सड़ गया, और अब श्रीमान् को एक सूखी हड्डी, जो उसकी उँगली बतायी जाती है, अर्पित की जा रही है और उसका प्रवेश राजभवन में होने वाला है; परन्तु मैं श्रीमान् से यह अनुरोध करने का साहस करता हूँ कि ऐसा करने की अपेक्षा यह हड्डी मैजिस्ट्रेटों को दे दी जाए, जिससे जल या अग्नि द्वारा वह, नष्ट की जा सके और यह घातक सम्प्रदाय जड़-मूल से नष्ट हो जाए। और, यदि बुद्ध वैसा ही है, जैसा उसके लिए दावा किया जाता है और यदि मनुष्यों को सुखी या दुखी बनाने की शक्ति उसमें है, तब तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा करने से आपत्तियों का जो पहाड़ टूटे, वह मेरे ही सिर पर गिरे, क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि उस व्यक्ति में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है।"

इस आवेदन-पत्र के कारण हान-यु को निर्वासित करके दक्षिण चीन में सुदूर चाओ-चाउ को भेज दिया गया। वहाँ उसने अपने सारे विचार बदल दिए और अपना अधिकांश समय प्रसिद्ध भिक्षु ता-तिएन के साथ व्यतीत करता रहा। एक

को पुनः स्वीकार किया, और उसको वापस जाने देने के उपलक्ष्य में मठ को निष्क्रय के रूप में विशाल धनराशि दी गई। हाउ-चिंग विद्रोही था, जिसने नानकिंग पर अधिकार करके लिआंग-वंश का अन्त कर दिया था।

१ गौतम अपने प्राप्य राज्य को त्यागकर पिता के घर से छिपकर निकल गए थे। कनफ्यूशसीय दृष्टिकोण से उन्होंने मनुष्य के दो प्रधान कर्तव्यों का व्याघात किया।

बार तिएन-ताई के समीप वह यह प्रार्थना लेकर उपस्थित हुआ—"आपका शिष्य युद्ध और शासन-संबंधी विषयों से बहुत उद्विग्न है, क्या आप बुद्ध की शिक्षा को उसके लिए एक लघु-सूत्र में समाविष्ट कर देने की कृपा करेंगे ?"......... ता-तिएन काफ़ी देर तक चुप बैठा रहा, जिससे हान-यु किंचित् संदेह में पड़ गया। तब भिक्षु सान-पिंग ने, जो उस समय अपने गुरु के साथ था, बिस्तर पर तीन बार आघात किया। ता-तिएन ने पूछा—"यह क्या कर रहे हो ?" उत्तर में सान-पिंग ने महापरिनिर्वाण-सूत्र का एक उद्धरण सुनाया—" पहले (वासनात्मक प्रकृति की पृष्ठभूमि में मन को) निश्चल करो, और तब प्रज्ञा द्वारा अपने को मुक्त करो।" हान-यु ने कहा—"आपके उपदेश एक उच्च तोरण के समान हैं। आपके अनुगामी को और मुझे प्रवेश का मार्ग मिल गया। "

तब क्षणिक्वाद का अर्थ हान-यु की समझ में आया। मेंग शान-ह्न को उसने एक पत्र में लिखा—" जब मैं क्वांग-तुंग प्रांत के चाओ-चाउ स्थान में था, तब वहाँ ता-तिएन नामक एक वृद्ध ध्यानाचार्य भी थे, जो अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और दार्शनिक मिद्धान्तों के ज्ञाता थे।........वस्तुतः उनमें शरीर की सीमा का अतिक्रमण करने की शक्ति थी। और इस कारण वे अपने को भौतिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न भ्रम में पड़ने से बचाए रखकर विवेक की सहायता से आत्म-विजय करने में समर्थ हुए थे। जब मैं उनसे विचार-विनिमय करता था, तब वे पूर्णतया समझ तो नहीं पाते थे, लेकिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके भीतर (उनकी प्रज्ञा को विकृत कर सकने वाला) कोई व्यवधान नहीं था।" उसने भिक्षु हिएन को भी एक पत्र उसी ध्वनि में लिखा—" भिक्षु तिएन वह हैं, जिन्होंने जीवन और मृत्यु को एक ही स्तर पर उतार लिया है और अपने को वाह्य पाशों से विमुक्त कर लिया है। इस प्रकार का हो जाने पर अवश्य ही उनका मन निश्चल हो गया होगा, जिससे कोई भी वस्तु उसे उत्तेजित नहीं कर पाती और वह जगत् के प्रति उदासीन होगए होंगे, जिससे संसार के किसी भी पदार्थ का आस्वादन लेने की उनको इच्छा नहीं होती।"[1]

जब निर्वासन के उपरान्त हान-यु राजदरबार लौटा तो सम्राट् मु-त्सुंग ने उसको एक उच्च पद पर नियुक्त किया। उस समय भी लोगों को उसका आवेदन-

---

१ विदेशों और अधीन देशों से आए हुए अतिथियों और राजदूतों के स्वागत के उपयोग में आने वाला भवन। तांग-काल में परराष्ट्र-मंत्री का पद नहीं होता था।

पत्र नहीं भूला था। उसको युद्ध-मंत्री-नियंत्रक का पद मिला, जिससे सारी सेना पर उसकी सत्ता स्थापित हो गई। इसके फलस्वरूप सैनिकों के व्यवहार में तत्काल ही उन्नति हुई और लोग कहने लगे कि जो व्यक्ति बुद्ध की उंगली जला देने के लिए तैयार था, वह मामूली सिपाहियों को फाँसी पर लटका देने में क्या सोच-विचार करेगा।[1]

हान-यु के समकालीन ली-आओ का नाम भी उल्लेखनीय है। कुछ लोग उसको हान-यु का शिष्य मानते हैं। उसने अपने सिद्धान्तों का सर्वोत्तम निरूपण अपनी कृति फ़ु हिंग शु अथवा 'प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन की पुस्तक' में किया है, जिसमें बौद्ध-प्रभाव की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उसकी धारणा थी कि भावनाएँ हानिकर होती हैं; वे प्रकृति को विकृत कर के उसकी शान्ति को नष्ट कर देती हैं। अतः "प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन" का अर्थ उस शान्ति और ज्ञान की ओर लौटना है, जो प्रकृति के मूल स्वरूप में सन्निहित हैं। ली-आओ के सिद्धांतों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह तिएन-ताई संप्रदाय के निरोध और ध्यान के सिद्धांतों से प्रभावित था। उदाहरणार्थ, उसने अपने दूसरे ग्रन्थ चिह कुआन तुंग लि अथवा 'निरोध और ध्यान के सामान्य सिद्धांत' में लिखा है :—

"निरोध और ध्यान का क्या अर्थ है? उनका कार्य नानात्मक अनित्यता के प्रपंच का इस प्रकार पथ-प्रदर्शन करना है कि वे परमतत्त्व में फिर आ मिलें। यह परमतत्त्व क्या है? वह प्रकृति का मूल स्वरूप है। वस्तुएँ जड़त्व या तमस और गति के कारण अपने मूलस्वरूप को नहीं प्राप्त कर पातीं। इस तमस को ज्योतित कर देना ज्ञान का कार्य है, और इस गति का स्थिरीकरण शान्ति है। यह ज्ञान और शान्ति क्रमशः निरोध और ध्यान के द्रव्य हैं। हेत्वात्मक निमित्त के रूप में वे निरोध और ध्यान कहलाते हैं। अन्तिम फलों के रूप में वे ही प्रज्ञा और समाधि हैं।"

यहाँ प्रयुक्त शब्दावली और प्रकाश तथा तमस, शान्ति और गति की संगति, सामान्य रूप से लि-आओ के ग्रन्थ के संकेत-मात्र हैं। आत्म-संस्कार, परिवार के मध्य, सामंजस्यपूर्ण संबंधों, देश के सुशासन और विश्वशान्ति पर बल देने के कारण वह वस्तुतः सच्चा कनफ्यूशिअसवादी ही है। सुंग और मिंग युगों के उत्तरकालीन बुद्धिवादियों के समान वह भी लोगों को कनफ्यूशस सदृश बुद्ध-पद की ओर ले जाना चाहता था, जिसकी प्राप्ति उसके अनुसार सामान्य मानव-

---

१ दे० 'तांग-वंश की पुस्तक'

जीवन और सामाजिक संबंधों की सीमा के भीतर ही आत्म-परिष्कार द्वारा हो सकती है ; अतः उसके विषय में सत्य यह है, जैसा उत्तरकालीन बुद्धिवादियों के संबंध में भी है, कि वह अन्ततः बौद्धधर्म के विरुद्ध ही था।

तदुपरान्त तांग-सम्राट् वु-त्सुंग ने बौद्धधर्म को उन्मूलित करने की राजाज्ञा जारी की। उसने अपने राज्य के प्रथम वर्ष में ताओवादी चाओ कुआई-चिन तथा ८१ अन्य व्यक्तियों को राजमहल में बुलाकर कानून का एक ताओवादी विधान तैयार करवाया। वर्तमान हुनान प्रांत के हेंग पर्वत का निवासी एक अन्य ताओवादी लिउ युन-चेन सम्राट् का कृपा-पात्र था। उसको सम्राट् ने त्सुंग हुआन भवन का अध्यक्ष नियुक्त किया। वह चाओ कुआई चिन के साथ ताओवाद पर शोध और योगाभ्यास करने के लिए राजमहल में रहा करता था। तत्कालीन प्रधान मंत्री ली ते-यु भी ताओवाद के प्रचार और बौद्ध-विरोधी आन्दोलन में उनकी सहायता किया करता था। उदाहरणार्थ, राजदरबार से चांग-आन और लो-यांग आदि में केवल चार बौद्ध मन्दिरों को और हर जिले में केवल एक मन्दिर छोड़कर शेष सब को यथासंभव शीघ्र नष्ट कर देने का आदेश जारी किया गया। बड़े मंदिरों में बीस, मध्यम और लघु मन्दिरों में क्रमशः दस और पाँच भिक्षुओं को छोड़कर शेष सब को अपने-अपने घर लौट जाने के लिए विवश किया गया। गिराए हुए मन्दिरों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग सरकारी दफ्तरों के निर्माण में करने की आज्ञा हुई। मन्दिरों की संपत्ति अर्थविभाग के अधिकार में चली गई। लौह मूर्तियों को गलाकर खेती के औज़ार बनाए गए और तांबे की मूर्तियाँ सिक्के बनाने के काम आईं।[1]

कहा जाता है कि सम्राट् वू-त्सुंग के बौद्ध-विरोधी राजादेशों के फलस्वरूप चालीस हजार से अधिक मन्दिर गिरा दिए गए, मन्दिरों की भूमि जब्त कर ली गई और ढाई लाख से अधिक भिक्षु-भिक्षुणियों को ऐहिक जीवन में फिर प्रवेश करना पड़ा। इन संख्याओं में संभवतः अतिशयोक्ति है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस समय बौद्धधर्म स्वयं ही मन्दगति से अवनति करने लगा था, उसको एक तीव्र आघात और मिला। वू-त्सुंग की मृत्यु उसके राज्यारोहण के उन्नीसवें वर्ष में हुई। तदुपरान्त उसका पुत्र हुआन-त्सुंग सिंहासन पर बैठा और उसने बौद्ध-विरोधी राज्यादेशों को वापस लेने का यत्न किया। उस समय राजधानी में अयोग्यता और भोग-विलास की प्रबलता और प्रान्तों में कुप्रबन्ध के कारण चारों ओर असंतोष

---

१ दे० 'तांग-वंश की पुस्तक'

और विद्रोह की लहर फैल रही थी। हुआन-त्सुंग का उत्तराधिकारी ई-त्सुंग बौद्ध-धर्म के कुछ अनुकूल था। कम-से-कम उसने मंत्रियों के विरोध के बावजूद बुद्ध के स्मारकों के प्रति अपने पूर्ववर्ती शासक की अपेक्षा अधिक आदर-भाव प्रदर्शित किया। उसके बाद ह्री-त्सुंग और चाओ-त्सुंग से लेकर चाओ-हुआन-ती तक इस वंश का अस्तित्व रहा। इन में से अन्तिम सम्राट् की हत्या चू-वेन नामक सेना के एक अफ़सर ने कर डाली और उसके स्थान पर उसने एक लड़के को बिठाया। ९०७ ई० में चू-वेन ने इस कठपुतले शासक को अपने पक्ष में राज्य-त्याग करने के लिए विवश किया और स्वयं को उत्तर-कालीन लिआंग नामक वंश का प्रथम सम्राट् घोषित किया। उस समय बौद्ध-भिक्षुओं की संख्या बहुत कम हो गई थी और विद्वान भिक्षुओं के अभाव में एक अर्धशती तक बौद्धधर्म अपकर्ष की स्थिति में रहा।[1]

---

१ दे० 'पंच राजवंशों का इतिहास'

अध्याय ९

सुङ्-काल में बौद्धधर्म

(क) बौद्धधर्म के अनुकूल सम्राट्

तांग-वंश के पतन के उपरान्त ९०७ ई० से लेकर ९६० ई० तक चीन आन्तरिक फूट और गृहयुद्ध से ग्रस्त रहा। साम्राज्य बहुत-से छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया, जिस में से कुछ विदेशीय शासकों के अधीन थे। चीन के इतिहास में यह अवधि उत्तर चीन के प्रान्तों पर राज्य करने वाले पाँच वंशों के आधार पर "पंच-वंशीय" काल के नाम से प्रसिद्ध है। यह पाँच वंश निम्नलिखित थे :—

१. उत्तर लिआंग (९०७-९२३ ई०)
२. उत्तर तांग (९२३-९३६ ई०)
३. उत्तर त्सिन (९३६-९४७ ई०)
४. उत्तर हान (९४७-९५१ ई०)
५. उत्तर चाउ (९५१-९६० ई०)

इन अल्पजीवी वंशों के राजा लोग प्रायः बर्बर जाति के और दुस्साहसी सैनिक वृत्ति के थे और ह्वांग-त्साओ के विद्रोह के उपरान्त अराजकता के दौरान में शक्तिशाली हो गए थे। इस काल में बौद्धधर्म अवनत दशा में रहा ; किन्तु आगे आने वाले सुंग-वंश के राज्यकाल में फिर लहलहा उठा।

अराजकता के इस प्रवाह का अन्त चाओ-कुआंग-यिन नामक व्यक्ति ने किया, जो भावी पीढ़ियों में ताई-त्सु के नाम से विख्यात हुआ, उसका वंश सुंगवंश कहलाया। उसके व्यक्तित्व में युद्ध-कौशल, उदारता और राजनीति-पटुता का सुन्दर समन्वय था। अपनी मृत्यु के पूर्व तक उसने अपने कुछ अधीनस्थ व्यक्तियों की सहायता से कई ऐसे राज्यों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, जिसमें पंच-वंशीय काल में चीन विभक्त हो गया था। ताई-त्सु ने कनफ्यूशिअनवाद को ही आश्रय नहीं दिया, बौद्धधर्म को भी संरक्षण प्रदान किया।

ताई-त्सु ने अपने शासन के चिएन-लुंग-कालीन प्रथम वर्ष (९६० ई०) में बौद्ध-मठों के आरक्षण के निमित्त एक राजादेश निकाला। इसके अतिरिक्त

वह लोगों से त्रिपिटकों को सोने और चाँदी में लिखने के लिए भी कहा करता था।[१]

अपने राज्य के काई-पाओ-कालीन चतुर्थ वर्ष में उसने अपने परिचर चांग-त्सुंग-हिन को त्रिपिटकों के चीनी अनुवाद के मुद्रण की व्यवस्था करने के लिए ई-चौ भेजा, जिसका प्रकाशन सम्राट् ताई-त्सुंग के ताई पिंग हिन कुओ-कालीन अष्टम वर्ष (९८३ ई०) में हुआ। सम्राट् की प्रस्तावना-युक्त चीनी त्रिपिटक का यह प्रथम मुद्रित संस्करण है।[२]

सम्राट् ताउ-त्सू ने चीन पर ९६० ई० से ९७५ ई० तक शासन किया। उस अवधि में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए बहुत-से भारतीय भिक्षु चीन आए, जिनमें मंजुश्री प्रसिद्ध है। मंजुश्री मध्यभारत के राजा का पुत्र था। भारत से प्रस्थान करके चिएन-शेन नामक एक चीनी भिक्षु के साथ वह ९७१ ई० में चीन पहुंचा। सम्राट् ताई-त्सु ने उससे हिआंग-कुओ-मठ में रहने के लिए अनुरोध किया। वह विनय का पालन दृढता से करता था। इसलिए वह शीघ्र ही राजधानी का लोकप्रिय बौद्धउपदेष्टा बन गया और धन तथा उपहारों की वृष्टि उस पर होने लगी। ९७८ ई० में वह चीन से लौट गया। भारत से चीन आने वाले अन्य भिक्षु चिह, फ़ा-चिएन और चिन-ली आदि थे।[३]

सुंग-सम्राट् ताई-त्सुंग के शासन-काल (९७६-९९७) में भी भारतवर्ष से दानपाल, धर्मदेव, तिएन सी त्साई आदि बहुत-से भिक्षु चीन आए और वे चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

दानपाल उज्जैन का श्रमण था और वह ९८० ई० में चीन आया। सम्राट् ने ९८२ ई० में उसे हिएन चाओ ता शिह अथवा 'सामान्य धर्म महागुरु' की पदवी देकर समादृत किया। उसने कुल मिलाकर १११ ग्रन्थों का अनुवाद किया, जिनमें से अधिकांश धारणियाँ हैं। उसने नागार्जुन के भी कुछ ग्रन्थों का चीनी रूपांतर किया। नागार्जुन में चीनी बौद्धों की अभिरुचि कई शताब्दियों के उपरान्त फिर जग उठना एक रोचक घटना है।

नागार्जुन के निम्नलिखित ग्रन्थों का अनुवाद हुआ :—

१. महाप्रणिधानोत्पाद-गाथा
२. महायान-गाथा-विशति-शास्त्र

१, २ दे० 'सुंग-वंश का इतिहास'

३ दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण'

३. महायान-भवभेद-शास्त्र
४. बुद्धमातृका-प्रज्ञापारमिता-महार्थ-संगीति-शास्त्र
५. लक्षण-विमुक्ति-बोधि-हृदय-शास्त्र
६. गाथाषष्ठी-यथार्थ-शास्त्र[1]

धर्मदेव, अथवा चीनी भाषा में फ़ा-तिएन, मगध के नालंदा विश्वविद्यालय का भिक्षु था, जिसने ९७२ से १००१ ई० तक बहुत-से ग्रन्थों का अनुवाद किया। ९८२ ई० में उसने सम्राट् ताई-त्सुंग से चुआन चाओ ता शिह् अथवा 'बुद्धधर्म प्रचारक महा गुरु' की उपाधि प्राप्त की। उसी वर्ष उसने अपना नाम फ़ा-तिएन से बदलकर फ़ा-हिएन रक्खा, जिससे उसके अनुवादों के समय का निश्चय इन दो नामों के अनुसार हो सके, क्योंकि उनमें दोनों ही नामों से किए गए हैं। उसकी मृत्यु सम्राट् चिन-त्सुंग के हिएन पिंग-कालीन चतुर्थ वर्ष (१००१ ई०) में हुई। उसकी मरणोत्तर पदवी हुआन चिआओ चान शिह् अथवा 'गंभीर जागरूकता-मय ध्यानाचार्य' है। चीनी त्रिपिटकों के संग्रहों में ११८ ग्रन्थ उसके द्वारा लिखित माने गए हैं, जिनमें से ४६ प्रथम काल में फ़ा-तिएन नाम द्वारा और शेष फ़ा-हिएन नाम से। उसके अनुवादों में से कुछ कविताओं और धारणियों का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है।[2] चीनी ध्वनिविज्ञान में रुचि रखने वाले भाषा विज्ञानियों के लिए वे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं :—

१. अष्टमहाश्री चैत्य नाम-सूत्र
२. त्रिकाय संस्कृत-स्रोत
३. मंजुश्री नामाष्टशतक संस्कृत-स्तोत्र
४. मंजुश्री बोधिसत्त्व श्री गाथा
५. आर्य वज्रपाणि बोधिसत्त्व नामाष्टक
६. सप्तबुद्ध स्तोत्री गाथा
७. बुद्ध त्रिकाय-स्तोत्र

तिएन सी त्साई गांधार का निवासी था, जिसके भारतीय नाम का पता नहीं लग सका है। वह ९८० ई० में चीन आया और उसकी मृत्यु १००० ई० में हुई। ९८२ ई० में उसने सम्राट् ताई-त्सुंग से 'बुद्धधर्म प्रकाशक महागुरु' की पदवी प्राप्त

---

१ दे० 'सूत्रों (आदि) के प्राचीन और नवीन अनुवादों के (घटना) चित्र का अभिलेख'

२ दे० वही

की और उसकी मरणोत्तर पदवी हुई-पिएन-फा-शिह् अथवा 'प्रज्ञा तर्क धर्माचार्य-' है।[१] त्रिपिटकों में उसे १८ ग्रन्थों का लेखक माना गया है। उनमें से कई ग्रन्थ धार्मिक और विशेष महत्त्वपूर्ण होने के कारण उल्लेखनीय हैं। मंजुश्री-मूल-तंत्र चीनी भाषा में अनूदित तंत्र-ग्रन्थों में महत्त्वपूर्णतम ग्रन्थों में से है। इसका तिब्बती रूपान्तर उपलब्ध है और अभी हाल में ही मूल संस्कृत-ग्रन्थ को टी० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम-संस्कृत-सीरीज में प्रकाशित किया है। दूसरा ग्रन्थ धर्मपद-उदानवर्ग है। यह धर्मपद के तीन उपलब्ध पाठभेदों के अतिरिक्त चौथा पाठभेद है।

वह अपना कार्य धर्मदेव और दंडपाल के सहयोग से सम्राट् ताई-त्सुंग द्वारा स्थापित सम्राटीय-अनुवाद-शाला में करता था। अनुवाद-शाला चांग आन के ताई-पिंग हिन कुओ मंदिर के पश्चिम में स्थित थी। इसके पूर्व की ओर एक दूसरी सम्राटीय मुद्रण-शाला थी। अनुवाद-शाला में तीन कक्ष थे। मध्य कक्ष में ग्रन्थों का अनुवाद होता था, पूर्व कक्ष में अनुवादों का निरीक्षण और पश्चिम कक्ष में चीनीभाषा-शैली को ठीक और मुहाविरेदार बनाने के लिए संशोधन किया जाता था। संस्कृत भाषा में दक्ष चीनी भिक्षु उनकी सहायता के लिए नियुक्त थे, जैसे—फ़ा-चिन, चांग-चेन और चिंग शाओ इत्यादि।

उस समय सारे अनुवाद प्रकाशन के लिए सम्राटीय मुद्रण-शाला को भेजे जाते थे। तिएन ही ताई की प्रार्थना पर सम्राट् ताई-त्सुंग ने सम्राटीय मुद्रण-शाला में प्रविष्ट होकर संस्कृत पढ़ने के निमित्त दस मेधावी बालकों को एकत्र करने के लिए एक राजाज्ञा निकाली। इन दस विद्यार्थियों में वाई-चेन का नाम उल्लेखनीय है। उसने १००९ ई० में मुद्रण-शाला में प्रवेश किया और सम्राट् से कुआंग फ़ान ता शिह् अथवा 'प्रभास ब्रह्म का महागुरु' की पदवी प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने प्रधानतया फ़ा-यू और सूर्ययशस् नामक दो भारतीय भिक्षुओं के साथ कार्य किया। चीनी त्रिपिटकों के अंतर्गत निम्नलिखित चार ग्रन्थों की संपूर्ण या आंशिक रचना का श्रेय उसे दिया जाता है :—

१. बुद्ध भाषित सहर्षित रोमकूपगत-सूत्र
२. रत्नमेध-सूत्र
३. सागरमति बोधिसत्त्व परिपृच्छा
४. महायान मध्यध्यान व्याख्या-शास्त्र

---

१ दे० 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण'

सम्राट् चिन-त्सुंग के शासन-काल में भारत से धर्मरक्ष और सूर्ययशस नामक भिक्षु चीन आए। धर्मरक्ष मगध का निवासी था और चीन में चेन-ती-काल के प्रथम वर्ष (१००४ ई०) में आया। वह चिआ-यू-काल के तृतीय वर्ष (१०५६ ई०) में ९६ वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु के समय तक अनुवाद-कार्य करता रहा। चिआ-यू-काल के तृतीय वर्ष में सम्राट् जेन-त्सुंग ने उसे 'पू मिंग त्ज़ी चिआओ चुआन फ़ा ता शिह' अथवा 'व्यापक प्रकाश, करुणामय जागरण और धर्मोपदेश का महागुरु' की विशेष पदवी से अलंकृत किया। धर्मरक्ष अथवा फ़ा-हू के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के कई अनुवाद उपलब्ध हैं, जैसे—बोधिसत्व पिटक (४० खंड) तथागत चित्य गुह्य-निर्देश (२० खंड), और हेवाग्र तंत्र (२० परिच्छेदों में ५ खंड) इत्यादि।[1]

हुआन फ़ान ता शिह अथवा 'धर्मोपदेशक महागुरु' पदवी प्राप्त भारतीय भिक्षु सूर्ययशस धर्मरक्ष का समकालीन था। उसने दो संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद किया, जो अश्वघोष कृत माने जाते हैं। उनमें से एक गुरुसेवापंचशतगाथा और दूसरा दश दुष्ट कर्ममार्ग-सूत्र है। उसके अतिरिक्त चिह चि-हि्आंग और त्ज़ी-हि्एन दो भिक्षु और थे, जो सम्राट् जेनत्सुग के समय में चीन आए थे। चिह चि-हि्आंग १०५३ ई० में चीन आया। महाबल श्रेष्ठी परिपृच्छा-सूत्र और तथागत ज्ञानमुद्रा-सूत्र नामक दो ग्रन्थ उसके द्वारा प्रणीत माने जाते हैं।

मगधवासी भिक्षु त्ज़ी-हि्एन को चि-तान-नरेश (लिआओ-वंश का प्राचीन नाम चि-तान था। नया नामकरण १०६६ ई० से हुआ) का गुरु होने के कारण कुओ-शिह अथवा राष्ट्र-गुरु कहा जाता है। उसके लिखे पाँच ग्रन्थ माने जाते हैं। हुई-त्सुंग के शासन-काल में चीन आए एक अन्य भिक्षु का नाम सुवर्णधारणी था। अर्थविनिश्चय धर्मपर्याय तथा मंजुश्री-नाम-संगीति नामक दो ग्रन्थ उसके रचित माने जाते हैं।

सम्राट् हुई-त्सुंग के समय में ऐसा प्रतीत होता है कि एक बौद्धविरोधी लघु आन्दोलन फिर चला। स्वयं सम्राट् भी बौद्धमत की अपेक्षा ताओवाद के पक्ष में अधिक था। किंतु वह हू-चिह-चांग, हू शाउ-हिन, लिऊ हुंग-कांग, और लिन लिंग-सू आदि बौद्ध तथा ताओ दोनों धर्मों के विद्वानों का आदर करता था। वह अपने को ताओ धर्म का संस्थापक सम्राट् कहता था और उसने चाओ-

---

१ दे० 'सूत्रों (इत्यादि) के प्राचीन और नवीन अनुवादों के (घटना) चित्र का अभिलेख।'

यांग में एक ताओ-भवन का निर्माण कराया, जिसमें लाओ-त्ज़े का चित्र स्थापित था। उसने बुद्ध का नाम 'महाजागरण स्वर्ण महात्मा' रखने तथा समस्त बौद्ध भिक्षुओं को मठों से निकल जाने की आज्ञा जारी की। ताओवादी पुरोहितों ने उनका स्थान लिया। युंग-ताओ नामक एक बौद्धभिक्षु ने सम्राटीय आज्ञा के विरुद्ध लिखा। उसको ताओ-चाउ में निर्वासित कर दिया गया। अगले वर्ष सम्राट् ने अपना विचार बदल दिया और बौद्धधर्म को पुनः स्थापित करने की इच्छा की। उसने युग ताओ को राजधानी में फिर लौटने का आदेश दिया और उसको फ़ा-ताओ अथवा 'धर्म-पथ' की पदवी देकर सम्मानित किया। यह बौद्ध-विरोधी आन्दोलन केवल एक वर्ष चला[1]।

(ख) बौद्ध-संप्रदायों की एकत्वपरक प्रवृत्ति

इस काल के बौद्धधर्म के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी और वह थी, तिएन-ताई संप्रदाय की पुनःस्थापना। इस संप्रदाय के संस्थापक चिह्-ई के प्रसिद्ध शिष्य ही-ची की मृत्यु होने पर उसकी अवनति शीघ्र ही हुई और चिह्-ई के लिखे तीनों प्रधान ग्रन्थ भी नष्ट हो गए। भिक्षु ही-ची की जीवनी[2] में लिखा है कि वू-युएह्-नरेश ने तिएन-ताई संप्रदाय के ग्रन्थों की खोज में जापान को दस दूत भेजे; किन्तु जापान के इतिहास में इसका कोई उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि राजदूत कोरिआ को भेजे गए थे। यदि हम ती-कुआन की जीवनी के उल्लेखों का यह अर्थ करें कि चीन के वू-येह्-नरेश ने राजपत्र और पचास प्रकार के रत्नों के साथ धर्मग्रन्थों की खोज में दस राजदूत कोरिआ भेजे, तो सत्य के अधिक निकट पहुंच सकेंगे। कोरिआ के अधिकारियों ने बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए भिक्षु ति-कुआन से चीन जाने को कहा और साथ ही प्रज्ञापारमिता-सूत्र-विज्ञापक, स्वदेश-रक्षक-करुणाशील-नरेश-पर-प्रज्ञापारमिता-विज्ञापक, अवतंसक-सूत्र की रूप-रेखा आदि ग्रन्थों को न देने के विषय में भी सावधान कर दिया। कोरिआ राज्य द्वारा भेजा ति-कुआन जब चीन पहुंचा तो वहां उसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान ही-ची का नाम सुना। ही-ची से भेंट करते ही वह उसका शिष्य बन गया। हमें यह ज्ञात है कि तिएन-ताई संप्रदाय के तीनों प्रधान ग्रन्थ चीन को कोरिआ से प्राप्त हुए थे। तत्पश्चात् तिएन-ताई स्कूल ने पुनः स्थापित होकर खूब उन्नति की।

---

१ दे० 'सुंग-वंश का इतिहास'

२ दे० 'सब युगों के बुद्धों और महास्थविरों के विषय में पूर्ण वक्तव्य'.

किन्तु आन्तरिक संघर्षों के कारण तिएन-ताई संप्रदाय की उन्नति की अवधि स्वल्प ही सिद्ध हुई । 'पर्वत' अथवा तिएन-ताई संप्रदाय और बाह्य-संप्रदाय में विभक्त होने के उपरान्त वू-चेन, चिह्-युआन, शाओ कुओ शिह् और ही-ची इत्यादि के अनुगामी द्वितीय संप्रदाय का ह्रास होने लगा । प्रथम संप्रदाय का नेता भिक्षु स्जू-मिंग था, जिस का मूल नाम चिह्-ली था और जिसको चिन-त्सुंग से 'फ़ा चिह् ता शिह्' अथवा 'धर्म और प्रज्ञा का महागुरु' की पदवी मिली थी । उसकी मृत्यु ६९ वर्ष की आयु में सम्राट् जेन त्सुंग के तिएन शेंग-काल के छठे वर्ष (१०२८ ई०) मे हुई ।[१] उसके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित है :—

१. सुवर्ण-प्रभास-सूत्र के वाक्यों और शब्दों पर टीका
२. दशार्थ ग्रन्थ
३. दश अद्वय विषयों पर ग्रन्थ का महत्त्व प्रकाशक अभिलेख
४. चित्त ध्यान पर दो सौ प्रश्न
५. सुवर्ण-प्रभास-सूत्र (के पाठ और) पाप-स्वीकार संबंधी संस्कार-नियम
६. महाकरुणा-सूत्र (के पाठ और) पाप-स्वीकार संबंधी संस्कार-नियम

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उसके शिष्य शिह्-चिह् ने 'भिक्षु स्ज़ू-मिंग के सदुपदेश' नामक ग्रन्थ का संकलन किया और नान-पिंग, कुआंग-चिह्, ह्नि-चा ओ आदि शिष्यों ने अपने गुरु के सिद्धान्तों का प्रचार जारी रक्खा, जिससे वह चीन में फैल गया और जापान में प्रविष्ट हो सका ।

वाह्य संप्रदाय के महत्त्वपूर्ण नेता चिह्-युआन, चिन-चिआओ और ह्नि-चिह् थे । चिह्-युआन भिक्षु युआन-चिंग का अनुगामी था । उसने २१ वर्ष की अवस्था से ही बौद्धधर्म का अध्ययन आरम्भ कर दिया था और युआन-चिंग की मृत्यु पर्यन्त वह इस कार्य में संलग्न रहा । तदुपरान्त वह चीकिआंग प्रान्त की राजधानी हानचाउ गया और वहाँ पश्चिमी झील के कु-शान स्थान में रहने लगा । उसकी मृत्यु ४७ वर्ष की आयु में, सम्राट् चिन-त्सुंग के समय में १०२२ ई० में हुई[२] । निम्नलिखित ग्रन्थ उसके द्वारा प्रणीत माने जाते है :—

१. दश अद्वय विषयों पर प्रबन्ध का शुद्धार्थ
२. सुखावतीव्यूह प्रज्ञा-टीका
३. प्रज्ञापारमिता हृदयसूत्र-टीका

---

१ दे० वही तथा 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण'

२ दे० 'सर्व युगों के बुद्धों और महास्थविरों के विषय में पूर्ण वक्तव्य'

४. बयालिस परिच्छेदीय-सूत्र-टीका
५. सुरांगम-सूत्र-टीका
६. महापरिनिर्वाण-सूत्र-टीका

चिआ-चाओ ने भी बहुत-से ग्रन्थों की रचना की, जैसे :—

१. प्रज्ञापारमिता-सूत्र-टीका
२. सुखावतीव्यूह-समूह नव्य टीका
३. सुरांगम वाक्य-शब्द व्याख्या

ही-ची ने निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं :—

१. सुवर्ण-प्रभास-सूत्र के शब्दों और वाक्यों की व्याख्या की नई टींका
२. चिह्-ई के तीन प्रमुख ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ
३. दश अविभाज्य-वस्तु पर निबन्ध में सार्विक अन्तर्दृष्टि का अभिलेख

पर्वत-शाखा के समुन्नत होने पर वाह्य शाखा को लोग मूर्तिपूजक कहने लगे।

भिक्षु चांग-शुई ने अवतंसक संप्रदाय के प्रचार के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था, इस कारण सुंग-वंश के प्रथम काल में उसकी बहुत उन्नति हुई। कहा जाता है कि चांग-शुई ने आरम्भ में अवतंसक-सूत्र का अध्ययन भिक्षु हुंग-मिंग से किया, बाद को ध्यान-सिद्धान्तों की शिक्षा हुई-चिआओ से प्राप्त की। सुरांगम पर २० खंडों में टीका और 'महायान श्रद्धोत्पाद-शास्त्र का संशोधित अभिलेख' उसकी रचनाएं मानी जाती है।[१]

भिक्षु चिन-युआन चांग-शुई का शिष्य और हान-चाउ के दक्षिणी पर्वत स्थित हुई-यिन मठ का निवासी था। उस समय अवतंसक संप्रदाय के बहुत-से ग्रन्थ नष्ट हो गए थे। संयोगवश ई-तिएन नामक एक कोरिअन भिक्षु चीन आते समय अपने साथ बहुत-सा अवतंसक-साहित्य लेता आया था। वह अवतंसक-संबंधी शंकाओं के सम्बन्ध में चिन-युआन से प्राय: विचार-विनिमय किया करता था। उसने १८० खंडीय अवंतसक को प्रदान किया, जो चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में 'तीन महान् अवतंसक-सूत्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। चिन-युआन ने इन ग्रन्थों की सुरक्षा के निमित्त "अवतंसक-भवन" नामक एक गृह का निर्माण कराया। इस कारण हुई-यिन मठ "कोरिअन मठ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ और चिन-युआन को अवतंसक-संप्रदाय के पुनर्जन्म का पिता होने का महत्त्व दिया गया। उसने 'मनुष्य

१ दे० 'सर्व युगों के बुद्धों और महास्थविरों के सम्बन्ध में पूर्ण वक्तव्य'

चुई-ह्जी
सुंग समीकरणवाद के आचार्य
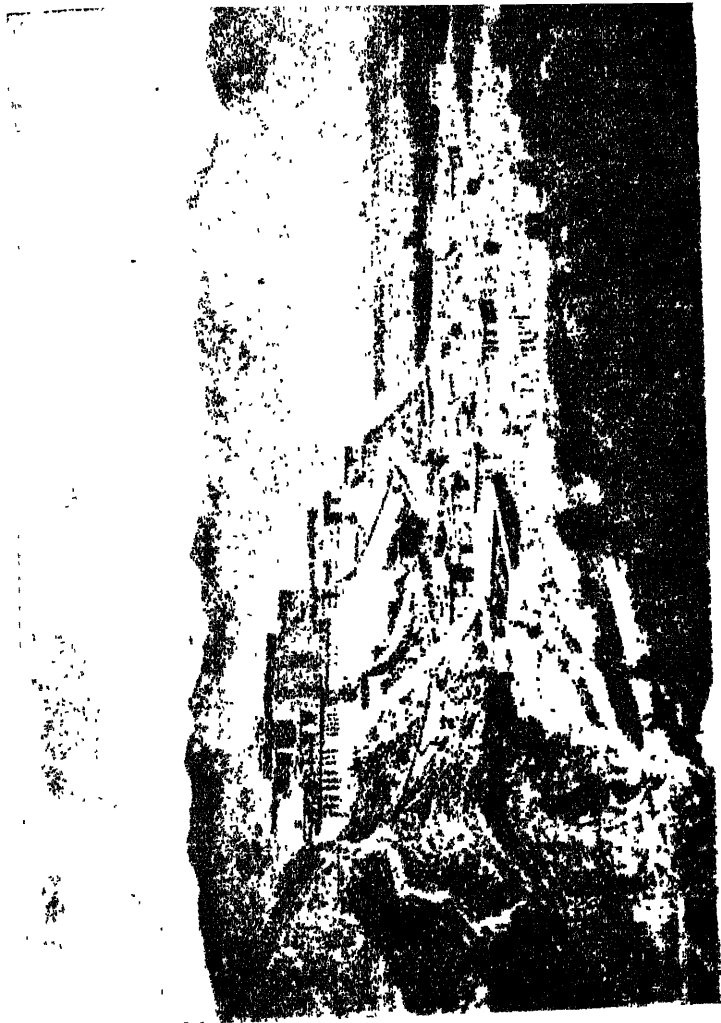
दलाई लामा का पातल मठ, ल्हासा (तिब्बत)

के मौलिक स्वरूप पर एक निबन्ध के विवरण का अभिलेख' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की।[१]

सुंग-काल में पवित्र लोक अथवा सुखावती-संप्रदाय की सर्वत्र उन्नति हुई। भिक्षु हिन-चाओ, तिएन-ताई संप्रदाय की स्त्रू-मिग शाखा का अनुयायी होने पर भी सुखावती-संप्रदाय के प्रवर्तक हुई-युआन का प्रशंसक था। उसने एक कुटी बनवाई और अमिताभ के नाप-जप के निमित्त एक संस्था संगठित की। छः या सात वर्ष के उपरान्त आरम्भिक कुटी ने एक बड़े मन्दिर का रूप ले लिया और सम्राट् जेन-त्सुंग ने उसको 'श्वेतपद्म-मठ' का नाम प्रदान किया। यू-चेन और यू-चिएन नामक उसके दो शिष्यों ने मिलकर अमिताभ-सिद्धान्तों का प्रचार किया। लिन-चिह और युआन-चाओ जैसे प्रमुख बौद्ध-भिक्षु विनय के नियमों की व्याख्या तिएन-ताई सिद्धान्तों के अनुसार करते थे।[२]

इन संप्रदायों की ऐक्यात्मक प्रवृत्ति तत्कालीन चीनी बौद्धधर्म की विशेषता है। प्रायः सभी बौद्ध विद्वान् यह मानते थे कि विविध संप्रदायों में कुछ मतभेद भले ही हो, सब का अन्तिम लक्ष्य एक ही—बोधियुक्त हृदय की प्राप्ति—है।

(ग) सुंग-कालीन बुद्धिवाद और बौद्धधर्म

विद्वत्-समाज में बौद्धधर्म के दीर्घकालीन और अविरत प्रचार ने सुंग-काल (९६०-१२८० ई०) में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का पथ प्रशस्त कर दिया। जन-साधारण ने अपनी सहज उपेक्षाशीलता में यह कभी अनुभव नहीं किया कि एक विदेशी धर्म, देश में देखते-ही-देखते किस प्रकार फैल गया है। कुछ व्यक्तियों ने भारतीय प्रतिभा की श्रेष्ठता, विशेषकर दर्शन तथा पद्धतिशास्त्र के क्षेत्र में, अवश्य स्वीकार की, किन्तु बौद्धधर्म की उत्कृष्टता के विषय में यह स्वीकृति ही कनफ्यूशिअस के शिष्यों के लिए अपने धर्म का कायाकल्प कर डालने की प्रेरणा बन गई।

सुंग-काल में चीनी दर्शन जग उठा और एक सहस्र वर्ष की लम्बी नींद के उपरान्त उसे नई स्फूर्ति-सी मिल गई थी। ऐसा लगता है कि बौद्धधर्म ने चीनी प्रतिभा को नई उत्तेजनाओं के प्रति क्रियाशील हो उठने के लिए स्पंदित कर दिया था। उस ने चीनी मानस को अपने में आत्मसात् करने के लिए नया खाद्य

१ दे० 'शाक्यमुनि-वंश के अनुसंधान की रूप-रेखा'

२ दे० 'सर्व युगों के बुद्धों और महास्थविरों के विषय में संपूर्ण वक्तव्य'

दिया था। सुंग-काल में सुंग-बुद्धिवाद अथवा ली-हुएह का उदय इसी का परिणाम था।

यह आन्दोलन जगत् के विषय में शिक्षित और संस्कृत समाज में प्रचलित विश्वासों को संगठितरूप में रखने और उस युग की दार्शनिक चिन्तना को सुसंबद्ध रूप देने का प्रयास था। चु-ही को इस सुंग-बुद्धिवाद का आचार्य माना जाता था। उसका जन्म सम्राट् काओ-त्सुंग के चिएन-येन-कालीन चतुर्थ वर्ष (११३० ई०) में १५ सितम्बर को हुआ था। बाल्यावस्था में उसने तीन वर्ष तक अपने पिता से शिक्षा प्राप्त की और तदुपरान्त प्रसिद्ध विद्वान् यांग-कुआई-शान और ली येन-पिंग के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया। अपने जीवन के आरंभिक काल में वह ताओवाद और बौद्धधर्म दोनों से विशेष प्रभावित था, किन्तु आगे चलकर जिसे वह श्रेष्ठ पुरातन कनफ्यूशसीय परम्परा मानता था, उसकी ओर उन्मुख हो गया। वस्तुतः वह स्वदेशीय मतों के प्रभाव से कभी भी मुक्त नहीं हो सका था। उसकी प्रतिभा समन्वय करने में विशेष आनन्द पाती थी और सुस्पष्ट विचार-शक्ति तथा सुन्दर साहित्य-शैली का जैसे उसे वरदान ही मिला था। अपने मत के परवर्ती मनीषियों के जो विचार—जिनका अनुयायी अन्ततः वह बन गया था—उसकी बुद्धि के सम्पर्क में आए। अपनी प्रतिभा के बल पर उनका परिवर्धन, नई व्याख्या और नया समन्वय कर के उसने उस दर्शन का निर्माण किया, जो भविष्य में शताब्दियों तक चीन के सुसंस्कृत मनीषियों का शास्ता बना रहा। उसकी मृत्यु सम्राट् निन-त्सुंग के चिंग-युआन-कालीन छठवें वर्ष (१२०० ई०) में हुई। उसको मरणोपरान्त ड्यूक का पद दिया गया और सम्राट् लि-त्सुग के शुन-यू-कालीन प्रथम वर्ष (१२४१ ई०) में कनफ़्यूशियन मन्दिर में उसका नाम अंकित किया गया। उसके ग्रन्थों में उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं :—

१. ताओ-तुंग, यह (महात्माओं, प्रमुख विद्वानों और राजनीतिज्ञों का संस्मरण है।)
२. चू-ही के वार्तालाप, (उसके शिष्य लि चिन ती द्वारा अभिलिखित और १२७० ई० में प्रकाशित)
३. यी के अध्ययन के लिए आरम्भिक पथ-प्रदर्शिका
४. पैतृक-सदाचार के उत्कृष्ट पुरातन ग्रन्थों का संशोधित संस्करण
५. न्यूनतर विद्या
६. महाविद्या पर टीका

७. मध्यम पथ-सिद्धान्त पर टीका

८. चु-ही की रचनाओं का सम्पूर्ण संस्करण, (इस नाम के विलुप्त ग्रन्थ का संपादन चांग पाई-हिंग नामक साहित्य-सेवी ने चिंग सम्राट् शेन-त्सु के शासन-काल में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त मे किया था।)

इस महान् विचारक चू-ही और उसके चार पूर्ववर्ती चिन्तकों को सम्मिलित करके, जिन्हें वह अपना गुरु कहना पसन्द करता था, श्रेष्ठ विचारकों का जो वर्ग बना, उसे साधारणतया "पंचदार्शनिक" कहते हैं। आविर्भाव के क्रम में उनके नाम हैं—चाउ तुग-ई, बन्धुद्वय चेंग-हाओ और चेंग-ई, उनका पितृव्य चांग-त्साई और चू-ही। इन पाँचों में से प्रथम चाउ तुंग-ई का जन्म सुंग सम्राट् चिन-त्सुग के तिएन-ही-कालीन प्रथम वर्ष (१०१७ ई०) में पंचम दार्शनिक चू-ही (११३० ई०) से शताधिक वर्ष पूर्व हुआ था और उसकी मृत्यु ५७ वर्ष की आयु में सुंग-सम्राट् शेन-त्सुंग के ही-निन-कालीन षष्ठम् वर्ष (१०७३ ई०) में हुई. चाउ तुग-ई के जन्म से लेकर चू-ही की मृत्यु (१२०० ई०) तक का समय दो शताब्दियों का है। सौभाग्यवश चाउ तुंग-ई के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—ताई तिह तु शुओ अथवा 'परम अनंत के चित्र की व्याख्या' और यी तुंग शु—अभी तक सुरक्षित हैं। इनको उसके शिष्यद्वय चेंग-हाओ और चेंग-ई ने उसकी मृत्यु के उपरान्त संपादित कर के प्रकाशित किया था। उसने 'परिवर्तनों की पुस्तक' में से एक अवतरण लेकर उसके आधार पर जगत्-विषयक अपने दर्शन को पल्लवित किया था, जिसके मूल सिद्धान्त में दो बातें थी—प्रथम तो यह कि जिस महा-स्रोत से सब वस्तुएं उत्पन्न हुई है, वह एकत्वमय है, और दूसरे यह कि उस स्रोत की मूल प्रकृति नैतिक है। उसके प्रबन्ध में यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इसके प्रथम वाक्य में समस्त वस्तुओं के उस 'एक-स्रोत' को 'अनन्त' कहा गया है। उस स्रोत को 'सर्वोच्च परम' भी कहा गया है, जिससे लेखक का तात्पर्य आदिकारण को अनन्तता का लक्षण—समस्त सीमाओं के अभाव के निषेधात्मक अर्थ में नहीं, वरन् एक नैतिक सत् निरपेक्ष सत्य, जो सब वस्तुओं का मूल होने के कारण जगत् मे अन्तर्भूत और साथ ही देश, काल और भौतिक सत्ता के परे है, इस निश्चयात्मक अर्थ में—प्रदान करना है। इस दर्शन के महत्त्व के विस्तृत विवेचन को आगे के लिए छोड़कर हम यहाँ पाठकों को यह स्मरण दिला देना चाहते हैं कि इस सुंग-कालीन संप्रदाय की महान् सफलता यह थी कि उसने प्राचीन चीनी नीति-शिक्षा को, जगत्विषयक एक बुद्धिवादी दर्शन से संबद्ध करके —जो बौद्धधर्म की तुलना में एक समकक्ष दर्शन कहा जा सकता है—विस्मृति

के आशंकित गर्त में पड़ने से बचा लिया। और इस सफलता का श्रेय अधिकांश में चाउ तुंग-ई के 'सर्वोच्च परम' के सिद्धान्त को मिलना चाहिए।

नीति-शिक्षा अथवा इस सुंग-कालीन संप्रदाय तथा जगत्-संबंधी उसके दर्शन के घनिष्ट संबंध का निरूपण यी तुंग शु अथवा 'परिवर्तनों की पुस्तक की संपूर्ण व्याख्या' में बहुत अच्छी तरह हुआ है। इसमें चाउ-तुंग-ई ने सब से पहले समस्त शुभ के आधार सर्वव्यापी सत्य की व्याख्या की है। वस्तुतः यह सत्य निरपेक्ष परम तत्त्व का ही दूसरा नाम है, जिसको उसने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थ में ताई ची अथवा सर्वोच्च परम की संज्ञा दी थी। यह निरपेक्ष परमसत्य समस्त शुभ का मूल है—चाहे वह संत में निवास करने वाला हो, चाहे महात्मा या अभिजात पुरुष में। सत्य का निरूपण करने के उपरान्त लेखक उस नीति-विधान का स्तवन करता है, जो मनुष्य की नैतिक प्रकृति के पाँच तत्त्वों में अभिव्यक्त हुआ है, जिनकी परिपूर्णता की साधना संतगण करते हैं। इस नीति-विधान का पालन करने के संबंध में चाउ तुंग-ई ने कहा है:—

"महात्माओं ने जेन अथवा मानव सहृदयता और यी अथवा सदाचार के सिद्धान्त को स्थिर करके तथा निवृत्ति को प्रधान बतलाकर मानवता के लिए एक प्रतिमान स्थापित कर दिया"।[1]

जो मनुष्य सचमुच जेन और यी हो जाता है, वह महात्मा है, और महात्मा स्वर्ग तथा पृथ्वी तथा समस्त वस्तुओं के साथ एक प्राण हो जाता है। स्वर्ग और पृथ्वी और समस्त वस्तुएं उसके लिए स्वयं से वाह्यस्थ नहीं रहतीं और न उनको लेकर वह एक (उनके) भीतर का उपकरण रह जाता है। उसके लिए स्वयं तथा अपर का भेद नहीं रह जाता। यही बात चाउ तुंग-ई ने यी तुंग-शु के एक परवर्ती अध्याय में कही है। उसमें शासन के सिद्धान्तों और चिंतन, प्रेम, श्रद्धा, मैत्री एवं संगीत का सदाचार की साधना में स्थान तथा इन सबके स्वर्गीय इच्छा और मानवीय प्रकृति से संबंध पर, तांग एवं येन-युआन के मंत्री तथा कनफ्यूशस के शिष्य, यी-यिन के साधुचरित्र का उदाहरण लेकर, विचार-विमर्श किया गया है। बौद्धों द्वारा अंगीकृत निवृत्ति के प्रधान मार्ग को लेकर सुंग-बुद्धिवादियों ने एक परिवर्तन किया। उन्होंने 'जीवन के मंडलों' पर विचार करते समय निवृत्ति-मार्ग पर उतना बल नहीं दिया, जितना अक्षोभ की साधना पर, और आध्यात्मिक

---

१ दे० 'सर्वोच्च परम के चित्र की व्याख्या'

साधना के लिए श्रद्धा का निर्देश किया। यह विचार-धारा बौद्धदर्शन से बहुत भिन्न थी।

बंधुद्वय चेंग-हाओ और चेंग-ई में प्रथम का उल्लेख प्रायः उसके साहित्यिक नाम मिंग-ताओ से किया जाता है। सुंग-शिह अथवा 'सुंग-वंश के इतिहास' में मिंग-ताओ की जीवनी अंशतः इस प्रकार दी हुई है :—

'चेंग-हाओ का दूसरा नाम पो-चुन था। पहले उसका परिवार चुंग-शान में रहा करता था, आगे चलकर स्थान-परिवर्तन करके वह काई-फेंग गया और वहां से हो-नान को। चेंग-हाओ की आध्यात्मिक निधि असाधारण थी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था से ही वह अपने अनुज चेंग-ई के साथ विद्वत्ता के विषय पर जू-नान निवासी चाउ-तुंग-ई के भाषण सुना करता था और सरकारी नौकरी के लिए परीक्षाओं से ऊबकर, उत्साहपूर्वक ताओ की साधना करने का दृढ़ संकल्प किया। फिर भी, लगभग दस वर्ष तक वह विभिन्न संप्रदायों की विचारधाराओं और बौद्ध-धर्म तथा ताओ मत के मध्य भटकता रहा। तदुपरान्त उसने कनफ्यूशस के षट् धर्मों को अपनी खोज का विषय बनाया और अंततः उन्हीं में उसे ताओ की प्राप्ति हुई।"

मिंग-ताओ का छोटा भाई अपने साहित्यिक नाम, ई-चुआन, से विशेष प्रसिद्ध है। सुंग शिह अथवा 'सुंग-वंश के इतिहास' में उसके विषय में उल्लेख है :—

"चेंग-ई का दूसरा नाम चिंग-शू था। वह एक किताबी कीड़ा था, किन्तु उसकी विद्या सत्यनिष्ठा में आधारित थी। उसने 'महान विद्या', 'चयनिका', 'मैनसिअस' और 'मध्यम दर्शन' को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया और कनफ्यूशस के षट्धर्मों का गहरा अध्ययन किया। क्रियाशील अथवा निश्चेष्ट होने, मुखर अथवा मौन होने की प्रत्येक स्थिति में उसने महात्मा (कनफ्यूशस) को अपना आदर्श बनाया और इस आदर्श की सिद्धि में अविराम लगा रहा। तदुपरान्त उसने 'परिवर्तनों की पुस्तक' और 'वसन्त और पतझड़ वृत्तांत' पर टीकाएं लिखीं और उनको संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया.......जगत् उसका स्मरण 'ई-चुआन के आचार्य' के नाम से करता है।"

मुख्यतया निबंधों और पत्रों के रूप में इन दोनों भाइयों की रचनाएं अभी तक उपलब्ध हैं। उनका संग्रह और संपादन किया जा चुका है। उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण के नाम हैं—'चेंगद्वय के साहित्यिक अवशेष', 'चेंगद्वय के अतिरिक्त अवशेष', मिंग-ताओ की संगृहीत कृतियाँ', 'ई-चुआन की संगृहीत कृतियाँ', 'ई चुआन कृत धरती के गीत', और 'चेंगद्वय की उत्कृष्ट सूक्तियाँ।' ई-चुआन

ने 'परिवर्तनों की पुस्तक' पर चाउ ग्री चुआन नामक टीका लिखी, जिसका उल्लेख प्रायः होता रहता है और जिसने सुंग बुद्धिवाद के विकास को बहुत प्रभावित किया है। मिंग-ताओ ने चाउ तुंग-ई के तुंग शू अथवा चांग-त्साई के चेंग-मेंग के समान किसी बड़े और उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना नहीं की। तिंग हिंग शू अथवा 'स्थिर प्रकृति पर निबंध' नामक ग्रन्थ में मिंग-ताओ ने ध्यान-संप्रदाय से मिलते-जुलते विचारों को व्यक्त किया है। मिंग-ताओ ने कहा है—"स्वर्ग और पृथ्वी की स्थिरता में चेतना नहीं होती। महात्मा पुरुष की स्थिरता इस तथ्य में निहित होती है कि यद्यपि उसकी भावना समस्त वस्तुओं से समरस होती है, किन्तु वह स्वयं भावना-मुक्त होता है।" ई-चुआन ने भी कहा है—"स्वर्ग और पृथिवी चेतना रहित है, किन्तु फिर भी पूर्णतया परिवर्तन होते रहते हैं, किंतु साधु-पुरुष चेतना रखते हुए भी वू वाई अथवा क्रियारहित होता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि जिसको ध्यान मत मे विचार-वितर्क-रहित चेतनायुक्त कहा गया है, वह चेतनायुक्त, किंतु उन चेतना को दूषित और मुग्ध करने वाले किसी भी उपकरण से रहित, साधुपुरुप की कल्पना के सदृश है।

वस्तुतः मिंगताओ ध्यानमत और ताओवाद दोनों से साम्य रखता था और सुंग-बुद्धिवादियों के हिन हुएह अथवा 'चेतना-सिद्धांत' का अग्रदूत था। 'यी-चुआन' 'यी विस्तारण' के ताओ पर बल देता था। उसने पश्चिमी दर्शन के 'प्रत्ययात्मक जगत्' जैसे सिद्धांत की खोज की और ली-हुएह अथवा सुंग-बुद्धिवाद का नेता बना।

प्रसिद्ध पंचदार्शनिकों में से चौथा चेंग बंधुद्वय का चाचा चांग-त्साई था, जो हेंग-चू के आचार्य के नाम से प्रसिद्ध है। सुंग शिह अथवा 'सुंग वंश के इतिहास' में उसकी जीवनी का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है:—

"त्जी-हाउ नाम से विख्यात चांग-त्साई चांग-आन का निवासी था। अपनी युवावस्था में, सेना-सम्बन्धी विषयों में उसकी बड़ी रुचि थी। अपने २४ वें वर्ष में एक परिचय-पत्र के द्वारा वह फ़ान-चुंग-येन के संपर्क में आया, जिसने उससे मिलते ही समझ लिया कि वह एक असाधारण योग्य व्यक्ति है। उसको सावधान करने के लिए फ़ान चुंग-येन ने उससे कहा—'कनफ्यूशिअन विद्यार्थी के आनन्द की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए तो नीतिशास्त्र और विधान ही हैं, वह सेना-सम्बन्धी विषयों में रुचि क्यों रक्खे?' और इस चेतावनी के साथ उसने उसको 'मध्यम सिद्धान्त' का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया। चांग-त्साई ने इस पुस्तक को पढ़ा, किन्तु उसको वह पूर्ण संतोषप्रद नहीं लगी। अतः वह बौद्ध-दर्शन

और ताओवाद की ओर उन्मुख हुआ और कई वर्ष तक उनके सिद्धान्तों का अवगाहन करता रहा, किन्तु उसे वांछित प्रज्ञा की प्राप्ति उनसे भी नहीं हुई ; अतः वह कनफ्यूशिअन मत के षट्धर्मों की ओर फिर उन्मुख हुआ। चेंग-बन्धुओं से सुंग-बुद्धिवाद के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के विषय में विचार-विनिमय करने के उपरान्त उसको आत्म-विश्वास हुआ और उसने कहा—'हमारा यह सत्य अपने में पूर्ण है, तब हम उसकी खोज अन्यत्र क्यों करें ?' और इस घोषणा के साथ अपनी विधर्मी विद्या का परित्याग कर उसने पुरातन स्वधर्म को अपना लिया।.....उसने पुरातन (सिद्धान्तों) का अध्ययन ही नहीं किया, ओजस्वितापूर्वक उनका अभ्यास भी किया, और कुआन-चुंग की विद्वन्मंडली का प्रमुख शिक्षक बन गया।"

(कुआन चुंग = वर्तमान शेन्सी प्रांत) ।

उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएं चेंग मेंग अथवा 'युवकों के लिए सम्यक् अनुशासन', और 'ही मिंग' अथवा 'पाश्चात्य शिलालेख' हैं। यह दोनों हिन-लि ता चुआन अथवा 'बुद्धिवाद पर विचार विमर्श' में सुरक्षित हैं। ही मिंग प्रधानतया नीति-विषयक है। इसकी शिक्षाएं लेखक के पुस्तकालय की पश्चिमी दीवार पर उत्कीर्ण थीं, इस कारण उसका यह नाम पड़ा। ही मिंग में लिखा हुआ है :—

"चिएन अर्थात् स्वर्ग को पिता कहा जाता है, और कुन अथवा पृथ्वी को माता। (मनुष्य होने के नाते) मैं इतना निरीह हूँ कि किसी प्रकार उनके मध्य रहता हूं ; अतः स्वर्ग और पृथ्वी के क्षेत्रमें जो कुछ व्याप्त है मैं, उसके शरीर का अंश हूँ और जो स्वर्ग तथा पृथिवी की गति को प्रेरित करता है, उसके स्वरूप का अंश हूँ। उसी गर्भ से उत्पन्न सभी मनुष्य मेरे भाई हैं, सभी पदार्थ मेरे साथी हैं।"

"वयोवृद्ध व्यक्तियों का आदर करना उनके (अर्थात् स्वर्ग और पृथ्वी के) गुरुजनों का समादर करना है। अनाथों और निर्बलों के प्रति वत्सल दयालुता उनके बालजनों के प्रति उचित व्यवहार है। साधुपुरुष उन (स्वर्ग और पृथिवी) से तद्रूप होते हैं, और पूज्यजन उनके उत्कृष्ट पुरुष हैं।" यह भी—

"रूपान्तर करने की उनकी शक्ति से अवगत होना उनके कार्य को आगे बढ़ाना है, उनकी दिव्यता की गहराई को नापना, उनके उद्देश्य का प्रतिपालन करना है।" और भी—

"संपत्ति और सम्मान, स्वर्गीय अनुकंपा और अनुग्रह, मेरे जीवन को समृद्ध बनाने के लिए मुझे दिए जा सकते हैं ; दरिद्रता और दीनदशा, शोक और विषाद,

सिद्धि के लिए आवश्यक साधनों के रूप में तुम्हें दिए जा सकते हैं। जब तक मैं जीवित हूँ, मैं उनको शिरोधार्य करूँगा और मृत्यु के उपरान्त शांति से रहूँगा।"

यहां हमें स्पष्टता मे बतलाया गया है कि सृष्टि और उसके अंतर्गत प्राणियों के प्रति हमें क्या दृष्टिकोण रखना चाहिए। हमारा शरीर सृष्टि का शरीर है, और हमारा व्यक्तिगत स्वभाव सृष्टि के स्वभाव से अभिन्न हैं। सृष्टि को हमें माता-पिता की तरह मानना चाहिए और उन्हीं की तरह उसकी सेवा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें जगत् के सभी व्यक्तियों को अपने भाई के समान और सभी प्राणियों को अपने ही समान मानना चाहिए।

तत्कालीन सुंग-बुद्धिवादी संप्रदाय और परवर्ती-काल में इस निबंध का बड़ा सम्मान था। जैसा मिंग ताओ ने कहा है :—

"मेरे विचार भी वही हैं, जो ही-मिंग में व्यक्त किए गए हैं, किन्तु उनके साथ न्याय करने की शक्ति त्ज़ो-हाउ अर्थात् हेंग चु की लेखनी में ही है।"

ही-मिंग का अंतिम वाक्य "जब तक जीवित हूं, तब तक मैं उनकी आज्ञा-पालन करता हूँ, और मरने पर शांति प्राप्त करता हूँ" जीवन और मृत्यु के प्रति सुंग-बुद्धिवादियों के दृष्टिकोण को भलीभाँति व्यक्त करता है। इसके और बौद्ध दृष्टिकोण में अंतर को चेंग मेंग के निम्नलिखित अवतरण में स्पष्ट किया गया है—"ताई-सु अथवा महा शून्य अवश्य ही ची (ईथर या आकाश) मय है; ची अवश्य ही घनीभूत होकर समस्त वस्तुओं की सर्जना करता है और अवश्य ही सभी वस्तुएं विघटित होकर पुनः ताई-हु का निर्माण करती हैं। इनकी गति के चक्र की शाश्वतता अनिवार्य है; अतः संत वह है, जो इस चक्र में निहित गति को पूर्णरूपेण जानता है और उसमें कोई विघ्न पहुंचाए बिना उसे अपने में धारण करता है और जो उसकी आत्मिकता की रक्षा चरम सीमा तक करता है। जहाँ तक निर्वाण में विश्वास करने वालों का संबंध है, वे निर्वाण को सृष्टि से एक ऐसा प्रस्थान मानते हैं, जिससे फिर लौटना नहीं होता।. . .घनीभूत होकर ची मेरा शरीर बनाता है, विघटित होने पर भी वह मेरे शरीर का निर्माण करता है। जो यह समझता है कि मृत्यु का अर्थ विनाश नहीं है, उसी के साथ प्रकृति के विषय में बात करना संभव हो सकता है।"

पुनः

"अपने स्वरूप की सिद्धि कर लेने के उपरांत ही कोई मनुष्य यह समझ सकता है कि न तो जीवन में लाभ निहित है और न मृत्यु में हानि।"

बौद्धधर्म कारणता की शृंखला को तोड़कर जीवन का अंत कर देने का

प्रयास करता है। इस संबंध में चांग-ताई ने कहा है—"निर्वाण में विश्वास करने वालों का निर्वाण से अभिप्राय सृष्टि से ऐसा प्रस्थान है, जहां से फिर लौटना नहीं होता।" किंतु यदि हम एक बार जान लें कि "ची घनीभूत होकर मेरा शरीर बनाता है और विघटित होकर भी" तो हम इस स्वाभाविक स्वयंसिद्धि पर पहुंचते हैं कि "न जीवन में लाभ निहित है न मृत्यु में हानि।" तब हम अपनी सत्ता को नष्ट क्यों करें? अतः हमें अपने दैनन्दिन जीवन के सारे कार्य इस विश्वास में प्रसन्न रहकर प्रतिदिन करते रहना चाहिए कि मृत्यु का अर्थ हमारा उसी ताई-हू में फिर लौट जाना है, जिससे हम आए हैं। चांग-त्साई की उक्ति "जब तक जीवित हूँ, मैं उनकी आज्ञापालन करता हूं, मृत्यु होने पर शांति प्राप्त करूंगा" के पीछे यही विचार है।

सुग बुद्धिवाद के दर्शन को सुसंगठित रूप चू-ही के प्रभाव से ही मिला। जो आकार का अतिक्रमण करता है, उसमें तथा आकारवान् में उसने अंतर स्पष्ट किया। उसने कहा है—"जो आकार अथवा आभासी आकार से रहित है, वह आकारातीत है। जिसमें आकार और वस्तुता है, वह यह अथवा वह पात्र है।" प्रत्येक स्वतंत्र वस्तु में उसका निर्मायक ली ही नहीं है, उसमें संपूर्ण ताई-ची अथवा सर्वोच्च परम भी है। "प्रत्येक मनुष्य के पास वही ताई-ची है, प्रत्येक वस्तु के पास ताई-ची है।" पुनः

"असंख्य और एक समानरूप से ठीक हैं, लघु और महान् अपने निश्चित स्थान पर हैं। अर्थात् असंख्य एक है और एक असंख्य हैं। उनका संपूर्ण योग सर्वोच्च परम है और प्रत्येक स्वतंत्र वस्तु में सर्वोच्च परम है।" इसी अवतरण में आगे उल्लेख है:—

"प्रश्न—'बुद्धि, प्रकृति और भाग्य अध्याय पर टिप्पणियों' में लिखा है—'क्योंकि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण से लेकर न्यूनतम महत्त्वपूर्ण तक प्रत्येक वस्तु में एक महाहेतु की सत्ता ही असंख्य वस्तुओं द्वारा अंशगृहीत होकर मूर्त हुई है, अतः असंख्य वस्तुओं में से प्रत्येक में सर्वोच्च परम वर्तमान है।' यदि यह ऐसा है, तो क्या इसका अर्थ यह है कि सर्वोच्च परमखंडों में विभक्त हो जाता है?

"उत्तर—आदि में केवल एक सर्वोच्च परम होता है, किन्तु असंख्य वस्तुओं में से प्रत्येक उसका अंशग्रहण करती है और इस प्रकार प्रत्येक में संपूर्ण सर्वोच्च परम होता है। जैसे चन्द्रमा आकाश में केवल एक है, किन्तु नदियों और झीलों में प्रतिबिंबित होकर सर्वत्र दिखाई पड़ता है। किन्तु, कोई इससे यह नहीं कह सकता कि स्वयं चन्द्रमा के खंड-खंड हो गए।"

इन कथनों के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में उसे विशिष्टरूप देने वाले अपने हेतु के अतिरिक्त सर्वोच्च परम भी निहित रहता है। सब वस्तुओं में वर्तमान होते हुए भी "खंड खंड नहीं हो जाता। वह केवल सहस्रों धाराओं में प्रतिबिंबित होने वाले चन्द्रमा के सदृश है"।[१] यह विचार अवतंसक-संप्रदाय के इंद्रजाल-रूपक के समान है। वह तिएन ताई संप्रदाय के भी सदृश है, जो यह मानता है कि प्रत्येक पदार्थ संपूर्ण तथागत गर्भ है और उसके भीतर समस्त अन्य पदार्थों की प्रकृति समाई हुई है।

जैसा हम पीछे कह चुके हैं, सुंग बुद्धिवाद ने बौद्धधर्म से और विशेषकर ध्यान मत से, जो तत्कालीन शिक्षित वर्ग के आदर का पात्र था, कुछ अंश ग्रहण किए थे, किंतु चीनवासी अपनी आँखें बंद किए हुए नए पोषण को निगल नहीं सके। उन्होंने बौद्धधर्म से केवल उन्हीं समस्याओं के संबंध में प्रेरणा ग्रहण की, जिनका निर्देश कनफ्यूशस मत ने बौद्धिक विकास के लिए किया था, अतः यह कहना अनुचित न होगा कि इस युग ने प्राचीन कनफ्यूशसवाद की परिधि के परे, किसी नूतन दर्शन की सृष्टि नहीं की। चिंग पूर्व-काल (३३० ई० पू०—२३० ई० पू०) के दार्शनिकों ने किसी एक प्रकार की विचारधारा के ढर्रे में पड़ जाने के प्रति घोर अरुचि प्रदर्शित की थी, किंतु सुंग-कालीन दार्शनिक उसी पुरानी कनफ्यूशसीय लीक में फिर पड़ गए। भारत से आए नए विचारों का उपयोग उन्होंने वहीं तक किया, जहाँ तक वे कनफ्यूशस मत की पूर्णतर व्याख्या करने में सहायक हो सकते थे और वह उनकी समझ में अकाट्य तथा अमोघ था। किसी भी स्थान से प्राप्त समस्त नवीन ज्ञान का उपयोग उन्होंने केवल पुरातन सिद्धांतों में कुछ गुह्य रहस्य खोज निकालने, उनका व्यापकतर विश्लेषण करने, अथवा उनके परिवर्धन करने में ही किया। उनकी मौलिकता, नए प्रकाश में पुरातन की पुनर्व्याख्या करने के प्रयास में ही सीमित थी।

---

१ दे० 'चू-ही के वार्तालाप'

अध्याय १०

युआन-काल में बौद्धधर्म

(क) बौद्धधर्म के सहायक सम्राट्

बारहवीं शती के अंत तक चीन इन तीन साम्राज्यों में खंडित हो गया—उत्तर में तातारों की राजधानी पीकिंग में चिन, दक्षिण में हांग-चाउ राजधानी में सुंग और मध्य में हिआ। १२०६ ई० में उत्तरी चीन पर चिन की विजय हो जाने के ८० वर्ष बाद चंगेज़ख़ाँ का नाम धारण कर तेमुजिन मंगोलों का प्रधान ख़ान बना। मंगोल अश्वारोही कबीले थे और केन्द्र शिविर स्थल मंगोलिया में कराकोरम था। चिन-साम्राज्य पर मंगोलों का आक्रमण १२१० ई० में आरंभ हुआ और यद्यपि उन्होंने पीकिंग पर घेरा नहीं डाला ; पर उसके नागरिक मौत के घाट उतार दिए गए और नगर जला दिया गया। तीन वर्ष बाद अपने सेनापतियों को काम पूरा करने के लिए छोड़कर स्वयं चंगेजखां ने पश्चिम एशिया पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रस्थान किया। इन युद्धों से लौटकर वह १२२४ ई० में हिआ साम्राज्य पर टूट पड़ा और उसको पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। उत्तरी साम्राज्यों की तुलना में सुंग-साम्राज्य का पराभव क्रमशः हुआ। सुंग-साम्राज्य पर आक्रमण १२३५ ई० में आरंभ हुआ, किंतु राजसिंहासन के अंतिम राज्याभियोगी का अंत १२८० ई० तक नहीं हो पाया। इसी वर्ष से मंगोल युआन-शासनकाल की गणना होती है। वस्तुतः चीन में एक स्वतंत्र मंगोल-राज्य की स्थापना, कुबलाख़ाँ के राज्यारोहण और पीकिंग में १२६३ ई० में नई राजधानी स्थापित होना, एक ही समय हुआ। युआन-साम्राज्य समस्त एशिया और यूरोप के विस्तृत भूखंड में फैला और राजवंश के सदस्यों के अधीन था। पश्चिम में बलगारिआ, हंगेरी और रूस ; पूर्व में प्रशांत महासागर और दक्षिण में उसकी सीमाएं हिन्द चीन, तिब्बत और भारत के सीमांत तक फैली हुई थीं। १२६३ ई० में कुबलाख़ाँ के राज्यारोहण से चीनी बौद्धधर्म का एक नया युग आरंभ हुआ।

धार्मिक दृष्टि से कुबलाखाँ सहिष्णु था। वह स्वयं अपने पिता के आदिम शामानीय धर्म में विश्वास करता था और साथ ही तिब्बतीय बौद्धधर्म के प्रति भी आकृष्ट था।

मंगोलिया में हिएन-त्सुंग शासन-काल (१२५१–१२५९ ई०) में कुबलाखां ने तिब्बतवासियों को सांत्वना देने के लिए तिब्बत की यात्रा की। वह चीन और तिब्बत के मध्य मैत्री को दृढ़ करना चाहता था और इसलिए फाग्सपा नामक एक तिब्बती बौद्ध विद्वान् को अपने साथ चीन लाया। जब कुबलाखाँ राजसिंहासन पर बैठा, तब उसने फाग्सपा को समग्र देश का कुओ-स्सु अथवा धर्मविषयाधिकारी राजगुरु नियुक्त किया और उसने लामावाद को चीन का राष्ट्रीय धर्म भी घोषित किया।

कुबलाखाँ के चुंग-तुग-कालीन प्रथम वर्ष (१२६० ई०) में फाग्सपा कुओ-स्सु अथवा राजगुरु नियुक्त हुआ। सम्राट् ने उसे मंगोलिअन भाषा के लिए एक वर्णमाला तैयार करने की आज्ञा दी। उसको सम्राट् ने ताओ पाओ फ़ा वांग अथवा 'महान् और अमूल्य धर्म का राजकुमार' की उपाधि से अलंकृत किया। कुबलाखाँ के शासन के सोलहवें वर्ष फाग्सपा तिब्बत लौट गया।[1] उसकी आविष्कृत वर्णमाला सीरिअक वर्णमाला (जिसका अनुकलन नेस्टोरिअन से हुआ था) के अक्षरों से कम सरल होने के कारण प्रचलित नहीं हो सकी।

युआन-सम्राट् शिह-त्सु के चिह-युआन कालीन १८ वें वर्ष (१२८१ ई०) में सम्राट् ने ताओ ते चिंग को छोड़कर जो स्वयं लाओ-ज़े द्वारा रचित था, ताओ मत के अन्य सब ग्रन्थों को जला देने का आदेश दिया।[2] वस्तुतः इस घटना का सम्बन्ध सम्राट् हिएन-सुंग से स्थापित किया जाना चाहिए। 'सर्वयुगों के बुद्धों और महास्थविरों के विषय में सम्पूर्ण वक्तव्य' में लिखा हुआ है:—

युआन सम्राट् हिएन-सुंग के राज्य के पांचवें वर्ष में चिऊ चू-चिह, ली चिह-चांग तथा अन्य ताओवादियों ने चांग-आन में एक कनफ्यूशसीय मन्दिर को नष्ट कर के उसके स्थान में वेन चेंग कुआन नामक मन्दिर बना लिया। उन्होंने बुद्ध और बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की मूर्त्तियों और स्तूपों को भी नष्ट किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने ४८२ बौद्ध मठों पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया। जनता और अधिकारियों को धोखा देने के लिए उन्होंने घोषित

---

१ दे० 'सर्व युगों के बुद्ध०'

२ दे० 'युआन-वंश का इतिहास'

किया कि बुद्ध ताओवाद के संस्थापक लाओ-त्ज़े के एक निर्माणकाय थे। तब शाओ लिनस्सु या 'लघुवन मठ,' के बौद्धभिक्षु फ़ू-यू ने सूज़ू-ती के साथ राज-दरबार में जाकर ताओवाद और बौद्धधर्म के बीच इस संघर्ष का समाचार सम्राट् को दिया। सम्राट् ने तत्काल ही यह निर्णय करने के निमित्त एक धार्मिक संगीति के आयोजन की आज्ञा दी कि बुद्ध लाओ-त्ज़े के निर्माणकाय थे या नहीं। बौद्ध-भिक्षु फ़ू-यू, सूज़ू ती और ताओवादी चिऊ जू चिह् और ली चिह् चांग निर्णायक बनाए गए। अन्त में ताओवादी पराजित हुए, लाओ-त्ज़े कृत ताओ ली चिंग को छोड़कर उनके सारे ग्रन्थ जला दिए गए। सत्रह ताओवादी स्वधर्म परिवर्तन कर के बौद्ध हो गए और तैंतीस बौद्ध-मन्दिर जिन्हें ताओवादियों ने उनसे छीन लिया था, उनको फिर वापस मिल गए।

कुबलाखाँ ने बौद्ध त्रिपिटकों का संग्रह करने के लिए एक राजाज्ञा निकाली और तदनुसार उनका प्रकाशन १२८७ ई० में हुआ। चिंग-हिआंग तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा संपादित इस दशखंडीय संकलन का नाम 'युआन वंश के शासन के चिह् युआन-काल में (संगृहीत) धर्मरत्न अथवा बौद्ध पवित्र ग्रन्थों का सामान्य सूचीपत्र' है। इस सूची में कुल मिलाकर ५,५८६ खंडों में १,४४० ग्रन्थों में त्रिपिटकों के अनुवादों का उल्लेख है। उसमें कुछ चीनी और भारतीय प्रकीर्ण ग्रन्थ भी हैं। त्रिपिटकों तथा अन्य भारतीय ग्रन्थों की तुलना उनके तिब्बती अनुवादों से की गई। उत्तरकालीन अनुवादों से मूल संस्कृत नाम लेकर उनका चीनी रूपान्तर चीनी नामों के साथ संयुक्त कर दिया गया।

बौद्धधर्म और विशेषकर तिब्बती बौद्धधर्म पर अनुग्रह की वर्षा की सीमा ही नहीं रही। चरित्रभ्रष्ट और निर्मम लामाओं को चीन में बसाया गया। युआन-वंश के इतिहास के अनुसार——

"चीकिआंग प्रान्त के शाओ-हिन जिले में स्थित सुंग-सम्राटों के स्मारक और मन्त्रियों की समाधियों को युआन-काल में दक्षिण चीन के बौद्ध-विषय-प्रबन्ध-संचालक कामुयलांचि ने नष्ट करवा दिया। शव-पेटिकाओं में से उसने बड़ी सम्पत्ति हस्तगत की ; जैसे——सवा मन सोना, ५ मन चांदी, नौ रत्नजटित पेटियां, १२१ हरे पत्थर के पात्र, डेढ़ सेर बड़े-बड़े रत्न ; १,१६,२०० सोने की सिल्लियां, और २३,००० एकड़ भूमि। इसके अतिरिक्त वे जनता को राज्य-कर देने से भी बचा देते थे। उस समय २३,००० परिवार कर-मुक्त थे। कुबलाखां की मृत्यु (१२९४ ई०) के उपरान्त पतन की गति और भी द्रुत हो गई।"

(ख) तिब्बत और मंगोलिया में बौद्धधर्म

चीन की राजधानी में बहुत-से विदेशियों की उपस्थिति के कारण जो प्रभाव देश में आए, उनमें तिब्बत का लामावाद, जिसका चीन में प्रवेश उस समय हुआ, सब से अधिक मनोरंजक है।

तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रवेश ६५० ई० (तांग-सम्राट् काओ-त्सुंग के शासन-काल में) में तथागत के महापरिनिर्वाण के १२०० वर्ष उपरान्त तिब्बत-नरेश स्रोन-त्सान-गम-पो द्वारा हुआ, जिसके दो पत्नियां थीं, पहली चीन के सम्राट् ताई-त्सुंग की पुत्री वेन-चेंग और दूसरी नेपाल के राजा अंशुवर्मा की पुत्री भृकुटी। चीनी राजकुमारी अपने साथ बुद्ध की एक प्रतिमा लाई थी, जो बाद में थुल-नान-मठ में स्थापित की गई, और नेपाली राजकुमारी भी अपने साथ अक्षोभ्य वज्र, मैत्रेय और तारा की मूर्तियाँ (जिनमें तीसरी चन्दन काष्ठ की थी) लाई थी।[1]

राजा स्रोन-त्सान-गम के समय में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए भारत, चीन और नेपाल से बहुत-से भिक्षु तिब्बत आए। राजा ने संभोट नामक एक प्रकांड तिब्बती विद्वान् को बौद्धधर्म का अध्ययन करने भारत भेजा। वह दक्षिण भारत में लगभग सात वर्ष रहा और लौटते समय बहुत-से संस्कृत-ग्रन्थ अपने साथ तिब्बत ले गया। उसने तत्कालीन उत्तरी गुप्त लिपि के आधार पर तिब्बती वर्णमाला तैयार की और अपनी भाषा का प्रथम व्याकरण लिखा। उसने आठ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें से व्याकरण पर लिखी दो लघु पुस्तिकाएं ही अब उपलब्ध हैं। तिब्बती जनता अपने राजा में बड़ी भक्ति रखती थी, क्योंकि वह तारा बोधिसत्त्व का निमार्णकाय माना जाता था। संभोट मंजुश्री बोधिसत्त्व का निर्माण-काय माना जाता था। स्रोन-त्सान-गम-पो ने कई वर्ष राज्य कर के ८२ वर्ष की अवस्था में देह-त्याग किया।

राजा स्रोन-त्सान-गम-पो का पुत्र मन-रोन-मन-त्सान था, उसका पुत्र कुन स्रोन कुन-त्सान और इसका पुत्र थि-दी-त्सांग-तेन था। उसके जी-त्सा-ह्ला-पोन नामक एक पुत्र ने तांग-सम्राट् सु-त्सुंग की पुत्री चिंग-चेंग से विवाह किया। उनके पुत्र की मृत्यु हो गई। राजकुमारी चिंग-चेंग अपने पितामह के साथ मिलकर शाक्यमुनि की प्रतिमा की पूजा करने लगी। तदुपरान्त राजा पुरुष-पृथिवी-अश्व के समय सौन्दर्य के विशिष्ट लक्षणों से युक्त एक लड़का उत्पन्न हुआ।

---

१ दे० 'सर्वयुगों के०'
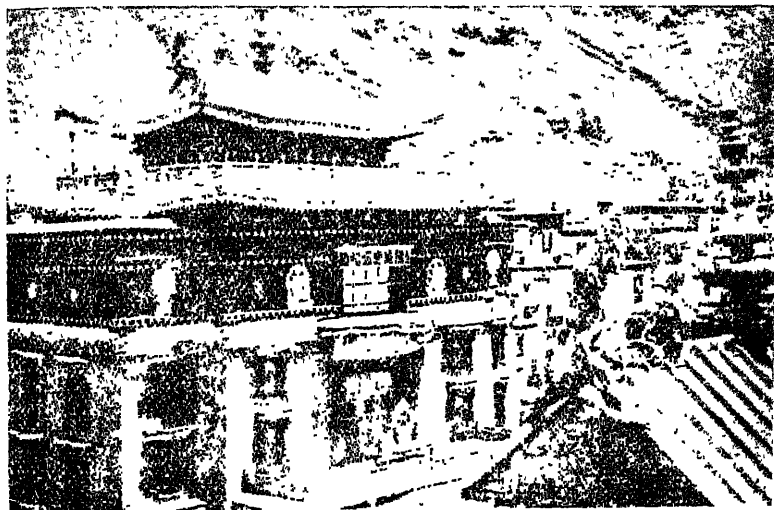
सुप्रसिद्ध तशी-लम्पो मठ का एक भाग। शिगारस—तिब्बत

तिब्बतीय लामाओं का एक लोक-नृत्य
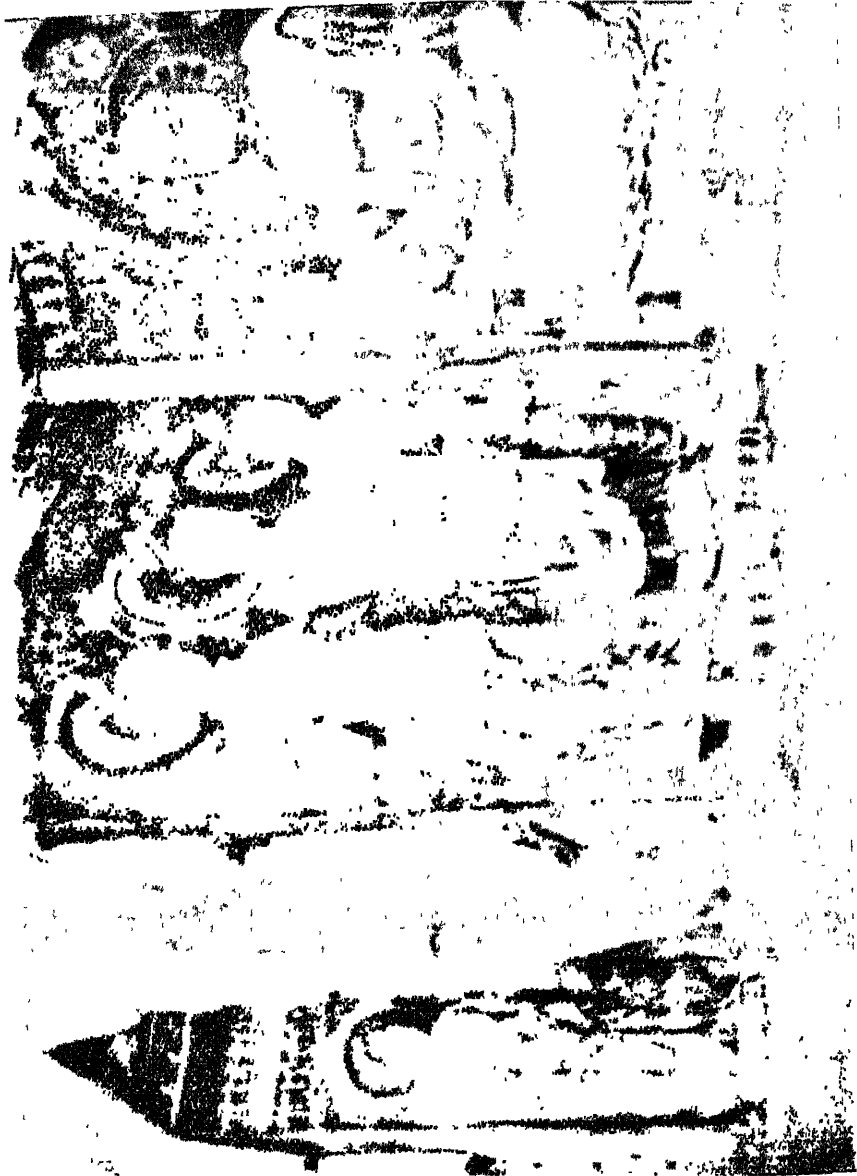
मै-ची-शान—कांसू स्थित पर्वतशिला-खंड में काटकर वनाई हुई बुद्ध और बोधिसत्व की प्रतिमाएँ

जब राजा फान-थान की यात्रा के लिए प्रस्थान कर चुका था, तब ना-नामशा उस बालक को उठा ले गया और अपना पुत्र करके उसे पाला, जो थिस्रोन-दी स्तान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तेरह वर्ष की अवस्था में ही वह सिंहासन पर बैठा। चीन पर आक्रमण करके वह ज़ी-च्वान और युन्नान-प्रान्तों में घुस गया और तत्कालीन तांग-सम्राट् सु-त्सुंग की राजधानी चांग-आन तक पहुंच गया। वह अपनी माता चिंग-चेंग से बहुत प्रभावित था और वह उसके युद्ध-व्यापार से दुखी थी। अन्त में उसके प्रभाव के अधीन होकर उसने अपना जीवन बौद्धधर्म के प्रचार में लगा दिया। तब उसने पद्मसंभव नामक भारतीय भिक्षु को धर्म-प्रचार के लिए तिब्बत बुलाया। अनुवादों के अनुसार गुरु पद्म-संभव नालंदा-विश्वविद्यालय का महायानीय आचार्य था। उसको योगाचार-सम्प्रदाय का भी बताया जाता है। वह जादू-टोने के लिए प्रसिद्ध ग़ज़नी का निवासी था और ७४७ ई० में तिब्बत पहुंचा। वह बोधिसत्त्व नागार्जुन द्वारा रचित माने जाने वाले महायानिक शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार करता था। तिब्बत में थोड़े ही दिन रहने के बाद वह भारत लौट आया। उसके २५ प्रमुख शिष्य बताए जाते हैं, जिन्होंने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद किया। उनमें से विशेषकर वैरोचन ने बहुत-से बौद्ध-धर्मग्रन्थों का रूपान्तर तिब्बती भाषा में किया।

राजा राल-पा-कोन ने, जो थि-स्रोन-दी-त्सान का पौत्र था और वज्रपाणि का अवतार माना जाता था, अठारह वर्ष की आयु में राज्य करना आरंभ किया और अपने लिए ओन-कान-दो नामक नौमंज़ला महल बनवाया। उसने धर्म-प्रचार में बड़ी सहायता की। उसके समय में नागार्जुन, आर्यदेव, वसुबन्धु और आर्यसंग के ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ।

ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ में एशिया के सभी देशों से तिब्बत में सैकड़ों भिक्षु आने लगे। उनमें से एक अतीश नामक बंगाली भिक्षु था, जो वहाँ १०३८ ई० में गया। उसने तिब्बतीय बौद्धधर्म के द्वितीय युग का समारंभ किया, जिसमें तत्कालीन धर्म का सुधार करने के निमित्त अनेक सम्प्रदाय उदित हुए। अनुशासन और संश्लिष्टता की दृष्टि से अतीश की शिक्षा उत्कृष्ट कोटि की थी। उसने स्थानीय अंधविश्वास का स्थान ले लिया, जिसके परिणाम-स्वरूप ब्काह्-ग्दाम पा और ब्काह्-र्ग्युद-पा नामक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। शताब्दी के अन्त तक तिब्बत में लामावाद ने अपने पैर पुनः दृढ़ता से जमा लिए और उसकी विविध शाखाओं ने उन दिनों खंड-खंड हो गए तिब्बत के छोटे-छोटे सामंतों

के हाथ से अधिकांश शक्ति छीन ली; किन्तु शक्ति के राजनीतिक क्षेत्र से धार्मिक क्षेत्र में हस्तान्तरण से देश के द्वार मंगोल-आक्रमणों के लिए खुल गए।

तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में युआन सम्राट् कुबलाखाँ ने अपनी मंगोल प्रजा सहित भदन्त फाग्स्पा द्वारा, जिसको वह चीन ले आया था और जिसका उल्लेख किया जा चुका है, लामा-धर्म स्वीकार कर लिया। इससे लामावाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। क्रमानुगत मंगोल-सम्राटों के शासन-काल में कुओ-स्ज़ू धर्माधिपत्य राजनीतिक स्तर पर १३६८ ई० तक प्रमुख रहा। जब युआन-वंश का स्थान मिंग-वंश ने लिया, तब लामाओं के प्राधान्य का ह्रास होने लगा।

चंगेज़खाँ के पुत्रों के राज्यकाल में अनौपचारिक रूप से बौद्धधर्म का प्रवेश मंगोलिया में भी हो गया। गोदनखाँ ने, जिसकी राजधानी लान-झू थी, शाक्य पंडित की ख्याति सुनकर अनेक बहुमूल्य उपहारों सहित उसको मंगोलिआ चलने के लिए निमंत्रण देने अपना राजदूत तिब्बत भेजा। शाक्य पंडित ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और १२४६ ई० में मंगोलिया पहुंचा। चार वर्ष बाद खान और पंडित दोनों की मृत्यु हो गई। तब कुबलाखाँ का भाई मोगूखाँ सिंहासन पर बैठा। उसके शासन-काल में अनेक तिब्बती भिक्षु मंगोलिया आए, जिनमें कर्म-बाक्सी प्रमुख था। तदुपरान्त मंगोलों ने ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में करना आरम्भ किया। कोवालास्की के अनुसार शांतिदेव कृत बोधिचर्यावतार का तिब्बती अनुवाद कोसक्यी ओडजेन ने किया था। हैज़ार खुलुंग के शासन-काल में कांजुर के अंशों का अनुवाद मंगोली भाषा में हुआ। राजा येमुन तेमूर खान के राज्यकाल में (१३२४–१३२७ ई०) शाक्य के तिब्बती लामा द्गा-बा-ब्कोड-नाम्स ने मंगोल लोत्सव-सेस-रब-सेन-जी की सहायता से बहुत-से प्रवचनों का अनुवाद मंगोली में किया। तुब तैमुर के राज्य में १३३० ई० में सप्तरश्मिक (?) सूत्र के तिब्बती अनुवाद स्माब्दुन-ज़ेस्पा-स्कार-मैम्डो का मंगोली रूपातंर किया गया। इस ग्रन्थ की दो हज़ार प्रतियाँ लकड़ी के ठप्पों से पीकिंग में छापी गई और यह मंगोलियन मुद्रण का प्रथम प्रतिरूप है।[1]

तैमूर चीन का अंतिम मंगोल सम्राट् था। चंगेज़खाँ से लेकर तैमूर तक

---

१ दे० केलेटी स्ज़ोम्ल, बूडापेस्ट, १९०६ में लाउफ़र का निबन्ध 'स्किजी डर मंगोलिश्चेन लिटरेचर।'

चौदह राज्य-कालों में बहुत-से शाक्य और कर्मपा लामा मंगोलिया गए और उनमें से कुछ ने युआन-सम्राटों से विशेष सम्मान प्राप्त किया।

चीन में मंगोल-साम्राज्य १२७९ ई० से १३६८ ई० तक ९० वर्ष स्थापित रहा ; लेकिन वह आतंक पर स्थापित था और शान्ति तभी तक रही, जब तक विजेता शक्तिशाली रहे। १३६८ ई० में मिंग-वंश ने मंगोल-साम्राज्य का नाश कर दिया। उसके अवशिष्ट अंश ने चीन की सभ्यता को फिर कोई स्थायी अथवा महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं किया। उसके क्षेत्र में बौद्धधर्म अनुग्रह का पात्र अवश्य रहा।

अध्याय ११

मिंग-काल में बौद्धधर्म

(क) बौद्धधर्म के रक्षक और संचालक के रूप में सम्राट् ताई-त्सू

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में मंगोलीय युआन-वंश की शक्ति क्षीण होने पर विद्रोही नेता चू युआन-चांग ने चीन को पदाक्रांत कर डाला और १३६८ ई० में मिंग-वंश की स्थापना की। इतिहास में वह हुंग-वू के नाम से विख्यात है। उसका जन्म १३२८ ई० में हुआई और यांग-त्ज़ी नदियों के मध्य स्थित ह्राओचाउ के एक गरीब किसान के घर में हुआ था। उसके माता-पिता की मृत्यु उसके बचपन में ही दुर्भिक्ष के कारण हो गई थी और इस अनाथ बालक ने पहले भेड़ें चरायीं और फिर ह्वांग-चिआओ स्ज़ू अथवा राजा बोध-मठ में बौद्ध-भिक्षु हो गया ; किन्तु मठ में उसके महत्त्वाकांक्षी हृदय को संतोष नहीं मिला और मठीय जीवन को त्यागकर वह डाकू बन गया। उन दिनों सर्वत्र विद्रोहियों की बढ़ती हुई संख्या के मध्य उसको अपने स्वभाव के अनुरूप काम मिल गया। उसने त्वरित गति से उन्नति कर एक विस्तृत भूखंड पर अधिकार जमाया और अपने नाम-मात्र के अधिकारी से विच्छेद कर के एक सरदार बन बैठा। उसने १३५६ ई० में नानकिंग पर अधिकार कर के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की और आगे चलकर नानकिंग मिंग-वंश के शासन-काल में उसकी तथा समस्त चीन की राजधानी बना।

राज्यारोहण करने पर उसने चीन के तीनों धर्मों—बौद्ध, ताओ और कनफ्यूशसीय—को प्रश्रय दिया। यु-आन-काल में बौद्धमठों के भीतर भ्रष्टाचार से वह अवगत था। उसने सोचा कि यदि बौद्धधर्म को उन्नत और समृद्ध होना है, तो बौद्ध-भिक्षुओं पर राज्य की शक्ति का नियंत्रण रहना चाहिए ; इसलिए उसने यह राजादेश निकाला कि जो लोग भिक्षु होना चाहते हैं, उनके लिए लंकावतार-सूत्र, प्रज्ञापारमिता हृदय-सूत्र और वज्रच्छेदिका पढ़ना आवश्यक है। उसने भिक्षु त्सुंग-ली और जू-ची को आमंत्रित किया और उन्होंने उक्त तीन ग्रन्थों पर तीन संक्षिप्त टीकाएं लिखीं[1]। यह टीकाएं इन सूत्रों को चीन में लोकप्रिय

---

१ दे० 'जू-हिन रचित मिंग-काल में पूर्णीकृत प्रमुख भिक्षुओं के संस्मरण'।

बनाने में सहायक सिद्ध हुई। उन्हीं दिनों ताई-त्सू ने बौद्ध-मठों का नियंत्रण करने के लिए एक बौद्ध-अधिकारी-मंडल का संगठन करने की राजाज्ञा भी निकाली । बौद्ध-प्रशासन-अधिकारी-मंडल का संगठन इस प्रकार स्थापित किया गया[1] :—

(१) केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित अधिकारियों की नियुक्ति करेगी—

क. सेंग लू जू—देश-भर में बौद्धधर्म-सम्बन्धी विषयों का नियंत्रण करने के लिए बौद्ध प्रशासकीय विषयों का रजिस्ट्रार।

ख. त्सु शान शिह—कार्यालय के वाम पार्श्व में बौद्ध-कल्याण-अधिकारी।

ग. यु शान शिह—कार्यालय के दक्षिण पार्श्व में बौद्ध-कल्याण-अधिकारी।

घ. त्सु शान चिआओ—कार्यालय के वाम पार्श्व में बौद्ध-सिद्धांतों का प्रचार-अधिकारी।

च. यु शान चिआओ—कार्यालय के दक्षिण पार्श्व में बौद्ध-सिद्धान्तों का प्रचार-अधिकारी।

छ. त्सु चिआंग चिग—कार्यालय के वाम पार्श्व में बौद्ध-सूत्रों का प्रशिक्षण-अधिकारी।

ज. यु चिआंग चिग—कार्यालय के दक्षिण पार्श्व में बौद्ध-सूत्रों का प्रशिक्षण-अधिकारी।

झ. त्सु चिआन यी—कार्यालय के वाम पार्श्व में बौद्ध-सिद्धान्तों का भाष्य करने वाला अधिकारी।

ट. यु चिआन यी—कार्यालय के दक्षिण पार्श्व में बौद्ध-सिद्धान्तों का भाष्य-अधिकारी।

(२) प्रान्तीय सरकारें अपने क्षेत्र में सामान्य बौद्ध विषयों का नियंत्रण करने के लिए एक सेंग कांग सुजू नियुक्त करेंगी।

(३) उप-प्रान्तीय सरकारें उसी निमित्त अपने क्षेत्र में सेंग चिन सुजू नियुक्त करेंगी।

(४) जिले की सरकार ऐसा ही सेंग चिन सुजू अपने क्षेत्र में नियुक्त करेगी।

सम्राट् ताई-त्सु ने अपने शासन के हुंग वू-कालीन ११ वें वर्ष (१३७८ ई०) में भिक्षु पू-शिआ, ती-हुआन और लिआओ-ता को केन्द्रीय सेंग लू सुजू

१ दे० 'मिंग-वंश का इतिहास'

और चिताई पु को त्सु चिआंग चिग नियुक्त किया। अपने राज्य के हुंग वू-कालीन १५ वें वर्ष में उसने हिंग-कू को त्सु शान चिआओ और जू-चिन को यु चिआउ यी नियुक्त किया।

अपने शासन के हुंग-वू-कालीन पाँचवें वर्ष में सम्राट् ताई-त्सुंग ने त्रिपिटकों का संशोधन करने के लिए नानकिंग में चिआंग-पर्वत पर एक बौद्ध-संगीति का आयोजन किया और उनका नया संस्करण नानकिंग से प्रकाशित हुआ। उसी काल के १८ वें वर्ष में अधिक ग्रन्थों से युक्त त्रिपिटक का मुद्रण फिर हुआ और उस संस्करण का नाम 'चीनी त्रिपिटकों का उत्तरी संस्करण' रक्खा गया।

मिंग-कालीन त्रिपिटक में १६६२ ग्रन्थ हैं जिनको चार वर्गों में बाँटा गया है :—

१. चिंग-त्सांग अथवा सूत्र-पिटक
२. लु-त्सांग अथवा विनय-पिटक
३. लु-त्सांग अथवा अभिधर्म-पिटक
४. त्सा-त्सांग अथवा प्रकीर्ण ग्रन्थ

इनमें से प्रथम तीन में अनुवाद और चतुर्थ वर्ग में मौलिक चीनी ग्रन्थ हैं। सूत्र-वर्ग में संपूर्ण त्रिपिटक का लगभग $\frac{2}{3}$ अंश सम्मिलित है और इसमें १०८१ ग्रन्थ हैं। इसका उपवर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :—

क. महायान-सूत्र—६४१ ग्रन्थ
ख. हीनयान-सूत्र—२४९ ग्रन्थ
ग. सुंग और युआन-काल में सूत्रों के अन्तर्गत स्वीकृत महायान तथा हीनयान-सूत्र ३०० ग्रन्थ।

महायान-सूत्रों में चीनी बौद्धों द्वारा सर्वाधिक सम्मानित ग्रन्थ सम्मिलित हैं। यह वर्ग सात भागों में बाँटा गया है—प्रज्ञापारमिता-वर्ग के २२ ग्रन्थ, रत्नकूट-वर्ग के ३८ ग्रन्थ, निर्वाण-वर्ग के १३ ग्रन्थ, महासन्निपात-वर्ग के २६ ग्रन्थ, और अवतंसक-वर्ग के २८ ग्रन्थ। इन पाँच वर्गों के अतिरिक्त दुहरे अनुवादों के २५० ग्रन्थ और एक ही बार अनूदित १६६ ग्रन्थ हैं।

विनय-पिटक का विभाजन महायान और हीनयान-वर्गों में किया गया है। महायान-विनय में २५ ग्रन्थ हैं। हीनयान-वर्ग में पाँच संशोधित पाठ, उद्धरण और सारसंग्रह हैं। इनकी संख्या ६० है। विनय के पाँच पाठ यह हैं :—

सर्वास्तिवादी, यी-त्सांग का मूल-सर्वास्तिवादी, धर्मगुप्तीय, महीशासक और महासांघिक।

अभिधर्म-पिटक का भी विभाजन हीनयान और महायान-खंडों में किया गया है। इसमें अश्वघोष, नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, आर्यदेव और अन्य महायानी आचार्यों के दार्शनिक ग्रन्थ हैं, जो योगाचार और माध्यमिक विचारधाराओं के प्रतिनिधि हैं। इस खंड में ९४ ग्रन्थ हैं। हीनयानी अभिधर्म सर्वास्तिवादी-मत को प्रतिपादित करता है और उसमें ३७ ग्रन्थ हैं। वह पाली पिटकों के समानुरूप नहीं है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त महायान और हीनयान-सम्प्रदायों के लगभग २५ ग्रन्थ सुंग और युआन-काल में पिटकों में समाविष्ट किए गए।

प्रकीर्णक-खंड में भारतीय ऋषियों और पंडितों द्वारा लिखित १४७ ग्रन्थ और चीन के बौद्ध-दर्शन के विद्वानों द्वारा लिखित १९५ ग्रन्थ हैं। इनमें से कुछ का पिटकों में समावेश मिंग-काल में हुआ था।

चीनी त्रिपिटक धार्मिक संकलन की अपेक्षा साहित्यिक और जीवन चरितात्मक संग्रह अधिक है। उसमें बौद्धधर्म पर प्रामाणिकता और प्राचीनता प्राप्त भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद हैं। उसके अन्तर्गत इतिहास, जीवनचरित, यात्रा-वर्णन, कोष तथा विविध विषयों पर पुस्तकें हैं और इस कारण उसे चीन और भारत के बौद्ध-ज्ञान का विश्वकोष कह सकते हैं।

त्रिपिटकों के मिंग-संस्करण के प्रकाशन के उपरान्त तीन संस्करण और निकले। इनमें से प्रथम चिंग-संस्करण (१६१४–१९११ ई०) अजदहा अथवा नाग-संस्करण के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ७१९ बंडलों में ७,१७४ खंडों में १,६६६ ग्रन्थ हैं। भारत में यह शांति-निकेतन के चीन-भवन में उपलब्ध हैं। दूसरा शंघाई-संस्करण (१९१३ ई०) है, जिसमें ४० बंडलों में ८,४१६ जिल्दों में १९१६ ग्रन्थ हैं। तीसरा सुंग-संस्करण (९६०–१२७६ ई०) की फ़ोटोग्राफ़ीय प्रतिलिपि है, जिसमें ६,१३० जिल्दों में १९२१ पुस्तकें हैं। चीनी त्रिपिटकों का नूतनतम संस्करण जापान में ताई-शाओ-संस्करण के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें २,१८४ ग्रन्थ हैं और यह प्रयाग विश्वविद्यालय के चीनी विभाग में प्राप्य है।

(ख) सम्राट् चेंग-त्सु और तिब्बतीय लामावाद

सम्राट् ताई-त्सु की मृत्यु के उपरान्त उसका सोलह वर्षीय पौत्र चिएन-वेन या हुई-ती सिंहासन पर बैठा। ताई-त्सु के ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु राज्या-

रोहण के समय के पूर्व ही हो गई थी; किन्तु अल्पवयस्क सम्राट् के विरुद्ध एक अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति, उसके चौथे पितृव्य, येन के राजकुमार युंग लो ने विद्रोह किया, जो उत्तरी सीमांत का शासक था और पीकिंग में रहता था। एक अनिर्णायक संघर्ष के उपरान्त सम्राट् के सहायक तितर-बितर हो गए और नानकिंग पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया (१४०२ ई०)।

उस समय लोगों ने यह समझा कि किशोर सम्राट् महल में आग लगा दिए जाने पर उसी में जलकर भस्म हो गया; किन्तु बाद को यह ज्ञात हुआ कि चिएन-वेन चिंग-नेंग नामक भिक्षु का वेश धारण कर बचकर निकल गया। नए सम्राट् चेंग-त्सु द्वारा उसको पकड़ने के सारे प्रयत्नों के बावजूद चिएन-वेन को कोई पहचान भी नहीं सका, और वह चीन के सुदूर दक्षिण-पश्चिम भाग के क्वाई-चाउ और क्वांग-सी प्रान्तों में पर्यटन करता हुआ भिक्षु का जीवन बिताता रहा। बहुत दिनों बाद १४४१ ई० में सम्राट् यिंग-त्सुंग ने, जो युंग-लो का प्रपौत्र था, उसे पीकिंग लौट आने के लिए आमंत्रित किया। उस वयोवृद्ध भिक्षु ने अपने जीवन का अन्तिम वर्ष पीकिंग में शांतिपूर्ण अज्ञातवास में बिताया।

सम्राट् चेंग-त्सु बौद्ध-दर्शन का ज्ञाता था और साहित्य तथा धर्म के क्षेत्र में प्रतिभा रखता था। उसने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से एक 'महान् मिंग-वंशीय सम्राट् ताइ-त्सु वेन वांग का सम्राटीय आमुख और स्तोत्रीय कविताएं' हैं। इसमें गद्य तथा पद्य में दस रचनाएं हैं और इसका रचना-काल १४१०–१४१५ ई० है। उसकी दूसरी पुस्तक 'रहस्यवादी भिक्षुओं के संस्मरण' है, जिसमें पूर्वी हान-कालीन (२६–२२० ई०) काश्यप मातंग से लेकर दक्षिणी सुंग-कालीन (११२७–१२८० ई०) पु-आन तक देशी-विदेशी २०९ भिक्षुओं की जीवनियाँ हैं, जिनके आरम्भ में युआन-कालीन (१२८०–१३६८ ई०) कतिपय भिक्षुओं का वृत्तान्त वर्णित है। सम्राट् ने वर्णन के लिए उन्हीं भिक्षुओं को चुना, जिनको सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उनका वर्णन प्राचीन जीवन वृत्तों में भी मिलता है।

उपहार और पदवियाँ प्रदान करके सम्राट् तिब्बती भिक्षुओं को प्रसन्न रखने का प्रयास करता रहता था और युआन-काल में अत्यधिक शक्तिवान सस्क्या सम्प्रदाय की लौकिक और आध्यात्मिक प्रमुखता पर प्रहार करना हितावह समझता था। उसने तिब्बती भिक्षु कुन को लान त्सान चि त्सान पो को "धर्मोपदेश निर्मित्त पूर्ण प्रज्ञा गुह्य जागृति युक्त राष्ट्र महागुरु" की तथा

एक अन्य तिब्बती भिक्षु को "बौद्धधर्म-प्रचारक राष्ट्ररक्षक पूर्ण प्रज्ञा गुह्य जागृति युक्त समस्त सम्प्रदाय के पश्चिमी जगत् का महान् मंगलमय स्वामी बुद्ध" की उपाधि दी। इनमें से दूसरे को चीन का बौद्ध सामान्य विषय महाधिकारी भी नियुक्त किया गया। तदुपरान्त उसके शिष्य राष्ट्रगुरु अथवा धर्माचार्य माने जाने लगे। सम्राट् चेंग-त्सु के समय में बहुत-से अन्य तिब्बती भिक्षु चीन आए। उनमें से पांच 'तिब्बत के पांच राजा' के नाम से प्रसिद्ध थे; दो पश्चिमी बुद्ध के पुत्र, नौ राष्ट्रमहागुरु और अठारह मुद्राभिषिक्त राष्ट्रगुरु कहलाते थे। तिब्बत ने इस प्रकार चीन की अधीनता स्वीकार की।[1]

मिंग-काल में चीन आने वाले तिब्बती भिक्षु, त्सोंग क्खपा के सम्प्रदाय की स्थापना के पूर्ववर्ती लामाधर्म की लाल-शाखा से सम्बन्धित थे। तिब्बत के क्रमशः लौकिक और आध्यात्मिक शासक दलाई और ताशी लामा त्सोंग क्खपा, गेलुग्पा अथवा "पुण्यशील मंडल" से सम्बद्ध थे।

त्सोंग-क्खपा का जन्म आधुनिक चीन की सीमा के अन्दर स्थित आम्डो जिले में मिंग-सम्राट् चेंग-त्सु के युंग-लो-कालीन १५ वें वर्ष (१४१७ ई०) में हुआ और उसकी मृत्यु सम्राट् हिएन-त्सुंग के चेंग-ह्वा-कालीन १४ वें वर्ष (१४७८ ई०) में हुई। उसने तिब्बती बौद्धधर्म के क्खदम्पा-सम्प्रदाय की दीक्षा लामा चोइक्याब ज्ञांग्पो से प्राप्त की, जो उत्तराधिकार-क्रम में दोम्शन से ७८ वाँ मठाध्यक्ष था। वह स्वतंत्र विचार वाला व्यक्ति था और उसने तिब्बती बौद्धधर्म के संगठन को उन्नत और पूर्ण करने का अपना उद्देश्य बना लिया था। उसने अतिसा के शोधित सम्प्रदाय का पुनर्संगठन कर के उसका नाम गेलुग्पा अथवा "पुण्यशील मंडल" रक्खा।

उसने "पंडित की लंबी पूछ वाली टोपी" का आविष्कार किया। यह त्सोंग-क्खपा के वस्त्रों के समान पीले रंग की थी, जब कि गुरु पद्मसंभव और अतिसा लाल रंग के कपड़े पहना करते थे। इस प्रकार त्सोंग क्खपा का नया सम्प्रदाय लोक में "पीली टोपी सम्प्रदाय" के नाम से प्रसिद्ध हो गया। तिब्बतीय चित्रों में त्सोंग-क्खपा को प्रायः पीली टोपी पहने और लम्बी टहनियों वाले दो कमल के फूल लिए दिखाया जाता है और इन फूलों पर मंजुश्री के आयुध—तलवार और पुस्तक (प्रज्ञापारमिता)—रक्खे होते हैं।

त्सोंग-क्खपा ने 'स्वर्ण विहार' की स्थापना की, जिसका पूरा नाम "पूर्ण-

---

१ दे० 'मिंग-वंश का इतिहास'

'विजय सुख महाद्वीप" है। यह विहार ह्लासा के २५ मील उत्तर-पूर्व अंग-क्खोर पहाड़ियों पर स्थित है। इस सुन्दर विहार की स्थापना के उपरान्त शीघ्र ही तिब्बती गेलुग्पा में गुरु के शिष्य "पुण्यशील मंडल के अनुगामी" के नाम से विख्यात हो गए। अपने शुद्ध नैतिक आचरण के कारण गेलुग्पा भिक्षु जनता के आदर के पात्र बन गए थे।

त्सोंग-क्खपा ने बहुत-से ग्रन्थ लिखे, जिनमें सब से प्रसिद्ध और तिब्बती बौद्धों द्वारा परम सम्मानित "लाम्रिम-चेन्मो" है। गुरु अतिसा का बोधिपथ प्रदीप त्सोंग-क्खपा के इस ग्रन्थ का मुख्य आधार था। उसका दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ लेग्स-ब्साद-स्निन पो है, जिसकी टीका खेदुब ने की। इस ग्रन्थ में तत्कालीन बौद्ध-सम्प्रदायों के मध्य परमतत्त्व-सम्बन्धी विवादों से सम्बन्धित मनोरंजक वृत्तांत दिए हुए हैं। यह ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण और योगाचार तथा माध्यमिक सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए अपरिहार्य है। त्सोंग-क्खपा ने इसमें समाधिनि-र्मोचन-सूत्र के अनेक अवतरणों को उद्धृत करके उनकी व्याख्या की है। इस सूत्र की शिक्षा यह है कि साधन-मार्ग में ध्यान और प्रज्ञा का मुख्य विषय, तत्त्वों की स्वतंत्र सत्ता का निषेधक, निरपेक्ष परमतत्त्व है। उसने अभिसमया-लंकार-सूत्र पर लेग्स-ब्साद-ग्सेर-फ्रेम नामक प्रसिद्ध टीका भी लिखी। तिब्बती परम्परा के अनुसार यह प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थ बोधिसत्त्व भट्टारक कृत माना जाता है। यह सूत्र प्रज्ञापारमिता-सूत्र का भाष्य है।

त्सोंग-क्खपा के तीन प्रमुख शिष्य थे, जिनके नाम ग्याल-त्शाब, खे-दुब, और गेदुन-दुब हैं। इन तीनों शिष्यों ने बौद्ध-तर्क-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे हैं। ग्याल-त्शाब की टीकाएं विचारों की गंभीरता और मौलिकता के लिए प्रसिद्ध हैं और खे-दुब की विस्तृत विवेचन के लिए। त्सोंग-क्खपा का भतीजा और शिष्य गेदुन-दुब महायान मत की गेलुग्पा शाखा का महालामा अभिषिक्त हुआ और उसने १४४७ ई० में ताशी ल्हुपो नामक प्रसिद्ध मठ का निर्माण कराया। उसके सहयोगी ग्याल-त्शाब और खे-दुब ने भी तिब्बत के दो अन्य प्रसिद्ध मठों-देपुंग या ब्राइपुन और सेरा मठ—का निर्माण कराया।[1]

प्रथम महालामा बौद्धधर्म और राजकार्य दोनों का संचालक था। मिंग-

---

१ दे० 'भारत और तिब्बत में बौद्ध धर्म का इतिहास' और (जें० आर० ए० एस०, लंदन में) रॉकहिल का 'चीनी स्रोतों के आधार पर तिब्बत का इतिहास' लेख

सम्राट् वू त्सुंग बौद्धधर्म पर अत्यधिक कृपालु था। सम्राट् स्वयं बौद्ध-दर्शन का पंडित था और संस्कृत भाषा अच्छी तरह जानता था। उसने अपने को "परमा-नन्द-धर्म सम्राट्" घोषित किया।

उसका उत्तराधिकारी सम्राट् शिह-त्सुंग ताओवाद के पक्ष में था और बौद्ध-मत को नापसन्द करता था। ताओवादी अधिकारी शाओ-युआन-चाओ उसका विश्वासपात्र था। उसको सम्राट् ने देश का 'सामान्य-ताओ-विषय प्रशासक' नियुक्त किया। कुछ वर्ष के उपरान्त के उसकी पदोन्नति हुई और वह शिष्टाचार तथा संस्कार-मंत्री के पद पर नियुक्त हुआ। उन दिनों बौद्धधर्म की अवनति हुई और ताओवाद देश भर में एक बार फिर फैल गया।[1]

(ग) उत्तरकालीन मिंग-युग के प्रमुख बौद्ध-भिक्षु

मिंग-सम्राट् शिह-त्सुंग द्वारा बौद्ध-विरोधी-आंदोलन के आरंभ के उपरान्त बौद्धधर्म की अवनति होने लगी थी; किन्तु मिंग-वंश के अन्तकाल में अनेक विशिष्ट बौद्ध-भिक्षुओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप, जिन्होंने धर्म-प्रचार के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था, बौद्धधर्म पुनः प्रतिष्ठित हो गया।

ज़ेन-सम्प्रदाय में निम्नलिखित प्रसिद्ध और लोकप्रिय भिक्षु हुए:—

युआन वू का लौकिक गोत्रनाम चिआन था। वह किआंग-सू प्रान्त के यि-शिन जिले के एक किसान-परिवार में उत्पन्न हुआ था। तीस वर्ष की आयु में गृह-त्याग कर के उसने मठ-प्रवेश किया। ध्यान मत का अध्ययन उसने लुंग-त्ज़े अथवा नागे-झील के भिक्षु चु आन से किया। एक बार उसने लगातार सौ दिन तक ध्यान का अभ्यास किया, जिसके अन्त में उसे बोधि-प्राप्ति हुई। चीनी बौद्ध-साहित्य में 'युआन-वू की सूक्तियों का अभिलेख' नाम की एक पुस्तक मिलती है।[2]

युआन-हिऊ का लौकिक गोत्र-नाम मिंग था और वह चिन-ही जिले का निवासी था। ध्यान की शिक्षा उसने भी भिक्षु चुआन से प्राप्त की थी। वह इस सूत्र पर ध्यान किया करता था—"जन्म लेने के प्रथम उसका वास्तविक चेहरा क्या था?" उसने मिंग-सम्राट् शेंग-त्सुग के समय में चिंग-पहाड़ियों में एक कुटी बनवाई थी।

---

१ दे० 'मिंग-वंश का इतिहास'

२ दे० 'चीनी बौद्धधर्म' और 'ध्यानाचार्य मि-युन की वंशावली'

हान शान ने ध्यान की दीक्षा भिक्षु फ़ा-हुई से ली थी और उसकी मृत्यु ७८ वर्ष की आयु में मिंग-सम्राट् सी-त्सुंग के तिएन-ची-कालीन तृतीय वर्ष (१६२३ ई०) में हुई। उसने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, जिनमें से निम्नलिखित प्रसिद्धतम हैं :—

१.	सद्धर्म पुंडरीक-सूत्र का सामान्य अर्थ	७ खंड
२.	महायान श्रद्धोत्पाद-शास्त्र की सीधी व्याख्या	२ खंड
३.	प्रज्ञापारमिता-सूत्र की सीधी व्याख्या	२ खंड
४.	महायान श्रद्धोत्पाद-शास्त्र की टीका की रूप-रेखा	१ खंड
५.	विपश्यना लंकावतार-सूत्र का अभिलेख	१८ खंड
६.	प्रज्ञापारमिताहृदय-सूत्र की सीधी व्याख्या	१ खंड
७.	मध्यम मार्ग का सीधा निर्देश	१ खंड
८.	ताओ ते चिंग पर टिप्पणियां	२ खंड

इनके अतिरिक्त 'हान शान की स्वप्न यात्राओं का संग्रह' और 'सूक्ति-अभिलेख' भी हैं, जिनका संपादन उसके शिष्यों ने किया।

चु-हुंग और चिन-के अवतंसक-संप्रदाय के अनुयायी थे। चु-हुंग को यद्यपि अवतंसक-संप्रदाय का माना जाता है ; पर उसने अपना सारा जीवन वास्तव में अमिताभ-सिद्धान्तों के प्रचार में व्यतीत किया था। वह प्रायः राजधानी पीकिंग को जाया करता था और वहाँ ध्यान-धर्म पर ध्यानी भिक्षु पिएन-योंग और हिआओ-येन आदि से विचार-विनिमय किया करता था। एक बार वह तुंग-चांग जिले को गया और वहाँ पहुँचते ही अचानक नगाड़े की आवाज़ सुनी। उसी क्षण उसको साक्षात्कार हो गया। उसने अपने जीवन का अन्तिम वर्ष हान-चाउ की युन-चि पहाड़ियों में बिताया और उसकी मृत्यु ८१ वर्ष की आयु में मिंग-सम्राट् ही-त्सुंग के तिएन-ची-कालीन चतुर्थ वर्ष (१६२४ ई०) में हुई।[१] उसने बौद्ध-दर्शन पर अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें से निम्नलिखित उपलब्ध हैं :—

१.	सुखावती व्यूह-सूत्र-टीका	४ खंड
२.	बौद्ध-धर्म पर ४८ प्रश्नोत्तर	१ खंड
३.	सुखावती पर शंका-समाधान	१ खंड
४.	अमिताभ द्वारा सुखावती में सत्कृत व्यक्ति का अभिलेख	३ खंड
५.	आत्म-विज्ञान-अभिलेख	१ खंड

१ दे० 'शाक्यमुनि वंश-अनुसंधान पर पूरक खंड'

६. बौद्ध-श्रमणों के लिए विनयानुशासन-व्यवस्थान १ खंड

भिक्षु चिन-के भी मिंग-काल के अन्तिम समय का एक प्रमुख भिक्षु है। वह पीकिंग में आचार्य पिएन-योंग से ध्यान-सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श किया करता था। उसने यह अनुभव किया कि चीनी त्रिपिटक में पुस्तकों की संख्या अत्यधिक होने के कारण सामान्य पाठकों में उसका प्रचार नहीं हो सकता ; अतएव उसने कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को चुना और अपने चयन के प्रकाशन एवं उत्कीर्णन का भार अपने शिष्यद्वय मी-त्सांग और हुआन-यु पर रक्खा। त्रिपिटक के मुद्रण के काष्ठ-ठप्पे "चिंग पहाड़ियों में स्थित चि-चाओ मठ" में रक्खे गए। उसकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं[1] :—

१. प्रज्ञापारमिता-सूत्र-व्याख्या १ खंड
२. प्रज्ञापारमिता हृदय-सूत्र की रूपरेखा १ खंड
३. प्रज्ञापारमिता हृदय पर सीधा प्रवचन १ खंड
४. प्राचीन त्जू-पा-संग्रह २९ खंड
५. प्राचीन त्जू-पा विशिष्ट-संग्रह ४ खंड

एक और प्रमुख भिक्षु चिह्-सू था, जिसका लौकिक गोत्रनाम चुंग था। अपनी युवावस्था में वह कनफ्यूशिअन मत के पक्ष में और बौद्धधर्म का विरोधी था। जब वह सत्रह वर्ष का था, तब उसने भिक्षु चु-हुंग की लिखी 'आत्म-विज्ञान अभिलेख भूमिका' और 'बाँस की खिड़की वाले सदन की वैकल्पिक लेखमाला' नामक पुस्तकें पढ़ीं। तब वह कनफ्यूशसीय मत से बौद्धमत में परिवर्तित हो गया। उसने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष हान चाउ की पश्चिमी झील के लिन-यिंग मठ में व्यतीत किए। उसकी मृत्यु मिंग-सम्राट् क्वाई-वांग के युंग-ली-कालीन ९ वें वर्ष (१६५४ ई०) में हुई। उसके निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं :—

१. बयालीस परिच्छेदीय सूत्र-व्याख्या
२. बुद्ध के अन्तिम उपदेशों के सूत्र की व्याख्या
३. सुखावती व्यूह-सूत्र की महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं
४. उल्लंघनपत्र सूत्र की नई टीका
५. महायान समथ विपश्यन धर्म-पर्याय (?)
६. सद्धर्म पुंडरीक-सूत्र की सीधी व्याख्या

---

१ दे० 'चीनी बौद्धधर्म'

७. हेतुविद्या महायान-प्रवेश

८. सतधर्म विद्यावर-शास्त्र

९. विद्यामात्रसिद्धि त्रिदशक टीका-शास्त्र

१०. धर्म-साहित्य-परीक्षा मार्ग-दर्शक ४८ खंड[१]

तदुपरान्त विविध बौद्ध-संप्रदायों में एकीकरण की प्रवृत्ति और बौद्ध तथा कनफ्यूशसय मतों के मध्य भी सामंजस्य के वातावरण का उदय हुआ। उदाहरण के लिए हम भिक्षु युआन-चेंग कृत कुआन-हुआन त्ज़ी को ले सकते हैं, जिसमें बौद्ध और कनफ्यूशसीय धर्मों की एकता की व्याख्या की गई है। चेंग-शिह्-यिंग ने 'मौलिक उपदेशों पर निबन्ध' नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमें इन दोनों मतों की समानता और अन्तर पर प्रकाश डाला गया है। मिंग-सम्राट् ताई-त्सु ने भी 'तीन धर्मों पर निबन्ध' और 'बौद्ध तथा ताओ धर्मो पर लेखमाला' नामक दो ग्रन्थ लिखे। मिंग-काल में यह विचार लोकप्रिय हो चला था कि तीनों धर्मों में सामंजस्य है।

(घ) मिंग-बुद्धिवाद और बौद्धधर्म

वांग यांग-मिंग को मिंग-बुद्धिवाद का आचार्य माना जाता था। वह चीकिआंग प्रांत के यु-याओ का निवासी था और उसका जन्म सम्राट् हिएन-त्सुंग के चेंग ह्वा-कालीन ८ वें वर्ष (१४७३ ई०) में हुआ था। जब वह अठारह वर्ष का था, तब एक बार कुआंग-हिन ज़िले से जाते समय उसने लोउ-लिआंग नामक एक कनफ्यूशसीय विद्वान् से भेंट की, जिसने उससे "पदार्थों के अनुसंधान" के विषय में बातें कीं। वांग यांग-मिंग बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि अध्ययन के द्वारा महात्मा बना जा सकता है। आगे चलकर उसने चु-ही की कृतियाँ पढ़ीं और यह ज्ञात किया कि कनफ्यूशसय के कथनानुसार सभी वस्तुओं में परम बुद्धि अन्तर्भूत है। अत: एक बाँस देखकर उसने उसका अन्वेपण करना आरम्भ किया। और यद्यपि उसने बहुत श्रमपूर्वक मनन किया ; पर उसे सफलता नहीं मिली और वह बीमार पड़ गया। सत्ताईस वर्ष की अवस्था में वह इस बात से बड़ा दुखी हुआ कि तब तक का उसका सारा प्रयास व्यर्थ चला गया था। तब उसने सम्यक् रूप से अध्ययन आरम्भ किया, किन्तु ज्ञान की उपलब्धि तब भी नहीं हुई। आगे चलकर वह फिर बीमार पड़ा। एक ताओवादी योगी की "पुष्टिदाता जीवन" के

---

१ दे० 'लिंगफ़ुन ध्यान शाखा पर निबन्ध'

विषय में बातें सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। तब उसने बौद्ध और ताओ दोनों धर्मों में खोज की और उनमें उसको मानसिक सहधर्मिता प्राप्त हुई। लगभग दस वर्ष के उपरान्त वह राजदरबार के कोप का भाजन हुआ और एक तुच्छ पद पर नियुक्त करके वह क्वाई-चाउ प्रांत के लुंग चांग येह में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ अकस्मात् एक आधीरात को "पदार्थों के अनुसंधान द्वारा ज्ञान के विस्तार" का अर्थ उसकी समझ में आ गया। और बिना यह अनुभव किए कि वह क्या कर रहा है, वह चिल्ला पड़ा तथा उठकर नाचने लगा, जिससे उसके नौकर आशंकित हो गए। उसने कनफ्यूशसवादी महात्माओं के इस सत्य का साक्षात्कार कर लिया कि व्यक्ति की अपनी प्रकृति स्वयं में पर्याप्त है और परम ज्ञान को अपने से बाहर खोजना भूल है।

इस ज्ञानोपलब्धि के उपरांत उसको पीकिंग वापस बुला लिया गया और अनेक दुरभिसंधियों के बावजूद दक्षिणी (किआंग सी, फ़ूकिएन और क्वांगतुंग) प्रांतों का शुन-फू नियुक्त हुआ, जहाँ उसने तीन महीनों के भीतर ही अनेक वर्षों से फैले डाकुओं के आतंक का दमन कर डाला। सम्राट् शिह-त्सुंग का राज्याभिषेक होने पर (१५२२ ई०) वांग-यांग-मिंग को साम्राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पदों में से एक युद्ध-मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। उसी वर्ष उसने अपने शिष्यों को केवल "प्रातिभ ज्ञान" के विषय में शिक्षा देना आरम्भ किया। चिआ-चेन-काल के तिंग हाई वर्ष के आठवें महीने (१५२७ ई०) में उसने स्सु-तिएन-युद्ध आरम्भ किया, जिसमें कतिपय आदिवासी जातियों को बिना रक्तपात किए वश में किया और चलकर उनकी परम्परागत शासन-पद्धति को फिर स्थापित कर दिया। उसकी मृत्यु सम्राट् शिह-त्सुंग के चिआ-चेन-कालीन ७ वें वर्ष (१५२९ ई०) में हुई।

वांग-यांग-मिंग के दर्शन में शिक्षा को 'प्रातिभ ज्ञान में उन्नति' की संज्ञा दी गई है। वांग-यांग-मिंग कृत चुआन-ही-लु अथवा 'आदेश आलेख' में उल्लेख है:—

"मनुष्य का मन परम गहन स्वर्ग का निर्माण करता है, और कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उसमें समाविष्ट न हो। आदि में इस स्वर्ग के सिवा और कुछ नहीं था, किंतु स्वार्थमयी इच्छाओं के कारण हमने वह आद्य स्वर्गिक अवस्था नष्ट कर दी। यदि अब हम अपने विचार प्रातिभ ज्ञान को विस्तृत करने पर एकाग्र करें, जिससे समस्त बाधाएँ और व्यवधान धुल जाएँ, तो वह आद्य अवस्था पुनः प्रतिष्ठित हो जाएगी और हम स्वर्ग की निगूढ़ता के अंश फिर बन जाएंगे।"

प्रातिभ ज्ञान की परिभाषा यांग-मिंग ने इस प्रकार की है—"हमारा वह स्वरूप जो स्वर्ग ने हमको प्रदान किया है, हमारे मन की प्राक्तन अवस्था, जो सहज ही बुद्धियुक्त और तीव्ररूप से चेतन है।" यांग-मिंग ने आग कहा है :—

"मनुष्य का प्रातिभ ज्ञान पादपों, वृक्षों, खपरैलों और पत्थरों का प्रातिभ ज्ञान है। यदि इन पादप आदि में यह प्रातिभ ज्ञान न हो, तो वे पादप, वृक्ष, खपरैल और पत्थर नहीं रह जाएंगे ; किन्तु यह क्या उनके सम्बन्ध में ही सत्य है? यदि स्वर्ग और पृथ्वी में मनुष्य का प्रातिभ ज्ञान न रहे, तो वे भी पृथ्वी और स्वर्ग नहीं रह जाएंगे। तथ्य यह है कि स्वर्ग और पृथ्वी और सभी वस्तुएं प्राक्तन रूप से मनुष्य के साथ एक एकाकी इकाई बनाते हैं, जिसका विशुद्धतम रूप आत्मा और बुद्धि का वह लघु अंश है, जिससे मनुष्य के मन का निर्माण हुआ है।"—अतएव अगले अवतरण में हमें बताया गया है कि—"एक बार नानचेन नगर में गुरुवर टहलने जा रहे थे। उनके एक मित्र ने ऊंची चट्टान पर उसे फूलों से लदे ऊंचे पेड़ की ओर संकेत करके कहा—"आप कहते हैं कि स्वर्ग और पृथ्वी में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो मन के बाहर हो ; किन्तु मेरे मन का इस एकान्त चट्टान पर फूले हुए पेड़ से क्या सम्बन्ध है?" गुरुवर ने उत्तर दिया—"तुम्हारे इन फूलों के देखने के पहले ही यह फूल और तुम्हारा मन सभी विस्मृति के गर्भ में विलुप्त हो जाते हैं ; लेकिन जब उनकी ओर दृष्टिपात करते हो, तब उनका सुन्दर रंग तुरन्त स्पष्ट हो जाता है। इस बात से तुम कैसे कह सकते हो कि यह तुम्हारे मन के बाहर है?"

उपर्युक्त दो अवतरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यांग-मिंग ने मन को 'केवल आत्मा या चेतना' माना है। इस मन के अतिप्रदीप्त प्रकाश के प्रति प्रेम करने से प्रातिभ ज्ञान प्रकट होता है। हमें जो करना है, वह केवल 'बिना कुछ घटाए-बढ़ाए' इस प्रातिभ ज्ञान के अनुसार आचरण करते रहना है। साधु पुरुष का वर्णन करते हुए यांग-मिंग ने कहा है कि—

"उसका प्रातिभ ज्ञान धूल के स्वल्पतम आच्छादान से रहित स्वच्छ दर्पण की तरह देदीप्यमान होता है। सामने पड़ने पर सुन्दर और कुरूप वस्तुओं की प्रतिमाएं उसमें प्रतिबिंबित हो उठती हैं, लेकिन स्वयं दर्पण में कोई चिह्न नहीं रह जाता।"

इस संबंध में हमें यह स्वीकार करना होगा कि वांग-यांग-मिंग का दर्शन ध्यान-संप्रदाय के सिद्धांतों के समीप है।

यांग-मिंग का सब से प्रसिद्ध शिष्य वांग लुंग ही है, जो अपने गुरु के ज़िले का ही निवासी था। उसका जन्म सम्राट् हिआओ-त्सुंग के हुंग-ची-कालीन ११ वें

वर्ष (१४९८ ई०) में हुआ था। उसने अपने गुरु के सिद्धांतों का प्रचार देश भर में किया। आगे चलकर उसने अपने गुरु के दर्शन से असंतुष्ट होने पर उसकी कमियों को बौद्ध सिद्धांतों की सहायता से पूर्ण किया, किंतु उसने इस अनुपूरण का श्रेय अपने गुरु को ही दिया। इस प्रकार ध्यान-सिद्धांतों के समीप जाने में उसने यांग-मिंग के बुद्धिवाद को समृद्ध किया।

वांग लुंग-ही के दर्शन का मुख्य सिद्धांत 'अन्-अस्तित्व के चार रूपों के सिद्धांत' के नाम से विख्यात है। उसका कहना है कि बिना कुछ घटाए-बढ़ाए मन को क्रिया की स्वयं स्फूर्त धारा का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार वह 'मन रहित मन' बन जाता है, और उसकी विचारणा 'विचारणा रहित विचारणा', उसका ज्ञान 'ज्ञान रहित ज्ञान' और बाह्य पदार्थ 'पदार्थ रहित पदार्थ' हो जाते है; क्योंकि मनुष्य का मन इसी प्रकार का है, 'निश्चय ही पाप का अस्तित्व प्राक्तन नहीं है, लेकिन फिर पुण्य का अस्तित्व भी नहीं ठहर सकता।' अपने अनस्तित्व के चार रूपों वाले सिद्धांत की पुष्टि में उसने ध्यानी भिक्षु हुई नेंग को उद्धृत किया है—"पाप और पुण्य के विषय में विचार न करो, लेकिन अपने विचारों (की धारा) को भंग भी न करो।" अतः वह इस परिणाम पर पहुंचा कि यही महायान दर्शन है और बौद्ध सत्य को प्राप्त करने का केवल यह ही एक मार्ग है।

वह बुद्धिवाद को बौद्धधर्म के निकट ही नहीं ला रहा था, उसकी यह भी धारणा थी कि कनफ्यूशस धर्म, ताओवाद और बौद्धधर्म में कोई मौलिक भेद नहीं है। उसने कहा है—

"इन तीनों धर्मों की शिक्षा का मूल स्रोत एक ही है। ताओवाद के संस्थापक लाओ-त्जे ने 'शून्यता' के विषय में कहा है, किन्तु कनफ्यूशस के उपदेशों में भी 'शून्यता' के अर्थ का वर्णन मिलता है। बुद्ध ने शांति के विषय में कहा है, किन्तु कनफ्यूशस के उपदेशों में भी शांति के अर्थ का उल्लेख है। उनमें कौन भेद कर सकता है? आज कनफ्यूशस के अनुयायी इन तीनों धर्मों के मूल के विषय में निश्चय न कर पाने के कारण प्रायः दो धर्मों को विधर्मी मानते हैं और इस प्रकार ठीक निर्णय कर सकने की क्षमता के अभाव को अपने में प्रकट करते हैं।"[1]

यह शब्द वाई और त्सिन-कालीन समन्वयवादी दृष्टिकोण की ओर पुनरागमन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

---

१ दे० 'त्रिधर्म भवन अभिलेख' और 'लुंग-ही संग्रह'

अध्याय १२

चिंग-काल में बौद्धधर्म

(क) सम्राटों द्वारा बौद्धधर्म को श्रद्धांजलि-अर्पण

चिंग-वंश की स्थापना मंचुओं ने की थी और उसके भाग्य में चीनी इतिहास के दीर्घतम जीवी राजवंशों में से एक होना लिखा था। चिंगकाल में साम्राज्य अपनी भौगोलिक पराकाष्ठा को पहुंच गया था। मुख्य चीन, मंचूरिया, मंगोलिया, सिकिआंग और तिब्बत उसके प्रत्यक्ष शासनाधिकार में थे और नेपाल, श्याम, ब्रह्मदेश, लाओस, अन्नाम, लिऊ चिउ द्वीप और कोरिआ न्यूनाधिक प्रतीकात्मक आधिपत्य स्वीकार करने के उपलक्ष्य में उसे खिराज देते थे। चिंग-काल के उत्कर्ष के समय चीन भौतिक और आध्यात्मिक समृद्धि के अभूतपूर्व शिखर पर पहुंच गया था।

मंचु-शासन के अंतिम त्रिचतुर्थ-काल में मंचुओं की ओजस्विता क्षीण और उनकी शक्ति स्खलित होने लगी। इसके अतिरिक्त पश्चिम के नए समाघात के फलस्वरूप चीनी जीवन का सुपरिचित संगठन भी विशृंखल होने लगा। उस समय बौद्धधर्म या तो लुप्त हो गया, या उसमें गंभीर परिवर्तन किए गए। प्रजातंत्र स्थापित होने पर बौद्धधर्म एक बार फिर लहलहा उठा।

पीकिंग में राज्य करने वाला प्रथम मंचू, जो अपने शासन-काल के नाम शुन-चिह से प्रसिद्ध है, बौद्धधर्म और विशेषकर ध्यान-संप्रदाय के पक्ष में था। क्रमशः वह कट्टर धर्मांध हो गया। अपने शासन के पंद्रहवें वर्ष में शुन-चिह ने ध्यानाचार्य तुंग हिऊ के पास पीकिंग पधारने की प्रार्थना करने के लिए अपना राजदूत भेजा। तुंग-हिऊ चीन में ध्यान-संप्रदाय की लिंग-ची शाखा की ३१ वीं पीढ़ी में था। पीकिंग में आते ही तुंग हिऊ ने सम्राट् के अनुरोधानुसार वान-शान महल में उपदेश करना आरंभ कर दिया। तदुपरांत दरबार के पश्चिमी उद्यान में उसका स्वागत हुआ। वहाँ सम्राट् के साथ वह बौद्धधर्म पर सामान्य विचार-विमर्श किया करता था। इसके बाद वह पर्वतों में एकांतवास करने चला गया और उसका शिष्य हिंग-शेन महल में बना रहा। सम्राट् ने तुंग-हिऊ को 'ता चिआओ पु चि चान शिह' अथवा 'महाप्रज्ञा सार्विक पारक नौका ध्यान महाचार्य'

की उपाधि तथा उसके शिष्य हिंग-शेन को 'मिंग ताओ चेन चिआओ चान शिह' अथवा 'बुद्ध सर्वज्ञान बोधिधर्म ध्यानाचार्य' की उपाधि प्रदान की[1]।

सम्राट् शिह-त्सु के शुन-चिह-कालीन १६ वें वर्ष की शीतऋतु (१६५९ ई०) में बौद्धधर्म पर परामर्श देने के लिए भिक्षु ताओ-त्रेन को फिर बुलाया गया। अगले वर्ष वह अपने मठ को वापस चला गया। सम्राट् ने उसे राजधानी के उत्तरी द्वार पर विदा दी और उसे 'ता चिआओ चान शिह' अथवा 'महा प्रज्ञा ध्यानाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया।[2]

सम्राट् शुन-चिह स्वयं 'संबुद्ध' होना चाहता था, इसलिए उसने अपने सिंहासन के दाहिनी ओर निम्नलिखित वाक्य अपने को सचेत रखने के निमित्त खुदवा रक्खा था :—

"यह न सोचना कि इस बुढ़ापे में तुम बौद्धधर्म को सीख लोगे, लेकिन ऐसे बहुत-से युवक हैं, जो कब्र में तुम से पहले जा चुके हैं।"

यद्यपि सम्राट् शुन-चिह के पक्ष में था, तो भी उसने बौद्ध-मंदिरों के निर्माण और भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्या पर नियंत्रण रक्खा। उसने मिंग-कालीन प्रणाली के अनुसार एक बौद्ध-प्राधिकारी-मंडल स्थापित करने का आदेश भी निकाला[3]।

सब से आश्चर्य की बात यह हुई कि उसने बौद्ध और ताओ धर्मों के नए मठों और इमारतों का निर्माण बंद करवा दिया। बौद्धों और ताओवादियों को अपने-अपने घर वापस जाना पड़ा, और भिक्षुणियाँ दासियों के रूप में अफ़सरों के पास भेज दी गईं। यदि कोई मठ में प्रविष्ट होना चाहता था, तो पहले उसको एक प्रमाण-पत्र लेना पड़ता था, अन्यथा दंड-स्वरूप उसको अस्सी बार पीटा जाता था। बौद्ध-भिक्षुओं और ताओवादियों को चालीस वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को शिष्य बनाने की आज्ञा नहीं थी[4]। किंतु यह प्रतिबंध शुन-चिह-काल में बहुत थोड़े दिन ही चला।

सम्राट् शुन-चिह का उत्तराधिकारी उसका नाबालिग पुत्र हुआ, जो साधारण तौर से कांग-सी के नाम से प्रसिद्ध है। राज्यारोहण के समय उसकी आयु सात वर्ष की भी नहीं थी। उसने सम्राट् के पद का भार लगभग ६२ वर्ष सम्हाला।

---

१ दे० चिआंग वाई चाओ कृत 'चीनी बौद्धधर्म का इतिहास'

२ दे० वही

३ दे० चिआंग वाई-चाओ कृत 'चीनी-वंश का इतिहास'

४ दे० 'महान् चिंग विधान'

कांग-सी ने अपनी शक्ति ही चीन में स्थापित नहीं रक्खी, अपनी प्रजा की भौतिक समृद्धि के परिवर्धन में सक्रिय भाग लिया और साहित्य तथा धर्म को प्रोत्साहन दिया। साहित्य के क्षेत्र में उसके कार्यों में 'कांग-सी का चीनी कोष' का प्रमुख स्थान है। अब भी सब से अधिक प्रयोग में आने वाला यही कोष है। यह साहित्यिक शब्दों का विशाल वर्गीकृत संग्रह है, विश्वकोष है और तुकों का कोष भी। सम्राट् अपना काफी समय पर्यटन करने में बिताया करता था, जिससे महल की दीवारों के बाहर के संसार की गति-विधि वह अपनी आँखों से स्वयं देख सके।

अपने राज्य के २३ वें वर्ष में उसने प्रथम बार दक्षिण चीन की यात्रा की। वह तिएन निंग अथवा 'स्वर्गिक शांति मठ' तथा किआंग्सू प्रांत में यांग-चाउ के पिंग शान अथवा 'मैदानी पहाड़ी मठ' को भी गया। दोनों मठों ने सम्राट् का हस्ताक्षर-संदेश प्राप्त किया। उसने इन दोनों में से प्रथम को 'निर्जन शांति' स्थल और दूसरे को 'आनंददायिनी समस्वरता' का नाम दिया। तदुपरांत वह चिन-शान-स्सु अथवा 'स्वर्ण पर्वत मठ' को गया, जिसकी मरम्मत सम्राट् की आज्ञानुसार की जा चुकी थी। उसके प्रवेश-द्वार पर उसने एक पद्य लिखा— 'किआंग तिएन यी लान' अर्थात् 'सरिताएं और आकाश दोनों ही आँखों के आगे आ जाते हैं।' इस पंक्ति में उस स्थान के दृश्य का वर्णन था।

अपने राज्य के २८ वें वर्ष में उसने फिर दक्षिण चीन की यात्रा की। वहाँ वह सू-चाउ के तेंग-वाई पर्वत-स्थित शेन एन स्सु अथवा 'पवित्र अनुकंपा मठ' के दर्शनों को गया, जहाँ उसने बुद्धप्रतिमा को धूपदान किया और मठ का वर्णन करते हुए वहाँ के प्रवेश-पट पर यह पद्य लिखा दिया—'चीड़, वायु, जल और चाँद का स्थान।' तदुपरांत वह लिंग-यिन और युन-ही मठों को गया और बाद को ता पाओ एन स्सु अथवा 'महा प्रतिप्रदायक अनुकंपा मठ' को लौट आया।

चीनी साहित्य का विद्वान् और बौद्ध धार्मिक साहित्य से अनभिज्ञ होने पर भी वह बौद्धधर्म का आदर करता था।[१]

सम्राट् के बहुत-से पुत्र थे और उत्तराधिकार के संबंध में ज्येष्ठत्व का नियम प्रचलित नहीं था। इसलिए सम्राट् के जीवन के अंतिम वर्ष राज्यारोहण विषयक स्पर्धा-जन्य संघर्ष के कारण अशांति में बीते। अंततः जो राजकुमार उत्तरा-

---

१ दे० 'चिंग-वंश के इतिहास का स्थूल प्रारूप'

धिकारी चुना, गया वह अपने शासन-काल के युंग-चेन नाम से प्रसिद्ध है। उसने केवल १२ वर्ष राज्य किया। वह बौद्धधर्म का अच्छा विद्वान् था।

उसने धर्म की दीक्षा तिब्बती लामा चांग-चिआ हु तु खा से ली थी, जिसको सम्राट् शुन-चिह् ने 'अभिषेचन प्रज्ञा और विराट् अनुकम्पा का चांग चिआ हु तु खा तु' की उपाधि से समादृत किया था। उसने एक बौद्ध नाम, युआन मिग चु शिह् अथवा 'पूर्ण बोधि प्राप्त उपासक', धारण किया। सम्राट् ने प्राचीन साहित्य से अनेक बौद्ध-सूक्तियों का चयन कर के उन्हें उन्नीस खंडों में 'सम्राट् द्वारा संगृहीत ध्यानाचार्यों की सूक्तियाँ' के नाम से प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में चार खंड थे—(१) मुख्य खंड, (२) द्वितीय भाग, (३) पूर्व भाग, और (४) उत्तर भाग। भिक्षु सेन-चाओ, युंग-चिआ, ह्वान-शान, सिह्-ती, वाई शान, निआंग-शान, चाओ-चाउ, युन-मेन, युंग-मिंग, हुएह्-तौ, युआन वू, तुंग हिउ, हिंग-शेन आदि तेरह भिक्षु मुख्य खंड में हैं। इस संकलन में ताओवाद की दक्षिणी शाखा के प्रसिद्ध आचार्य चांग-लिंग-सो और स्वयं सम्राट् की सूक्तियाँ भी सम्मिलित की गईं। द्वितीय खंड में अमिताभ-संप्रदाय के महान् पंडित चु-ह्नुंग के प्रमुख ग्रन्थ थे। पूर्व और उत्तर खंडों में बोधिधर्म के युग के बाद चीन मे आए हुए ध्यानाचार्यों की कृतियों में से चुने हुए अंश थे। ग्रन्थ के अंत में 'प्रस्तुत बौद्ध-संगीति की सूक्तियों का संग्रह' भी संलग्न था।

इस संग्रह ग्रन्थ में ध्यानी आचार्यों की अनेक गंभीर सूक्तियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ, 'चाओ-चाउ की अभिलिखित सूक्तियों' में अग्रलिखित है :—

"गुरुवर ने नान चुआन से पूछा—'ताओ किसके सदृश है?' चुआन ने उत्तर दिया—'सामान्य मन ही ताओ है।' तब गुरु ने फिर पूछा, कि 'ताओ का लक्ष्य क्या है?' इसका उत्तर मिला—'ताओ का वर्णन करने से ताओ ताओ नहीं रह जाता।' गुरु ने फिर पूछा—'यदि ताओ का वर्णन नहीं कर सकते हो, तो यह कैसे जानोगे कि ताओ है?' उत्तर मिला—'ताओ का वर्गीकरण ज्ञान या अज्ञान में नहीं किया जा सकता। ज्ञान भ्रान्तियुक्त चेतना है और अज्ञान अंधी चेतना है। यदि यदि तुम संदेहातीत ताओ को समझ सको तो (देखोगे कि) वह एक विस्तीर्ण अरुद्ध शून्य की भांति है और तब उचित और अनुचित का विभेदीकरण उस पर कैसे लादा जा सकता है।"

सम्राट् युंग-चेन कनफ्यूशसीय मत, ताओवाद और बौद्धधर्म, तीनों धर्मों का समन्वय करने का आग्रह करता था। उसका राजादेश था :—

"तीनों धर्मों के नाम चीन के वाई और त्सिन-युगों (२२०–४२० ई०)

से आरंभ हुए। (अनेक) पीढ़ियों ने कनफ्यूशसवाद का आदर किया और ताओ-वाद तथा बौद्धधर्म की भर्त्सना की। मेरी धारणा है कि लाओ-त्जे कनफ्यूशस का समकालीन था और दोनों धर्मों में बहुत कम अन्तर है। बुद्ध का जन्म पश्चिमी जगत् (भारत) में कनफ्यूशस से अनेक वर्ष पूर्व हुआ था। यदि उन्होंने एक ही स्थान में जन्म लिया होता, तो प्रत्येक को बराबर सम्मान मिला होता।"

सम्राट् युंग-चेन की मृत्यु लगभग ५० वर्ष की आयु में हुई और उसका उत्तराधिकारी चिएन-हिंग नामक उसका एक पुत्र हुआ। उसने अपने ८५ वें वर्ष में, सुदीर्घ दशकों तक शासन कर चुकने के उपरांत, १७९६ ई० में राज्य-त्याग किया और १७९९ ई० में अपनी मृत्यु-पर्यन्त राज्य-व्यवस्था पर प्रभुत्व जमाए रहा। अपने पितामह चिएन-लुंग के समान वह भी विद्याप्रेमी था। वह स्वयं भी बहुत उर्वर लेखक था। उसने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के नए संस्करण तैयार कराए और उसके समय में अनेक "विश्वकोष" संकलित एवं मुद्रित हुए। यहाँ यह उल्लख कर देना उचित होगा कि यह "विश्वकोष" विविध विषयों पर विशिष्ट निबंधों के संकलन न होकर प्रस्तुत पुस्तकों के उद्धरणों से निर्मित हुआ करते थे। इन में मानवीय ज्ञान की समस्त भूमि का परिचय देने का प्रयास किया जाता था और इनको 'चार पुस्तकालय, यानी, प्राचीन उत्कृष्ट साहित्य, इतिहास, दर्शन और साहित्य' कहते थे।

इसके अतिरिक्त उसने एक राजादेश द्वारा त्रिपिटकों के चीनी अनुवाद के अज़दहा नामक मिंग-संस्करण में सम्मिलित करने के लिए बौद्ध-भिक्षुओं के ग्रन्थों को चुनवाया, जिससे उनकी संख्या ७,१७४ हो गई। यह कार्य सम्राट् यंग-चेन के समय में आरंभ होकर सम्राट् चिएन-लुंग के काल में समाप्त हुआ। उसने चीनी त्रिपिटकों का मंचूरिअन भाषा में भी अनुवाद करवाया। इसके अनुवाद और मुद्रण का कार्य चिएन लुंग के राज्यकाल के ३७ वें वर्ष (१७७२ ई०) में आरंभ हुआ और ५५ वें वर्ष में सम्पन्न हुआ। उस समय सम्राट् की प्रसन्नता की कल्पना हम सहज ही कर सकते हैं। इसका नाम राष्ट्रभाषा में 'त्रिपिटिक' रक्खा गया और उसमें १०८ बंडलों में, ६९९ खंडों में २,४६६ ग्रन्थ थे।

अपने राज्य के २४ वें वर्ष में उसने हो शिह-चुआंग और राजकुमार युआन लो को संस्कृत जानने वाले कुछ व्यक्तियों को एकत्र करने का आदेश दिया। उनको त्रिपिटकों से धारणियों को संगृहीत करने का काम सौंपा गया। धारणियों के इस ८८ खंडीय समुच्चय का नाम 'मंचूरिअन, चीनी, मंगोल और तिब्बती भाषाओं से संकलित धारणियों का विशाल संग्रह' है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ

में 'भाषाओं की ध्वनियों के निर्देशक रेखाचित्र' भी छः खंडों में संलग्न थे। एक खंड में 'वर्णमाला कैसे पढ़ें' और दूसरे में 'धारणी कैसे पढ़ें' का वर्णन है। खंडों की कुल संख्या ९६ है और वह सचमुच एक असाधारण एवं विराट् ग्रन्थ है।

सम्राट् चिएन-लुंग का राज्यकाल शांतिपूर्वक समाप्त होने के बाद उसका पुत्र चिआ-चिंग १७९६ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसी के शासन-काल में चीन को इंग्लैंड से पहली बार युद्ध करना पड़ा, जिसका अंत २९ अगस्त १८४२ ई० की असमान संधि में हुआ। चीन के लिए यह घोर राष्ट्रीय अपमान का विषय था। उस समय देश में प्रबल आंतरिक अशांति होने के कारण बौद्धधर्म की प्रगति रुक गई। अधिकांश कनफ्यूशसवादी अंग्रेजों के विरुद्ध थे और बौद्ध-मंदिर गृहस्थों के अधिकार में थे। उसी समय से बौद्धधर्म की अवनति निश्चितरूप से होने लगी।

(ख) चिंग-काल में लामावाद

चिंग-सम्राट् कांग-ही के समय में चीन समृद्ध हुआ और तिब्बत तथा मंगोलिया पर भी उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। चौदहवीं शताब्दी के अंत और पंद्रहवीं के आरंभ में लामा त्सोंग खा पा ने धार्मिक सुधार का आंदोलन आरंभ किया, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। आगे चलकर इस नए संप्रदाय के प्रधान, दलाई लामा और पांचन लामा हो गए। इन दोनों में से प्रत्येक पद का उत्तराधिकारी अपने पूर्ववर्ती का अवतार माना जाता था और सिद्धांत-रूप से यह विश्वास किया जाता था कि उनके अनुक्रम का श्रीगणेश पश्चिमी स्वर्ग के अधीश्वर अमिताभ अथवा बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर से हुआ। राजनीतिक दृष्टि से दलाई लामा पांचन लामा से अधिक शक्तिशाली था और उसकी राजधानी ल्हासा थी। मिंग-सम्राट् उसका आदर करते थे और पूर्वकालीन मंचुओं ने भी उससे मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रक्खा। १७०० ई० में सम्राट् कांग-ही ने चौथे दलाई लामा को अन्तर्मंगोलिया का प्राधिकारी नियुक्त किया और पीकिंग तथा जेहोल में क्रमशः उसका निवास-स्थान और कार्यालय स्थापित किया। इन लामाओं के उत्तराधिकार का निर्णय पहले दलाई लामा किया करता था, लेकिन १९१२ ई० में मंगोलिअन महालामा के ऊपर दलाईलामा के औपाधिक प्रभुत्व की यह स्थिति समाप्त हो गई।

सम्राट् कांग-ही के राज्यकाल के अंत में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर

तिब्बत में उपद्रव हुआ। मंगोलों ने एक उम्मीदवार का समर्थन किया और ल्हासा पर अधिकार कर के चिंग-पक्षीय दल को उन्होंने मौत के घाट उतार दिया। उस समय ऐसा लगा कि एक और नए मंगोल राज्य का उदय होने जा रहा है। १७२० ई० में चिंग-अधिकारियों ने सेना भेजी और राजधानी ल्हासा पर अधिकार कर लिया। १७२३ ई० में चिंग-सम्राट् ने तिब्बत में एक 'अधिवासी राजनीतिक मंत्री' नियुक्त किया, जिसका कार्यालय ल्हासा में था। इसके अतिरिक्त लामाओं की रक्षा करने के लिए राजधानी में २००० सैनिकों का रक्षक दल टिका दिया गया। उसके उत्तराधिकारी सम्राट् चिएन-लुंग ने सिंहासनारूढ़ होने पर सीमांत की देखरेख के निमित्त केन्द्रीय सरकार में एक 'तिब्बतीय विषय विभाग' स्थापित किया।[1]

नए दलाई लामा के चुनाव की प्रणाली बहुत ही मनोरंजक है। यह विश्वास किया जाता है कि दिवंगत दलाई लामा की आत्मा किसी शिशु में तत्काल ही फिर जन्म लेती है। ऐसे बालक को कुछ अलौकिक लक्षणों के आधार पर पहचाना जाता है। देश-भर में ऐसे बालकों की खोज की जाती है, जिनका जन्म दलाई-लामा की मृत्यु के समय हुआ हो और जन्म के समय कोई असामान्य घटना या अलौकिक शकुन हुए हों। इन चुने हुए बच्चों की जाँच एक परिषद् करती है, जिसके सदस्य प्रमुख अवतारी लामा और राज्य के कतिपय प्रधान अधिकारी होते हैं। बच्चों के सामने बहुत-सी चीजें रख दी जाती हैं, जिनमें कुछ ऐसी भी होती हैं, जो दिवंगत दलाई लामा के नित्य उपयोग में आती थीं। जो बच्चे इन चीजों को ठीक पहचान लेते हैं, उनके नाम अलग-अलग कागजों पर लिख लिये जाते हैं। तदुपरांत प्रत्येक कागज़ तहाकर चिपका दिया जाता है और ऐसे सब नामांकित कागज़ एक स्वर्ण-कलश में रख दिए जाते हैं। इसके बाद लग-भग एक सौ प्रमुख लामागण एक मास या अधिक तक बारी-बारी से अखंड पूजनोच्चार करते रहते हैं। अंत में उपस्थित लामाओं में सब से प्रमुख लामा एक लंबा चिमटा लेकर स्वर्ण-कलश के संकरे गले में डालता है और किसी एक नामांकित कागज़ को निकाल लेता है। उसमें जिस बालक का नाम निकलता है, उसी को दलाई लामा घोषित किया जाता है। आगे चलकर इस चुनाव-पद्धति में कुछ गोल-माल होने लगा। अतः सम्राट् चिएन लुंग ने आज्ञा निकाली कि नाम-पत्र तिब्बत में चीन के अधिवासी राजनीतिक मंत्री के सामने, मध्यतिब्बत

---

१ दे० चाओ अरचिंग कृत 'चिंगकालीन इतिहास की स्थूल रूप-रेखा'

के ता चाओ मठ में रक्खे जाएं, स्वयं मंत्री ही नाम-पत्र खोले और नाम पढ़कर सुनाए।

उन्हीं दिनों सम्राट् चिएन-लुंग ने विद्वान् लामाओं द्वारा तिब्बती भाषा से कांजुर के २७० खंडों का अनुवाद मंगोल भाषा में करवाया। यह कार्य १७४० ई० में आरंभ होकर एक वर्ष में समाप्त हुआ। अवलोकन और परीक्षा के लिए अनुवाद सम्राट् के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। सम्राट् ने उसको प्रकाशित कर के मंगोलिया-भर में उसका वितरण करवाया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के उपरांत चीनी भाषा में बौद्धधर्म पर लिखित प्रथम मौलिक ग्रन्थ, काश्यप-मातंग कृत बयालीस परिच्छेदीय सूत्र, प्रकाशित हुआ। आगे चलकर इसका तिब्बती अनुवाद किया गया, जिसका मंगोली भाषांतर प्रज्ञोदय (?) व्यास (मंगोल विद्वान् का संस्कृत नाम) ने चिंग-सम्राट् चिएन-लुंग के राज्यकाल (१७८१ ई०) में किया।

तिब्बत और मंगोलिया में जातक बहुत लोकप्रिय थे। जिनके दो संग्रह—उलीगरुन दलाई अथवा 'करुणासिंधु' और आल्तन गरल अथवा 'स्वर्ण प्रभा' सुप्रसिद्ध थे। उलीगरुन मूल चीनी ग्रन्थ पर आधारित है। चीनी मूल ग्रन्थ का नाम 'दममुक निदान-सूत्र' या 'हेतु-सूत्र' या 'पंडित और मूर्ख आख्यानक' था। 'शिह किआ मुन नि फ़ु युआन लिउ चिंग' नामक २४ खंडीय मंगोलीय ग्रन्थ इस चीनी ग्रन्थ का अनूदित रूप है। सातवें दलाई लामा ब्लो-ब्ज़ान-ब्स्काल-ब्ज़ान-ग्यां-म्त्सो का मंगोलीय जीवन-चरित्र ३४६ बड़े फ़ोलिओ पृष्ठों में १७०५—१७५८ ई० में पीकिंग में मुद्रित हुआ।

एक विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—चिन्तामणि-कारिका (?) अथवा—चिंतामणि माला, जो एक तिब्बती धार्मिक कथाओं के ग्रन्थ का पाठ-भेद है। यह कथाएं बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के प्राचीन ग्रन्थ 'मनि ब्काह् हबुम' के आधार पर प्रसिद्ध लामा जु अतीश (९८३—१०५५) द्वारा वर्णित मानी जाती हैं। कौअले स्वा की (क्रेस्टोमैथी प्रथम) ने इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग को प्रकाशित किया है और उसका कहना है कि ग्रन्थ की शैली प्रांजल तथा आकर्षक है और ग्रन्थ के मध्य में यत्र-तत्र सर्वत्र अनेक पद्यवद्ध अवतरण समाविष्ट हैं। इस ग्रन्थ का एक उत्तम संस्करण (३४४ फ़ोलिओं में) चिंग-सम्राट् कांग-ही के राज्यकाल में पीकिंग में तैयार किया गया था।

परिशुद्ध लामावाद के संस्थापक त्सोंग खपा का मुख्य ग्रन्थ 'ब्यान-चुब-लाम-ग्यी रिम-पा' अथवा 'संक्षिप्त लाम-रिम', यानी 'पूर्णता का क्रमिक पथ' था।

इसके मंगोलीय अनुवाद 'मुर-उन-त्सर्ग' का अध्ययन मंगोलिया में, विशेषकर १८ वीं शताब्दी में, बड़े उत्साह से किया जाता था।

चीन में मंगोल-साम्राज्य के विध्वंस के बाद मंगोल जाति दो भागों में विभक्त हो गई। मरुस्थल के दक्षिण में रहने वालों का नाम मेंग-गु बना रहा, किंतु उत्तर में रहने वालों ने अपना नाम 'को-र्ह-को' अथवा खल्खा रख लिया। सम्राट् युंग-चेन के राज्य के प्रथम वर्ष में रिम्पोची की मृत्यु पीकिंग में हो जाने पर, सम्राट् ने उसकी अंत्येष्टि क्रिया, दलाई लामा के सदृश, संस्कारों की विधि से करने के लिए उसकी शवपेटिका खल्खाओं के स्थान अर्गा भेजने के निमित्त आदेश दिया। उन्हीं दिनों पाँचवें दलाई लामा का एक शिष्य पीकिंग आया, जहाँ चिंग सरकार के अधिकारियों ने उसका बड़ा सत्कार किया। वह दक्षिण मंगोलिया के डोलोन-नोर में नियुक्त था। अपने-अपने स्थान पर दोनों की शाखाएं थीं। इस प्रकार लामाधर्म की चार शाखाएं थीं :—

१. पोटाला शाखा
२. ताशील्हुम्पो शाखा
३. अर्गा शाखा
४. डोलोन-नोर शाखा।

(ग) चिङ्-कालीन बौद्ध-सम्प्रदाय

संस्कृत-ग्रन्थों के चीनी अनुवादों का ज्ञान सुप्रसारित हो जाने पर, चीनी भिक्षु विविध संप्रदायों के सिद्धांतों को, जिन में भारतीय बौद्धधर्म बहुत दिनों से विभक्त हो चुका था, अधिक अच्छी तरह समझ सके। इनमें से अनेक संप्रदायों का प्रवेश चीन में हुआ और आगे चलकर विशुद्ध चीनी उपक्रम से इनकी अनेक नई शाखाएँ पल्लवित हुईं।

चिंग-कालीन संप्रदायों में बहुत-सी बातें मिंग और सुंग-कालीन संप्रदायों के समान थीं। यहाँ एक लघु विभेद का उल्लेख कर देना आवश्यक है, और वह यह है कि पुनः स्थापित लु-त्सुंग अथवा पाओ ह्वा पर्वत का विनय-संप्रदाय अभी भी चीनी विनय बौद्धधर्म का केन्द्र है। चान, भारतीय शब्द ध्यान का चीनी रूप है। इस संप्रदाय की पाँच शाखाओं में से एक, लिंग-ची, देश में सर्वाधिक लोकप्रिय और समृद्ध है। अन्य शाखाओं का ह्रास हो गया। चिंग-काल के अंतिम वर्षों में जब 'पवित्र लोक' सम्प्रदाय प्रचलित था, तिएन-ताई संप्रदाय अच्छी दशा में था। धर्मलक्षण-संप्रदाय केवल बौद्ध-विद्वानों तक ही सीमित रहा,

और मठों में निश्चित-रूप से उसकी स्थापना नहीं हो सकी। गुह्य विद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मौलिक विचारों की खोज में चीनियों को वास्तव में तिब्बत या जापान जाना पड़ता है। चिंग-कालीन बौद्ध संप्रदायों का विस्तृत वर्णन नीचे दिया जा रहा है :—

(१) **विनय-संप्रदाय**—चिंग-काल के आरंभिक समय में कु-हिन नामक एक महान् बौद्ध-भिक्षु था, जिसने अपने शिष्यों—सान-माई और चिएन युएह—सहित अपना सारा जीवन विनय-सिद्धांतों के प्रचार में लगा दिया। इस प्रकार विनय-संप्रदाय की पुनः प्रतिष्ठा हुई। इसके अतिरिक्त विनय और शील के प्रचार के लिए सान-माई ने भी एक केन्द्र नानकिंग के पाओ ह्वा पर्वत में स्थापित किया था। उसके बाद चीन के हर भाग से प्रति वर्ष बौद्ध-विद्वान् और भिक्षु शिक्षा ग्रहण करने के लिए वहाँ आने लगे। तदनंतर उत्तर या दक्षिण के किसी मठ को यदि विनय-प्रचार के निमित्त किसी संगीति का आयोजन करना होता था, तो वह पाओ ह्वा पर्वत के परंपरागत नियमों का अनुसरण करता था।

भिक्षु कु-हिन किआंगसू प्रांत के लि-यांग जिले का रहने वाला था और उसका लौकिक गोत्र-नाम तथा उपनाम यांग-जू हिन था। मठ-प्रवेश करने के उपरांत उसने शांसी प्रांत की उत्तरी-पूर्वी सीमा के निकट बौद्धधर्म के चार पवित्र पर्वतों में से एक, वू-ताई पर्वत की १००० मील की यात्रा पैदल ही की। वहाँ उसने बोधिसत्त्व मंजुश्री का आदेश प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। मंजुश्री ने उसको अपना दर्शन दिया और कहा—'हे भिक्षु, कु-हिन, मैं विनयादेश तुम्हें दे चुका हूं।' वह वहां से नानकिंग लौटने पर विनय का प्रचार करने लगा। उसको बोधिसत्त्व उपालि का अवतार माना जाता था। उपालि शूद्र जाति का नाई था, जो बुद्ध का शिष्य हो गया था और प्रथम बौद्ध-संगीति के तीन स्थविरों में से एक था। वह विनय का प्रधान संग्रहकर्त्ता माना जाता है और इस कारण उसे 'धर्मपाल' की पदवी प्राप्त हुई है। कु-हिन को मरणोपरांत 'हुई युन फ़ा स्सु' अथवा 'प्रज्ञा मेघों का धर्माचार्य' की उपाधि मिली।

भिक्षु सान-माई क्वांग-लिंग का निवासी था और उसका गोत्र-नाम तथा उपनाम चिएन चि-कुआंग था। वह इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही भिक्षु हो गया था। उसने आरंभ में अवतंसक-संप्रदाय का अध्ययन किया और आगे चलकर नानकिंग में कु-हिन से प्रव्रज्या ग्रहण की। कु-हिन उसके पांडित्य का प्रशंसक था और उसने उसकी महत्त्वाकांक्षा का समर्थन कर के उसे विनय-प्रचार का

कार्य करने का परामर्श दिया। सान-माई ने शील और विनय के प्रचारार्थ नान-किंग से ७० मील दूर पाओ-ह्वा पर्वत में एक केन्द्र स्थापित किया। उसके पाठ्य-क्रम का अध्ययन करने वाले शिष्यों की संख्या सहस्रों तक पहुंच गई थी। सम्राट् शुन-चिह के राज्य के द्वितीय वर्ष में २ जून को उसने जनता को अग्रलिखित संदेश दिया—"दूसरों को सुधारने का मैं अपना काम कर चुका, अब मैं इसी ४ तारीख को आप सब से विदा लूंगा।" यह संकल्प लेकर उसने वस्त्र बदलकर और मुसकराते हुए, ६६ वर्ष की आयु में प्राण त्याग दिए। उसने 'ब्रह्मजाल-सूत्र की सीधी टीका' की रचना चार खंडों में की।

हिंआंग-हुएह और चिएन-युएह नामक उसके दो प्रसिद्ध शिष्य थे। हिआंग हुएह ने भिक्षु सान-माई से विनय की शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ अवतंसक-सिद्धांतों का भी अध्ययन किया। वह पाओ-ह्वा पर्वत में कई वर्ष रहा। तदुपरांत वह चांग-चाउ के तिएन-निंग-स्सु अथवा स्वर्गिक शांति मठ में रहने मैदान में आया और वहाँ विनय का प्रचार किया। उसने सुरांगम-सूत्र रत्न के दस खंड लिखे हैं।

चिएन-युएह दक्षिणी युनान प्रांत के पाइ-लो ज़िले का निवासी था और उसका लौकिक गोत्र-नाम एवं उपनाम हु-तु-दी था। उसके माता-पिता की मृत्यु तभी हो गई थी, जब वह १४ वर्ष का था। २७ वर्ष की आयु में वह अपने घर से चिएन-चाउ को गया, जहाँ संयोगवश एक वृद्ध भिक्षु से उसे अवतंसक-सूत्र की प्रति मिल गई। इस ग्रन्थ के अध्ययन ने उसे सोते से जगा दिया। युन-लुंग पर्वत के महाबोधि-मठ में उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और धर्मगुप्त के पाठभेद के अध्ययन में तल्लीन हो गया। उसका देहावसान सम्राट् कांग-ही के शासन के १८ वें वर्ष (१६७९ ई०) में ७९ वर्ष की आयु में हुआ। निम्न-लिखित ग्रन्थ उसके द्वारा प्रणीत माने जाते हैं :—

१. महायान का गुह्य अर्थ — १ खंड
२. दैनिक जीवन के लिए विनयानुशासन की रूप-रेखा — १ खंड
३. भिक्षु-आचार-नियम — १ खंड
४. अनुशासन-आदर्श — ४ खंड
५. भैषज्य गुरु क्षमयति — १ खंड

चिएन-युएह के दो प्रमुख शिष्य थे। उनमें से एक यी-चिएह था, जिसका उपनाम फ़ु-हान था। वह पाओ-ह्वा पर्वत से आकर (वर्तमान चीकिआंग प्रांत की राजधानी) हान-चाउ के चाओ-चिंग मठ में रहने लगा था। उसने अपना

सारा जीवन विनय के प्रचार में व्यतीत किया। उसने आठ खंडों में 'उपासकों के लिए ब्रह्मजाल बोधिसत्त्व शील' नामक ग्रन्थ लिखा है।

चिएन युएह् का दूसरा शिष्य तिंग-हान था, जिसका गोत्र और उपनाम लिन-ते-चि था। बौद्ध-दर्शन में उसकी बड़ी रुचि थी। अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरांत वह सूचाउ के पाओ लिन स्सु यानी 'रत्न उद्यान मठ' में भिक्षु हो गया। अपने गुरु से उसने विनय की शिक्षा प्राप्त की। उसकी मृत्यु ६७ वर्ष की आयु में सम्राट् चिएन-लुंग के राज्य के २५ वें वर्ष (१७६० ई०) में हुई। निम्नलिखित ग्रन्थ उसके द्वारा रचित माने जाते हैं :—

१.	पाओ-ह्वा पर्वत का अभिलेख	१२ खंड
२.	विनय की रूप-रेखा	१६ खंड
३.	कर्म की विशद व्याख्या	१४ खंड

(२) **ज़ेन-संप्रदाय**—सुंग और मिंग-काल से ज़ेन-संप्रदाय देश भर में फैल गया। ध्यान के क्षेत्र में लिंग-ची शाखा का शीर्षस्थान है। चिंग-वंश के अंतिम चरण में अन्य संप्रदायों के साथ इसका भी अवसान हुआ। इसकी विविध शाखाओं के संबंध में विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :—

(अ) **लिंग-ची शाखा**—चिंग-काल के आरंभिक युग में यह शाखा युआन-वू और युआन हिऊ नामक दो ध्यानाचार्यों का अनुसरण करती थी। युआन वू का एक प्रसिद्ध शिष्य ताओ वेन था, जिसका गोत्र-नाम लिन था और जो क्वांग-तुंग की राजधानी चाओ-चाउ का निवासी था। तीस वर्ष की आयु में उसने 'ता-हुई की सूक्तियों के अभिलेख' को पढ़ा और तभी उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ, अतएव वह गृहत्याग कर के हान-शान तथा ह्वांग-पो से ध्यान की दीक्षा लेने लु-शान पर्वत गया। तत्कालीन सम्राट् शुन-चिह बौद्धधर्म पर परामर्श करने के लिए उसे दरबार में आमंत्रित किया करता था। इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। उसकी मृत्यु सम्राट् कांग-ही के राज्य-काल के १३ वें वर्ष (१६७४ ई०) ७९ वर्ष की आयु में हुई। उसने 'चिऊ-हुई की अभिलिखित सूक्तियाँ' और 'उत्तरी यात्राओं का अभिलेख' नामक ग्रन्थ लिखे हैं।

यु-लिन नामक एक अन्य ध्यानी भिक्षु, युआन-हिऊ की शाखा का अनुयायी था। सम्राट् की प्रार्थना पर वह ध्यान-दर्शन पर विचार-विनिमय करने राज दरबार गया था। उसने सम्राट् से 'ता चिआओ पु चि चान शिह' अथवा 'महाबोधि सर्व-दया युक्त ध्यानाचार्य' की उपाधि प्राप्त की थी। उसकी मृत्यु सम्राट् कांग-ही-के राज्य के १४ वें वर्ष (१६७५ ई०) में ६२ वर्ष की आयु में 'अनुकम्पा

मेघ मठ ' में हुई। मृत्यु के पहले उसने कुछ वाक्य लिखे, जिनमें उस ने घोषित किया—"न जन्म है, न मृत्यु है, यही सच्चा सिद्धांत है।" उसकी 'अभिलिखित सूक्तियां' सुप्रसिद्ध हैं।

ज़ेन-संप्रदाय की सान-फ़ेंग शाखा दक्षिणी चीन में प्रचलित थी। इस शाखा का प्रेरक भिक्षु यु आन-वू और संस्थापक फ़ा-त्सांग (जो तांग-कालीन फ़ा-त्सांग से भिन्न है) था। एक बार वह अखंड ध्यान में सौ दिन तल्लीन रहा और बोधि प्राप्त होते समय उसको एक बाँस के ठूंठ से ध्वनि सुनाई पड़ी। उसके हुंग-ली और हुंग-चू नामक दो प्रसिद्ध शिष्य थे। उन्होंने सम्राट् कांग-ही के राज्य-काल में ध्यान-संप्रदाय के प्रचार में बड़ी सफलता प्राप्त की और उनके शिष्यों ने उसको देश के प्रत्येक भाग में व्याप्त कर दिया।

हुंग-ली हुई-ची का निवासी था और उसका गोत्र-नाम चांग था। वह दस से अधिक बौद्ध-मठों का मठाधीश था और उसने ध्यान-संप्रदाय का प्रचार तीस वर्ष तक किया। वयोवृद्ध होने पर वह चिन-शान पर्वत में एकांतवास करने चला गया। जब तिएन निंग (स्वर्गीय शांति मठ) के अधिकारियों ने उससे प्रवचन करने की प्रार्थना की, तब उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मठ में अपने प्रवचन के अंतिम दिन उसने सब सेवकों को रात्रि की पूजा के लिए तैयारी करने की आज्ञा दी। अगले दिन वह बहुत सबेरे ही उठ बैठा और अपने नौकर को पुकार कर जल्दी में कहा—"मेरे साथ शीघ्र स्वर्ग चल।" और जैसे ही नौकर आया, वह शांतिपूर्ण चिर निद्रा में मग्न हो गया।

हुंग-चु किआंगसु प्रांत के नान तुंग जिले का निवासी था। उसका गोत्र-नाम ली था। बौद्धधर्म का अध्ययन उसने फ़ा-त्सांग से किया था। पहले वह तिएन-ताई पर्वत स्थित नेंग-ज़ेन और कुओ-चिंग मठ में रहता था। वहाँ से वह सूचाउ के लिंग-यिंग मठ में चला आया और वहाँ बहुत दिन रहा। उसकी मृत्यु सम्राट् कांग ही के राज्य के ११ वें वर्ष (१६७२) में हुई और उसने सौ से अधिक खण्डों में संगृहीत 'अभिलिखित सूक्तियां' की रचना की।

'सिद्धांत-संप्रदाय की वंशावली-संबंधी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का इतिवृत्त का लेखक चि-यिन कहता है—"लोग इन भिक्षुओं — फ़ा-त्सांग, हुंग-ली, और हुंग-चू—को बौद्धधर्म के त्रिरत्न मानते थे।" इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि सान-फ़ेंग शाखा उस समय प्रचलित थी।

(आ) त्साओ-तुंग शाखा—इस शाखा की चिंग-काल में दो उल्लेखनीय उपशाखाएं थीं — युआन-चेंग और हुई-चिंग। युआन-चेंग के सात महान् शिष्य

थे, जिन में से एक, मिंग हुएह, ने धर्म-प्रचार का कार्य चिन-तेंग को हस्तांतरित किया। चिन-तेंग का उत्तराधिकारी चिन-हिएन हुआ, जिसने चिआओ-शान पर्वत शाखा को पुनःस्थापित किया।

चिह-हिएन किआंग-सु प्रांत में स्थित ई-चेन का रहने वाला था। उसका गोत्र और उपनाम चेंग कु-चाओ था। केवल ग्यारह वर्ष की आयु में वह गृहत्याग कर भिक्षु हो गया था। ध्यान की शिक्षा उसने चिएन-तेंग से प्राप्त की। एक बार उसने कहीं यह वाक्य पढ़ा—"वह आदमी कहां रहता है, जो विचार के अभाव को अनुभव करता हो और स्वप्नरहित हो ?" इसके अर्थ के विषय में उसके मन में बड़ी शंका हुई। एक दिन वह अकस्मात् छोटी पहाड़ी से गिर पड़ा और तत्क्षण उसे बोधि प्राप्त हो गई। चिग-तेंग ने उसे चिआओ-शान मठ का अधिष्ठाता नियुक्त किया और वहाँ वह ४० वर्ष रहा।

चिंग-काल में ज़ेन-संप्रदाय की चिआ-शान-शाखा के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति निम्नलिखित हैं :—

फ़ु-यी वूचांग का निवासी था और उसका गोत्र तथा उपनाम ली मिन-हिऊ था। केवल पंद्रह वर्ष की आयु में उसने हान-यांग के क्वाई-युआन-मठ में प्रवेश किया। तदुपरांत कई वर्षों तक उसने चिआओ-शान-मठ के अध्यक्ष-पद पर कार्य किया। चिंग-सम्राट् चिएन-लुंग के राज्य-काल में चेन-किआंग में, जहाँ चिआओ-शान स्थित है, भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। तब फ़ू-यी ने जनता में ३०,००० पिकुल (१ पिकुल = लगभग १¾ मन) चावल जनता में बंटवाया। उसकी मृत्यु ८५ वर्ष की आयु में हुई।

चेंग ताओ वूचांग का निवासी था और उसका गोत्र तथा उपनाम लिआंग चि-चाउ था। उसने पि-येन से बौद्धधर्म का अध्ययन करीब तीन वर्ष किया। एक बार उसने समुद्री ज्वार की लहरों की आवाज सुनी और उसी समय उसको बोधि प्राप्त हो गई। तदुपरांत वह चिआओ-शान मठ का अध्यक्ष नियुक्त हुआ, जिसकी यात्रा सम्राट् चिएन-लुंग ने दो बार की थी। उसकी मृत्यु सम्राट् चिएन-लुंग के राज्य के ५५ वें वर्ष में ६६ वर्ष की आयु में हुई।

लिआओ-चिआन आनह्वाई के हू-यी ज़िले का रहने वाला था और उसका गोत्र तथा उपनाम लाई युएह-हुई था। जब ताई पिंग तिएन कुओ सैनिकों ने चिंग शान मठ में आग लगा दी, तब उसने वहाँ रहने वाले सभी भिक्षुओं को एकत्र कर के चिआओ शान मठ को भेज दिया, जिसकी रक्षा उन सैनिकों ने की, वे उससे बौद्धधर्म का उपदेश प्राप्त कर चुके थे।

हुई-चिंग के दो प्रसिद्ध शिष्य थे—एक ज़ेन संप्रदाय की पोशान शाखा का युआन-लाई और दूसरा कुशान शाखा का युआन-हिएन। यह दोनों शाखाएं चिंग-काल के आरंभ में सुप्रचलित थीं।

युआन-लाइ सु-चिएन का निवासी था और उसका उपनाम वू-यी था। एक हज़ार विद्वान् उससे बौद्ध-दर्शन का अध्ययन कर रहे थे। तीसरी पीढ़ी में हान-हाओ प्रधान हुआ, जो कैंटन का निवासी और चिंग-सम्राट् चिएन-लुंग का सम-कालीन था। उसने दो ग्रन्थों की रचना की—आठ खंडों में 'लंकावतार सूत्र पर मानसिक संस्कार' और दस खंडों में 'सुरांगम सूत्र की सीधी अभिव्यक्ति'।

युआन-हिएन चिएन-यांग का निवासी था और उसका गोत्र एवं उपनाम त्साई-युंग-चिआओ था। वह कनफ्यूशसीय-मत का पंडित था। चालीस वर्ष की आयु में हुई-चिंग से दीक्षा लेकर वह बौद्ध हो गया। वह कुशान पर्वत में लगभग तीस वर्ष रहा और सम्राट् शुन-चिह के राज्य के १४ वें वर्ष (१६५७ ई०) में उसकी मृत्यु हुई। निम्नलिखित ग्रन्थ उसके रचित माने जाते हैं :—

१. जागरण का एक शब्द
२. वज्रसूत्र-टीका
३. सुरांगम-सूत्र-टीका
४. हृदय-सूत्र-निर्देश
५. धर्मगुप्त का रेखाचित्र
६. विनय-प्रवेशिका
७. बुद्धधर्म-प्रचार अभिलेख

ताओ-पाई चिएन आन का निवासी था। उसका गोत्र और उपनाम तिन वाई-लिन था। कु-शान के युआन हिएन से दीक्षा लेकर चौदह वर्ष की आयु में उसने मठ-प्रवेश किया। अपने जीवन के अंतिम २० वर्ष वह कु-शान मठ का अध्यक्ष रहा। वह एक उर्वर लेखक था। उसकी प्रसिद्धतम रचनाएं निम्नलिखित हैं :—

१. बौद्धधर्म की अभिलिखित सूक्तियाँ
२. प्रज्ञापारमिता-सूत्र की संयुक्त टीका
३. बयालिस-परिच्छेदीय-सूत्र-निर्देशक
४. महापरिनिर्वाण-सूत्र-निर्देशक
५. सद्धर्मपुंडरीक-सूत्र-टीका की रूप-रेखा

अभी कुछ समय पूर्व कु-युएह नामक एक ध्यानाचार्य हुआ है, जो फ़ू-किएन प्रांत के मिएन-होउ का रहने वाला था। वह कु-शान मठ में भिक्षु हुआ था और उसकी मृत्यु चीनी प्रजातंत्र के आठवें वर्ष (१९१९ ई०) ७७ वर्ष की आयु में हुई।

(३) **अवतंसक-संप्रदाय**—मिंग-युग के अंतिम समय में यह संप्रदाय अनुन्नत दशा में था, किंतु चिंग-युग के आरंभ में उसका फिर उत्कर्ष हुआ। इसका श्रेय भिक्षु पाइ-शाउ को है, जिसने अपना सारा जीवन संप्रदाय के पुनरुत्थान में लगा दिया था। उसका गोत्र और उपनाम शेन जेन-फ़ा था और वह जेन-हो ज़िले का निवासी था। उसने बीस वर्ष की आयु में बौद्धधर्म का अध्ययन भिक्षु मिंग-युआन से 'अनुकम्पा मेघ मठ' में किया था। वह सोलह वर्ष का होने पर भिक्षु हुआ था और सुरांगम-सूत्र, प्रज्ञापारमिता-सूत्र तथा अवतंसक-सूत्र आदि के अनुशीलन में संलग्न हो गया था। उसकी मृत्यु सम्राट् युंग-चेन के राज्य के छठे वर्ष (१७२८ ई०) में हुई। उसने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है :—

१.	लंकावतार-सूत्र अभिलेख	३८ खंड
२.	श्रद्धोत्पाद-शास्त्र का रेखाचित्र	२ खंड
३.	वज्रसूत्र की सीधी व्याख्या	५ खंड
४.	बयालीस-परिच्छेदीय-सूत्र की टीका	५ खंड
५.	सुखावती-व्यूह पर टिप्पणियाँ	१ खंड
६.	भैषज्याचार्य-सूत्र टीका	६ खंड
७.	अवतंसकानुसार बौद्धधर्म के पाँच विभागों का शिष्टाचार	६ खंड
८.	महापरिनिर्वाण-सूत्र की टीका	४ खंड
९.	सुखावती और स्वर्ग पर कविताएं	१ खंड
१०.	महाकरुणा-धारणी-व्याख्या	१ खंड
११.	अवतंसक-धारणी के दस तत्त्व	२ खंड
१२.	अवतंसक-संप्रदाय के महास्थविरों के संस्मरण	१४ खंड

अवतंसक-संप्रदाय का दूसरा महत्त्वपूर्ण भिक्षु ता-यी था, जो सम्राट् कांग-ही का समकालीन था। उसने 'सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र-बोध' नामक ग्रन्थ लिखा, जो इस समय भी उपलब्ध है। भिक्षु क्वांग-तु ने, जो पीकिंग के चंदन-मठ का अध्यक्ष तीस वर्ष तक रहा, महायानमूलगत-हृदय-भूमि-ध्यान पर आठ खंडों में टीका लिखी, जो सम्राट् कांग-ही के राज्य के ३५ वें वर्ष (१६९६ ई०) में पूर्ण हुई। उसके अतिरिक्त, 'पुष्प-चयन मठ' के ता-तिएन नामक भिक्षु ने भी बौद्ध-धर्म पर बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, जिनमें निम्नलिखित विशेष प्रसिद्ध हैं :—

१.	सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र-निर्देश-टीका	७ खंड
२.	सुरांगम-निर्देश-टीका	१० खंड
३.	सम्यक् संबोधि-सूत्र-प्रकाशक-टीका	४ खंड

चिंग-युग के आरंभिक काल मे, उन्नति करने के कुछ समय बाद अवतंसक-सम्प्रदाय की फिर अवनति हुई। चिंग-युग के अंतिम चरण में यांग वेन हुई नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् था, जिसने जापान से अवतंसक-साहित्य के ऐसे बहुत-से ग्रन्थ संग्रह किए, जो चीन में नष्ट हो चुके थे। उसने इन ग्रन्थों को स्वयं ही संपादित कर के 'अवतंसक-धर्मसाहित्य-संग्रह' के नाम से प्रकाशित किया। इस प्रकार अवतंसक-संप्रदाय पुनः प्रतिष्ठित हो गया।

भिक्षु युएह-हिआ हुएह प्रांत में ह्वांग-कांग का निवासी था। उसका गोत्र और उपनाम ह्रु हिएन-चु था। उन्नीस वर्ष की आयु में ही वह भिक्षु हो गया था और उसने चिन-शान तथा तिएन-निंग मठ की यात्रा की थी। एक दिन उसने विमल-कीर्ति-निर्देश-सूत्र पढ़ा और पढ़ते ही दो दिन के लिए समाधि-मग्न हो गया। तदुपरांत वह बौद्ध-दर्शन के अध्ययन में दत्तचित्त हुआ। उसने हुएन और किआंग-सु प्रांतों में अनेक बौद्ध-संस्थाओं की स्थापना की। उसने पीकिंग में एक बौद्ध-प्रशिक्षण-विद्यालय भी स्थापित किया था, जिसे आगे चलकर प्रजातंत्र की क्रांतिकारी सेना ने नष्ट कर दिया। उसने जापान, श्याम, लंका तथा भारत की यात्रा की, जहाँ उसने विशेषतया बौद्धतीर्थ श्रावस्ती के प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उसने शंघाई में अवतंसक-विश्वविद्यालय स्थापित किया और वहाँ अवतंसक-सूत्र, लंकावतार-सूत्र, श्रद्धोत्पाद-सूत्र आदि की शिक्षा तीन वर्ष तक दी। उसका देहांत ३१ दिसंबर १९१७ ई० को, ६० वर्ष की आयु में हुआ।

(४) **तिएन ताई-संप्रदाय**---मिंग-कालीन भिक्षु ओ-यी के समय से तिएन ताई-संप्रदाय लिंग-फ़ेंग की शाखा बन गया था, जिसमें तिएन ताई और सुखावती दोनों संप्रदायों की शिक्षा दी जाती थी। सम्राट् कांग ही के समय में लिंग-फ़ेंग संप्रदाय के दो प्रसिद्ध भिक्षु लिंग-चिएह और लिंग-याओ थे। लिंग चिएह ने 'क्षिति-गर्भ-बोधिसत्त्व-पूर्वप्रणिधान-सूत्र पर टिप्पणियाँ' लिखीं और लिंग-याओ ने 'तिएन ताई संप्रदाय के अनुसार (बौद्ध) उपदेशों के चार विभागों पर संगृहीत टिप्पणियों की रूप-रेखा', 'महायान समता विपशून्य निर्देश' (दो खंडों में) और 'भैषज्या-चार्य-सूत्र की सीधी व्याख्या' नामक ग्रन्थों की रचना की। अभी कुछ समय पहले तिएन ताई-संप्रदाय का ति-हिएन नामक एक महान् भिक्षु हुआ है। वह चीकिआंग प्रांत में ह्वांगयेन जिले का रहने वाला था और उसका गोत्र तथा उपनाम च कु-हू था। अपने चाचा की आज्ञानुसार पहले उसने चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया, किन्तु वह इस समस्या का उत्तर नहीं पा सका कि औषधि बीमारी

को तो दूर कर देती है, लेकिन वह जीवन को पूर्ण क्यों नहीं कर पाती? इस कारण उसकी रुचि पारलौकिक विषयों में हो गई। जब वह २२ वर्ष का था, तब अपनी माता का देहांत हो जाने पर वह घर छोड़कर भिक्षु हो गया। तदुपरांत उसने भिक्षु मिंग-त्सु के आदेशानुसार सद्धर्म-पुंडरीक-सूत्र का अध्ययन किया। चीन में प्रजातंत्र की स्थापना के बाद वह नीपो के कुआन त्सुंग स्सु अथवा 'मुख्य धर्म धरणा मठ' के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुआ। इस मठ में तीन भवन हैं—अभिताभ के सिद्धांतों की शिक्षा देने के लिए ध्यान-भवन, और कुआन-त्सुंग भवन जो अनुसंधान और प्रचार-विभाग के दो भवनों में विभक्त है। आजकल प्रत्येक बड़े मठ में प्रमुख भिक्षु उपदेश देते रहते हैं। इनमें से अधिकांश भिक्षु कुआन-त्सुंग स्सु के ही स्नातक हैं। १९१५ और १९१७ ई० के मध्य ति-हिएन सुरांगम-सूत्र और पूर्ण बोधि-सूत्र पर प्रवचन देने पीकिंग गया, जहाँ उसके व्याख्यानों को सुनाने के लिए हज़ारों लोग एकत्र होते थे। वज्र-सूत्र, पूर्णबोधि-सूत्र, अमिताभ-षोडश-ध्यान-सूत्र, और समंतभद्र-प्रतिज्ञा का वज्र-सूत्र का नित्य पाठ उसकी दिनचर्या का अंग जीवन पर्यन्त रहा। उसकी मृत्यु ३ अगस्त १९३२ को ६० वर्ष की आयु में हुई। उसके विशेष प्रसिद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१. सम्यक संबोधि-सूत्र पर व्याख्यान
२. समंतभद्र-प्रतिज्ञा की रूप-रेखा की टीका
३. वज्र-सूत्र की नई टीका
४. अवलोकितेश्वर के सर्वद्वार पर अध्याय

(५) **पवित्रलोक-संप्रदाय**— यह संप्रदाय अमिताभ के नाम के अनवरत जप में विश्वास करता है और तांग-काल में भिक्षु शान-ताओ के प्रचार के बाद देशभर में प्रचलित हो गया है। सुंग-युग के उपरांत चीन के सभी बौद्ध-संप्रदाय अमिताभ के नाम-जप को बोधि-प्राप्ति का एक साधन मानने लगे। इस संप्रदाय के प्रमुख भिक्षु, आरंभिक मिंग-काल में शेन-आन और मेंग-तुंग और उसी युग के उत्तरकालीन भाग में कु-कुन हुए हैं। आधुनिक काल के प्रजातंत्र में भी चिंग-कुआंग नामक भिक्षु हुआ है।

शेन-आन किआंग्सू के चांग-सू जिले का निवासी था। उसका गोत्र और उपनाम शिह शिह-हिएन था। वह आजीवन निरामिष आहारी रहा। पंद्रह वर्ष की आयु में प्रवज्या ग्रहण कर उसने भिक्षु शाओ-तान के आदेशानुसार सुरांगम और विमलकीर्त्ति-सूत्र का अध्ययन किया। उसने अपना सारा जीवन पवित्रलोक-

संप्रदाय के प्रचार में व्यतीत किया। सम्राट् चिएन लुंग के राज्य के ५८ वें वर्ष (१७९३ ई०) में बुद्ध-जयंती के दिन उसनें अपने सभी शिष्यों को पास बुलाकर कहा—"अगले वर्ष ४ अप्रैल तक मैं पश्चिमी स्वर्ग में बुला लिया जाऊंगा।" और फिर नित्य अमिताभ के नाम का १००० बार जप करता रहा। अगले वर्ष उसी दिन उसने स्नान किया और कुर्सी पर बैठा और स्वाभाविक-रूप से प्राण त्याग दिए। उस समय उसकी अवस्था ४९ वर्ष की थी। निम्नलिखित ग्रन्थ उसने लिखे हैं :—

१. पवित्रलोक की कविताएं
२. प्रतिज्ञा जन्मपरिग्रह प्रतिज्ञा पर टिप्पणियाँ
३. शारिका-क्षमयति
४. निर्वाण क्षमयति

भिक्षु मेंग-तुंग होपेह् में फ़ेंग-जुन का निवासी था। उसका गोत्र और उपनाम मा चिएह्-वू था। जब वह २२ वर्ष का था, तब वह बहुत बीमार पड़ा, जिससे उसकी समझ में यह आ गया कि सभी वस्तुएं अनित्य हैं; जन्म, सत्ता, मरण सभी अनित्य हैं। इस प्रकार उसको वैराग्य-बुद्धि प्राप्त हुई। नीरोग होने पर उसने गृह त्यागकर प्रवज्या ले ली और ध्यान गुरु शुन से बौद्ध-दर्शन पढ़ने लगा। तदुपरांत वह हुंग-लू पर्वत के त्जू फ़ु स्सु अथवा 'कल्याण संग्राहक मठ' में दस वर्ष रहा। उसका देहांत सम्राट् चिआचिंग के राज्य के दसवें वर्ष १० दिसबर (१८०५ ई०) को ७० वर्ष की आयु में हुआ। उसके द्वारा प्रणीत दो ग्रन्थ माने जाते हैं—'अमिताभ बुद्ध नाम जपगाथा' और 'ध्यानी भिक्षु चिएह्-वू की अभिलिखित सूक्तियाँ'। तज़े फ़ु स्सु के ता-मु नामक एक अन्य भिक्षु नें, जो सम्राट् ताओ-कुआंग का समकालीन था, एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम है—'पवित्रलोक-संप्रदाय द्वारा निर्दिष्ट जन्म लेना जन्म लेना नहीं है—विषय पर निबंध'।

भिक्षु कु-कुन का दूसरा नाम लुएन-ही था और वह सम्राट् तुंग-चिह् का समकालीन था। उसने अपना सारा जीवन पवित्रलोक-संप्रदाय के प्रचार में अर्पित कर दिया था। उसके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ हैं :—

१. पवित्र लोक-दर्शन का वैकल्पिक पाठ्यक्रम
२. पुंडरीक-सम्प्रदाय पाठ्य-पुस्तक
३. अमिताभ नाम-जप के महत्त्वपूर्ण शब्द
४. अमिताभ नाम-जप के चार तात्त्विक आदेश

५. पश्चिमी स्वर्ग प्रत्यागमन की संस्कार-विधि

भिक्षु यिंग कुआंग शेंसी-प्रांत के हो-यांग ज़िले का निवासी था, जिसका गोत्र और उपनाम चाओ-शेंग-लिआंग था। इक्कीस वर्ष की अवस्था में उसको जगत् की अनित्यता का बोध हुआ और वह युआन कुआंग स्सु अथवा 'बुद्ध प्रभा मठ' में भिक्षु हो गया। तदुपरांत वह फा यु स्सु अथवा 'धर्म वर्षा मठ' में रहने चला गया, जिसके सत्य का जल पु-तु पर्वत के समस्त प्राणियों को बीस वर्ष तक उर्वर बनाए रखता है। उस समय वह समाज से दूर रहने का प्रयास करता था, किंतु फिर भी उपदेश के उत्सुक बहुत-से भक्त उसके दर्शनों को आया करते थे। एक बार ध्यान उपासक काओ ही निएन ने पु-तु पर्वत की यात्रा की और भिक्षु यिंग कुआंग के कई लेख लिए, जो शंघाई की 'बौद्धधर्म-संग्रह पत्रिका' में प्रकाशित हुए। आगे चलकर बौद्ध विद्वान् हू वेन-वाई ने भिक्षु यिंग-कुआंग द्वारा लिखित समस्त लेखों का संग्रह किया, जो 'भिक्षु यिंग-कुआंग की निबंध-माला' के नाम से एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए, जिसका चीन में बड़ा स्वागत हुआ। उसकी मृत्यु किआंग सु प्रांत के सूचाउ स्थान में ७० वर्ष की आयु में हुई।

(घ) बौद्ध विद्वानों का उदय

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि चिंग-युग के मध्यकाल के उपरांत बौद्ध-धर्म की अवनति होने लगी थी, किंतु उसी युग के अंत में बौद्धधर्म फिर प्रगति के पथ पर आ-सा गया, और बहुत-से ऐसे बौद्ध विद्वान् हुए, जिन्होंने धर्म-प्रचार का कार्य किया। बौद्धधर्म के पुनरुत्थान में योग देने वाले प्रमुख व्यक्तियों का वर्णन नीचे किया जा रहा है:—

चेंग हुएह्-च्वान यांग-चाउ का रहने वाला था। इसका जन्म चिंग सम्राट् ताओ कुआंग के राज्य के छठे वर्ष (१८२५ ई०) में हुआ था। पहले वह कनफ्यूशसीय धर्म का विद्यार्थी था, लेकिन आगे चलकर उसने हुंग-लु पर्वत में भिक्षु जु-आन से बौद्धधर्म का अध्ययन किया। वह अमिताभ का विशेष भक्त था। सम्राट् तुंग-चिह् के राज्य के पाँचवें वर्ष (१८६६ ई०) में उसने गृह त्यागकर मठ-प्रवेश किया, जहाँ उसको नया नाम मिआओ-खुन अथवा 'अद्‌भुत शून्य' रक्खा गया। उसने अपना सारा जीवन बौद्ध धार्मिक वाङ्मय को मुद्रित और उत्कीर्ण करने के महान् कार्य में लगा दिया। उसने चीकिआंग प्रांत में उत्कीर्णन के पाँच केन्द्र स्थापित किये, और किआंग-सु प्रांत के यांग-चाउ, जु-काओ,

सू-चाउ तथा चांग्सु आदि स्थानों में भी। काष्ठ-फलकों पर उत्कीर्णन के लिए उसने त्रिपिटकों के ३००० खंड पूर्ण किए। उसकी मृत्यु सम्राट् कुआंग-हु के राज्य के ६ ठे वर्ष (१८८० ई०) ५८ वर्ष की आयु में हुई। वह बहुत ही उर्वर लेखक था। उसकी प्रसिद्धतम कृतियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. हमारे जीवन की दो वस्तुओं पर निबंध
२. पुंडरीक-देश-सुसमाचार
३. पश्चिमी जगत् की स्पष्ट वाणी
४. अड़तालीस दर्पण
५. ब्राह्मणवाद की पुस्तक
६. पंचतत्त्व-व्याख्या
७. अमिताभ-सूत्र-टीका
८. क्षितिगर्भ-सूत्र-टीका
९. क्षितिगर्भ-रत्न प्रतिज्ञा
१० अवतंसक विराट् क्षमयति

यांग वेन-हुई, जो यांग जेन-शान के नाम से अधिक विख्यात है, आन-ह्वाई प्रांत के शिह-ताई का निवासी था। उसका जन्म सम्राट् ताओ-कुआंग के समय में हुआ था। अपने बाल्यकाल में उसको शिक्षा के सामान्य विषयों में कोई रुचि नहीं थी। बड़े होने पर वह राजकीय सेवा की परीक्षा को टाल गया, लेकिन बौद्ध-दर्शन के अध्ययन में उसका मन खूब लगता था। १८६३ ई० में पिता की मृत्यु होने पर वह अपने जन्मस्थान को गया और वहां बहुत बीमार हो गया। अपनी रुग्णावस्था में उसने श्रद्धोत्पाद-सूत्र को पढ़ा, जिससे वह अश्वघोष के मूलभूत सिद्धांतों से परिचित हो गया और इस प्रकार २७ वर्ष की आयु में ही उसने महायान का अध्ययन आरंभ कर दिया।

सम्राट् तुंग-चिह के राज्य के पंचम वर्ष में यांग अपने जन्म-स्थान से नानकिंग गया, जहाँ बौद्धधर्म के विस्तृत अध्ययन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बुद्ध कल्प के तृतीय और अंतिम चरण में धर्म के ह्रास के असंख्य वर्षों का आरंभ होगा ; इसलिए उसने यह अनुभव किया कि आत्मोन्नति तथा दूसरों के हित के लिए उसे अपना जीवन धर्म के प्रचार में लगा देना चाहिए। उसकी आकांक्षा समस्त बौद्ध धार्मिक वाङ्मय को जनता तक पहुंचाने के लिए प्रकाशित और उत्कीर्ण करवा देने की थी, अतएव उसने त्साओ चिन-चु, चांग पु-त्सा और

लिऊ काई-सेंग आदि अपने घनिष्ट मित्रों की सहायता से नानकिंग में एक 'उत्कीर्णन-परिषद्' की स्थापना की।

सम्राट् कुआंग-हु के राज्य के प्रथम वर्ष (१८७५ ई०) में लिऊ चिह-तिएन इंग्लैंड में चीन का राजदूत नियुक्त हुआ। उसने यांग वेन-हुई से लंदन जाने की प्रार्थना की। वहाँ वह डा० बुन्या नानजिओ से मिला, जो आक्सफोर्ड में प्रो० मैक्समुलर की शिष्यता में संस्कृत का अध्ययन कर रहा था। वे दोनों बहुत ही घनिष्ट मित्र बन गए। इसके पूर्व जापान के राजकुमार इवाकुरा अपनी यूरोप-यात्रा के समय ब्रिटिश सरकार को इसाइक्यो अथवा 'बौद्ध-त्रिपिटकों का चीनी अनुवाद' नामक बौद्ध धार्मिक साहित्य का विशाल संग्रह ग्रन्थ, उपहार में दे चुका था, किंतु कोई भी अंग्रेज़ विद्वान् उसका अनुवाद करने में समर्थ नहीं था। अतः इस कार्य का भार डा० नानजिओ पर रक्खा गया, जिसने यांग वेन-हुई की सहायता से उसे पूर्ण किया। चीन वापस लौटते समय यांग ने डा० नानजिओ की सहायता से बहुत-से ऐसे बौद्ध-ग्रंथ जापान में संग्रह किए, जो चीन में नष्ट हो जा चुके थे। यांग ने समस्त चीनी-त्रिपिटक का संशोधन और संपादन कर के 'चीनी भाषा में महान् बौद्ध त्रिपिटकों का संग्रह' के नाम से उनका एक नया संस्करण प्रकाशित किया। इस महाग्रन्थ की विषय-वस्तु इस प्रकार है :—

१.	अवतंसक-वर्ग	३२ बंडल
२.	पवित्रलोक-वर्ग	५७ बंडल
३.	प्रज्ञापारमिता-वर्ग	२३ बंडल
४.	निर्वाण-वर्ग	१३ बंडल
५.	तंत्र-वर्ग	६६ बंडल
६.	वैपुल्य-वर्ग	६६ बंडल
७.	धर्मलक्षण-वर्ग	२५ बंडल
८.	[illegible]-वर्ग	१६ बंडल
९.	हीनयान सूत्र-वर्ग	१६ बंडल
१०.	महायान विनय-वर्ग	१५ बंडल
११.	हीनयान विनय-वर्ग	७ बंडल
१२.	महायान शास्त्र-वर्ग	२३ बंडल
१३.	हीनयान शास्त्र-वर्ग	४ बंडल

१४.	पश्चिम से प्राप्त ग्रंथ	१६ बंडल
१५.	ध्यान-संप्रदाय-वर्ग	३० बंडल
१६.	तिएन-ताई-संप्रदाय-वर्ग	१४ बंडल
१७.	जीवनी-वर्ग	११ बंडल
१८.	चिंग युग के अंतिम काल में त्रिपिटक में समाविष्ट चीनी ग्रन्थों का वर्ग	९ बंडल
१९.	प्रचार-वर्ग	१३ बंडल
२०.	संलग्न ग्रन्थ-वर्ग	१० बंडल
२१.	उपासक कक्षा संचालन-वर्ग	४ बंडल

इस प्रकार त्रिपिटक के इस संस्करण में ४६० बंडलों और ३,३२० खंडों में समग्र बौद्ध वाङ्मय संगृहीत है।

सम्राट् कुआंग-हु के राज्य के ३३ वें वर्ष (१९०७ ई०) में यांग ने नानकिंग में जेतवन विहार नामक संस्थान स्थापित किया और लगभग तीस ऐसे व्यक्तियों को एकत्र किया, जो बौद्धधर्म का अध्ययन उच्चतर शिक्षा-प्राप्ति के रूप में करना चाहते थे। यांग ने तिएन-ताई-संप्रदाय के आचार्य-पद के लिए भिक्षु ति-हिएन को आमंत्रित किया। श्रद्धोत्पाद-शास्त्र को वह स्वयं पढ़ाता था। इनके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में प्राचीन चीनी साहित्य, पाश्चात्य दर्शन और अंग्रेजी आदि विषय भी थे। वह ऐसे विद्यार्थियों को ही भिक्षु होने की शिक्षा देना चाहता था, जो भविष्य में भारतवर्ष जाकर चीनी महायान-धर्म का प्रचार करने की योग्यता रखते थे। सम्राट् हुआन तुन के राज्य के द्वितीय वर्ष (१९०९ ई०) में नानकिंग के नागरिकों ने एक बौद्ध विद्या-परिषद् की स्थापना की और यांग को उसका अध्यक्ष चुना। उसके अगले वर्ष १७ अगस्त को ७५ वर्ष की अवस्था में यांग का देहांत हो गया। उसकी कृतियां निम्नलिखित हैं :—

१. चीनी बौद्ध-संप्रदाय प्रवेशिका
२. नवछात्रोपयोगी बौद्ध-प्राइमर
३. ताओ ते चिंग का गुह्य-रहस्य
४. सुखावती व्यूह का रेखाचित्र
५. कनफ़्यूशस की अभिलिखित सूक्तियों का गुह्यार्थ
६. चुआंग-त्ज़े का गुह्यार्थ
७. धर्मोपदेश व्याख्यानक पर अध्याय

थांग द्वारा संपादित बौद्ध धार्मिक वाङ्मय चीन में ही नहीं, ब्रह्मदेश, श्याम, मलाया और हिन्द-चीन में भी अभी तक प्रचलित है[१]।

(च) कनफ्यूशसवाद और बौद्धधर्म का संगम

चिंग-युग के उत्तरार्ध में चीन पर पश्चिम के समाघात का प्रथम रूप ईसाई मिशनरियों के कार्यो तक ही सीमित था। आगे चलकर उसने सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रों में पीड़न का रूप ले लिया। इस अनुचित दबाव या पीड़न ने चीन के मानस में एक संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी और अपने से अनेक जिज्ञासापूर्ण प्रश्न पूछने के लिए बाध्य कर दिया। इन प्रश्नों में से दो मौलिक महत्त्व रखते थे :—

(१) यूरोप के लोग तो संगठित धर्म-संघों के सदस्य हैं, किन्तु चीन में ऐसा कुछ नहीं है। इसका क्या कारण है? दूसरे शब्दों में, चीन के पास अपना संस्था-बद्ध राज-धर्म क्यों नहीं है?

(२) चीन अपने विपुल आकार और जनसंख्या के बावजूद पश्चिम के सभी प्रकार के दवावों और पीड़िनों का शिकार है। क्या यह आत्म-सुधार की आवश्यकता की ओर संकेत नहीं करता?

विचारशील चीनियों द्वारा इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के प्रयत्नों के फल-स्वरूप एक नये बौद्धिक आंदोलन ने जन्म लिया, जिसने चीन को आंतरिक दृष्टि से सशक्त बनाने के लिए (१) एक संगठित राज-धर्म की स्थापना और (२) राजनीतिक सुधारों का प्रारंभ आवश्यक समझा। राजनीतिक क्षेत्र में जो प्रयत्न हुए, उनका प्रतीक '१८९८ के सुधार के सौ दिन' है, किन्तु राजनीतिक सुधार के आन्दोलन की कथा छोड़कर हम यहाँ एक राजधर्म को संगठित करने के प्रयास पर प्रकाश डालेंगे।

इस नूतन बौद्धिक आंदोलन के महत्त्वपूर्ण नेता कांग यु-वाई और तांग स्ज़ु-तुंग थे। उन्होंने कनफ्यूशस को 'गुरु' से ईश्वर बना दिया और दार्शनिक विचारों के एक समूह को धर्म के उच्च स्थान पर बिठा दिया।

कांग यु-वाई का जन्म १८५८ ई० में क्वांग-तुंग प्रान्त के नान-हाइ जिले में हुआ था। अधुनातन चीनी प्राचीनतावादियों में उसको सब से अधिक मौलिक माना जा सकता है। एक ओर उसे क्रान्तिकारी विचारक समझा जा

१ आधारिक सामग्री नानकिंग के 'चीना इंस्टीट्यूट आफ इनर लर्निंग' की पत्रिका 'जर्नल आफ इनर लर्निंग' से संकलित की गई है।

सकता है, दूसरी ओर उसकी चिन्तना की जड़ें चीनी परम्परा में बहुत गहराई तक पहुंची लगती हैं। कांग एक ऐसे युग में हुआ, जिसके सम्मुख दो ही रास्ते थे—सुधार का या क्रान्ति का। कांग ने सुधार का मार्ग चुना, एक ऐसा मध्ययम मार्ग, जो एक ओर चीनी परम्परा में मूलबद्ध था और दूसरी ओर आधुनिकता एवं उन्नति में। १८९४–९५ ई० के चीन-जापान-युद्ध के उपरान्त चीन की बढ़ती हुई निर्बलता से व्यथित होकर, कांग ने सुधारों के ऐसे व्यापक कार्यक्रम की कल्पना की, जो पश्चिम की सैनिक और औद्योगिक पद्धतियों को अपनाने के साथ-साथ चीन की प्राचीन आध्यात्मिक निधि को सुरक्षित रखता और उसे नवजीवन दे देता। १८९८ ई० में कांग ने युवक सम्राट् कुआंग-हु को अपने विचारों के अनुकूल बनाने में सफलता प्राप्त की। इसके परिणामस्वरूप 'सौ दिन का सुधार आन्दोलन' (११ जून से २० सितम्बर १८९८ तक) चला, जिसमें सम्राट् ने व्यापक सुधारों के निमित्त बहुत राजाज्ञाएं निकालीं, जो यदि सम्यक्रूप से कार्यान्वित हो पातीं, तो चीन का राजनीतिक जीवन ही बदल जाता, किन्तु अधिकांश में वे राजदरबार के कट्टरपंथी सनातनी क्षेत्रों के तीव्र विरोध को जगाने में ही सफल हुईं। अन्त में, विधवा सम्राज्ञी ने आकस्मिक विप्लव कर के राजअभिभावक का अपना पुराना स्थान फिर ग्रहण किया और युवा सम्राट् को बन्दी बनाकर, तथा छः सुधारकों को प्राण-दंड देकर इस आंदोलन का दमन कर दिया, किन्तु कांग यु-वाई और उसका शिष्य लिआंग चि-चाओ किसी तरह बचकर जापान जा पहुंचे। राजनीतिक क्षेत्र में कांग के अन्तिम प्रत्यक्ष प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप हांकाउ में विद्रोह की तैयारी हुई, लेकिन प्रकट होने से पहले ही वह दबा दिया गया। इसके बाद कांग ने अपने जीवन के अन्तिम दिन शिक्षा के क्षेत्र में और पुस्तकें तथा पत्रिकाएं लिखने एवं प्रकाशित करने में बिताए। आगे चलकर डा० सन यात-सेन ज्यों-ज्यों अपनी योजनाओं में सफल हुए, कांग का महत्त्व कम होता गया। उसकी मृत्यु १९२७ ई० में हुई।

कांग यु-वाई ने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से एक 'कनफ्यूशस का सुधार-कार्य' है, जो चीनी राजनीति दर्शन को उसकी श्रेष्ठतम देन है। दूसरी 'विशाल एकता की पुस्तक' है, जो कनफ्यूशस-धर्म पर है। अपनी प्रथम कृति में उसने चीन के सभी सम्प्रदायों के दर्शन का सिंहावलोकन किया। उसने प्रत्येक सम्प्रदाय के संस्थापक को सुधारक माना, क्योंकि उसके मतानुसार उनमें से प्रत्येक ने समाज के लिए एक नई नीति-व्यवस्था का आयोजन किया

था और हर एक के पास अपनी विशेष सुधार-योजना थी। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक संस्थापक ने आदर्श समाज-व्यवस्था का दृष्टांत देने के लिए पुरातन इतिहास के एक सम्राट् का उदाहरण दिया है। ताओवादी 'पीले सम्राट्' के शासन-काल की आदर्श सामाजिक व्यवस्था का संस्मरण करते हैं। मोत्ज़वादियों ने एक ऐसे सामाजिक संगठन की कल्पना की है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को 'सम्राट् यु' की तरह, जो जल की बाढ़ को नियन्त्रित रखता था और अपने परिवार की उपेक्षा करके जन-हित में लगा रहता था, आचरण करना चाहिए। कनफ्यूशसवादियों ने याओ और शुन को आदर्श व्यक्ति माना है। कांग कनफ्यूशस को एक सुधारक ही नहीं, धर्म-संस्थापक भी मानता था। ईसाई मिशनरियों द्वारा अनूदित ग्रन्थों को पढ़ने पर मार्टिन लूथर ने कांग का ध्यान आकृष्ट किया और उसने सोचा कि कनफ्यूशस के सच्चे सिद्धान्तों को प्रकट करने के लिए चीन में भी धर्मसुधार आवश्यक है। उसकी धारणा थी कि—

१. कनफ्यूशस सनातनवाद के पक्ष में न होकर प्रगति के पक्ष में है।

२. कनफ्यूशस क्षुद्र अहंता के पक्ष में न होकर मानवीयतावाद के पक्ष में है।

३. कनफ्यूशस विशुद्ध विश्वबन्धुता के पक्ष में न होकर देशभक्ति के पक्ष में है।

४. कनफ्यूशस अधिकारवाद के पक्ष में न होकर स्वतंत्रता के पक्ष में है।

५. कनफ्यूशस वर्ग-विभेद के पक्ष में न होकर समता के सिद्धान्त के पक्ष में है।

६. कनफ्यूशस केवल प्रस्तुत जीवन में विश्वास न करके आत्मा में भी विश्वास करता है।

७. कनफ्यूशस निरंकुशतावादी या सर्वाधिकारवादी शासन के पक्ष में न होकर वैधानिक राज्य के पक्ष में है।

८. कनफ्यूशस राज की शक्ति के पक्ष में न होकर जन-स्वातंत्र्य के पक्ष में है।

९. कनफ्यूशस संकीर्ण हृदयता का विरोधी और उदारता तथा सहिष्णुता का पक्षपाती है।

'विशाल एकता की पुस्तक' नामक अपनी कृति में कांग ने अपने दर्शन का सम्यक निरूपण किया है और भविष्य के आदर्श सामाजिक संगठन की कल्पना की है। 'विशाल एकता', यानी एक राष्ट्र और एक विश्व की एकता-

सम्बन्धी कांग का सिद्धान्त, प्रेम, अथवा चीनी शब्दावली में 'जेन' के विचार पर आधारित है। कांग के विचार में सभी धर्मों के संस्थापक ऐसे व्यक्ति हैं, जो मानवता के दुःख से दुखी थे। बाइबिल, कनफ्यूशसीय प्राचीन ग्रन्थ, बौद्ध-सूत्र आदि सभी धर्म-ग्रन्थ मनुष्य के दुःख और कष्ट दूर करके उसे सुख पहुंचाने की समस्या का समाधान करते हैं। कनफ्यूशस की यात्राओं, ईसा के क्रूस पर लटकाए जाने और सुकरात के गरलपान से यही सिद्ध होता है कि दूसरों के लिए प्रेम के कारण इन महापुरुषों को अपार कष्ट सहने पड़े।

कांग के प्रेम-सम्बन्धी उपदेशों का संक्षिप्त-रूप निम्नलिखित है :—

१. प्रेम का क्षेत्र समग्र विश्व, पशु और वनस्पति-वर्ग होना चाहिए।
२. प्रेम के अन्तर्गत संपूर्ण मानवता होनी चाहिए।
३. प्रेम अपने राष्ट्र में ही नहीं सीमित होना चाहिए।
४. प्रेम अपने जिले में ही नहीं सीमित होना चाहिए।
५. प्रेम अपने कुटुम्ब तक ही नहीं सीमित होना चाहिए।
६. प्रेम अपनी इन्द्रियों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए।
७. प्रेम अपने शरीर तक ही सीमित नहीं होना चाहिए।
८. अपने शरीर को ही प्रेम करने से रोग और पीड़ा उत्पन्न होती है।
९. केवल अपनी ही चिन्ता करने से सामाजिक संगठन नष्ट हो जाएगा।

यह वस्तुतः उसी सिद्धान्त की पुनरुक्ति है, जिसको पहले चेंग मिंग-ताओ ने प्रतिपादित किया था और जिसको वांग यान मिंग ने लगभग उन्हीं शब्दों में व्यक्त किया था, 'प्रेम करने वाला व्यक्ति स्वर्ग, पृथ्वी और समस्त पदार्थों को अपने साथ एक समझता है।' इसका सादृश्य बौद्धधर्म के सार्वभौमिक प्रेम के सिद्धान्त से भी है। बुद्ध की शिक्षा है कि सार्वभौमिक प्रेम समस्त प्राणियों की अखंडता स्वीकार करता है, और "शत्रु-मित्र में समानता", "अपनी और समस्त वस्तुओं की एकता" में विश्वास करता है।

कांग यु वाई ने 'मानवता के दुखों का मूल कारण खोजने का और प्रयत्न किया। उसको छः कारण मिले :—

१. प्राकृतिक ; जैसे—बाढ़, दुर्भिक्ष, ताऊन, संक्रामक रोग, अग्नि आदि।
२. जन्मजात ; जैसे—गर्भपात, मृत-जाति, पंगुता, अंधापन, दासता, स्त्रीत्व।
३. मानवीय सम्बन्धजन्य ; जैसे—विधुर या विधवा हो जाना ; अनाथ, निस्संतान होना, संपत्तिनाश, हीन स्थान आदि।

४. राज्य प्रसूत ; जैसे—दंड और कारागार, भारी राजकर, सैनिक सेवा, वर्ग-व्यवस्था, राष्ट्रीय संकीर्णता।

५. मानवीय मन ; जैसे—अज्ञान, घृणा, आत्यंतिक श्रम, राग-द्वेष, इच्छा।

६. सदोष विकास-जन्य ; जैसे—द्रव्य, आभिजात्य, परियां और देवदूत।

यदि हम जीवन के सभी दुखों का सर्वेक्षण करें, तो हम देखेंगे कि वे नौ क्षेत्रों से उत्पन्न होते हैं। यह नौ क्षेत्र कौन-कौन हैं? उनके विषय में कांग यु-वाई का कथन है :—

"पहला क्षेत्र राष्ट्र का, भूमि और मानवता के राजनीतिक विभाजन का है। दूसरा वर्ग का है, जो कुलीन और अकुलीन, प्रतिष्ठित और महत्त्व रहित का भेद करता है। तीसरा वर्ण का है, जो जातियों का वर्गीकरण गोरे, काले, पीले, बादामी आदि में करता है। चौथा शारीरिक क्षेत्र में स्त्री और पुरुष के विभेद का है। पांचवां परिवार का है, जिसमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि सम्बन्धों का भेद आदि किया जाता है। छठा पेशे का है, जिससे किसान, मजदूर, व्यापारी में भेद किया जाता है। सातवां, राजनीतिक विश्रृंखलता का है, जिसके अन्तर्गत असमान, अ-सार्वभौमिक, विविध और अन्याय-युक्त संस्थाओं की सत्ता आती है। आठवां वर्ग योनियों का है, जिसके आधार पर मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, मत्स्य आदि का भेद किया जाता है। नवां क्षेत्र स्वयं दुःख का है; इस दुःख से और दुःख का जन्म होता है और उसका अनन्त क्रम कल्पनातीत प्रकार से चला करता है।"

चूंकि दुःख की उत्पत्ति इन क्षेत्रों में से किसी एक या अधिक के कारण होती है, अतः उसके निराकरण का एकमात्र उपाय इन क्षेत्रों का निराकरण है। तभी हम परम सुख (सुखावती), सार्वभौमिक शांति और विशाल एकता के लोक की ओर अग्रसर हो सकेंगे, जहाँ हमें दीर्घायु और शाश्वत प्रज्ञा प्राप्त होगी। यह काल्पनिक लोक अत्यन्त भव्य है, किन्तु अभी वह मानवीय संस्थाओं से जकड़ा हुआ है। उसके परे स्वयं स्वर्ग का ही दूसरा लोक है। इस सम्बन्ध में कांग ने अपनी 'मध्यम मार्ग पर टिप्पणियाँ' नामक पुस्तक में कहा है :—

"उस स्वर्ग की सत्ता अभी भी है, जो समस्त मानवीय संस्थाओं के ऊपर है, सब मूलों का मूल, कालातीत, देशातीत और रंग-गंध-शब्द-द्रव्य-रहित है। और स्वर्ग के द्वारा सर्जित एक दूसरा लोक है, जो कल्पनातीत और वर्णनातीत है।"

कांग की दार्शनिक विचार-धारा का आधार बौद्धधर्म था और उसका यह

विश्वास था कि जब कनफ्यूशसवाद का 'विशाल एकता' संपादित करने का महान् ऐतिहासिक कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब पहले जन-मानस ताओवाद के 'अमर' की कलाओं की ओर उन्मुख होगा और तदुपरान्त बौद्धधर्म की ओर। उसने अपनी पुस्तक, 'विशाल एकता' का अन्त इन शब्दों में किया है— "विशाल एकता के उपरान्त पहले 'अमरों' का अध्ययन होगा और फिर बौद्धधर्म का। निम्नतर प्रज्ञा 'अमरों' की भक्त होगी और उच्चतर प्रज्ञा बौद्धधर्म की। और बौद्धधर्म के अध्ययन के उपरान्त 'स्वर्ग में विचरण' का युग' आएगा।" कांग ने बौद्धधर्म की इस प्रकार प्रशंसा की है कि वह वस्तुतः कनफ्यूशस-मत की प्रशंसा लगती है।

चिंग-युग के अन्त में सुधार-आंदोलन के एक अन्य प्रमुख नेता का नाम तान स्सु-तुंग है, जिसकी विचार-धारा स्वतंत्र विवेचन की पात्र है। उसका जन्म १८६५ ई० में लिउ-यांग (हुनान प्रान्त) में हुआ था। वह कांग यु-वाई का शिष्य और १८९८ के ग्रीष्म-कालीन 'सुधार के सौ दिन' आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में से था। अपने गुरु की भाँति उसने भी अपनी क्रान्तिकारी विचार-धारा को चीनी अनुभूति और मूल्यों की नींव पर संगठित करने का प्रयास किया था। बीस वर्ष की छोटी आयु में ही उसने अपनी विलक्षण प्रतिभा का ऐसा परिचय दिया कि उसको सिंकिआंग-प्रान्त के राज्यपाल के सलाहकार के पद पर नियुक्त करने का प्रस्ताव किया गया ; किन्तु सरकारी नौकरी का कार्य पसन्द न होने के कारण उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। जब कांग ने पीकिंग में 'राष्ट्र-रक्षण परिषद्' की स्थापना की, तब इस नये राजनीतिक आंदोलन के नेता के निकट रहने के उद्देश्य से तान ने राजधानी जाने का निश्चय किया ; किन्तु छः महीने बाद उसने किआंग्सू-प्रान्त के सलाहकार पद का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और नानकिंग चला गया। वहाँ उसने 'जेन हुएह', 'प्रेम का विज्ञान', नामक पुस्तक लिखी। लिआंग चि-चाओ के शब्दों में "उस समय यह पुस्तक आकाश में एक पुच्छल तारे की भाँति आविर्भूत हुई। अपने दृष्टिकोण से प्रेम की व्याख्या करने में तान-स्सु-तुंग ने कांग की तरह मिंग-ताओ और यांग-मिंग के इस सूत्र को अपनाया—"प्रेम करने वाला स्वर्ग, पृथ्वी और सब वस्तुओं को अपने से अभिन्न समझता है।" इस सूत्र का प्रतिपादन करने के कारण तान को कांग के 'विशाल एकता-धर्म' की व्याख्या भी करनी पड़ी। उसने लिखा है:—

"तभी संसार सुशासित होगा और तभी सब प्राणी बुद्धपद प्राप्त करेंगे।

तब धर्म के नेता तो रहेंगे ही नहीं, स्वयं धर्म भी विलुप्त हो जाएगा। राजनीतिक शासक नहीं रह जायंगे, और स्वयं जनता भी शासन करना नहीं चाहेगी। न केवल एकीकृत होकर संसार अखंड हो जाएगा, स्वयं उस संसार की सत्ता ही नहीं रह जायगी। केवल ऐसी स्थिति में पहुंच जाने पर ही, उस पूर्णता और समग्रता की प्राप्ति हो सकेगी, जिसमें फिर और कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।"

तान स्सु-तुंग ने एक काल्पनिक आलोचक द्वारा अपने मत के सम्बन्ध में यह शंका उठाई है—

"आपके विचार निश्चय ही बड़े ऊँचे हैं; लेकिन मान लीजिए कि उनका कार्यरूप में परिणत होना संभव नहीं है; तब तो वह कोरा वाग्जाल ही है। उनसे क्या लाभ है ?"

तान ने इसका समाधान इस प्रकार किया है :—

"धर्म सत्य ज्ञान की खोज का साधन है; अतएव धार्मिक नेताओं और उनके शिष्यों का कार्य संसार को 'कोरे वाग्जाल' का रिक्थ दे जाना ही है; चाहे वे स्वयं उसे कार्यान्वित कर पाएं या न कर पाएं और भले ही वे भावी पीढ़ियों के लांछन और तिरस्कार के पात्र बनें। ईसा को प्राणदण्ड दिया गया, और उनके बारहों शिष्यों का वही हाल हुआ। कनफ्यूशस केवल अपनी आत्मा का ही उद्धार कर पाए, उनके ७२ शिष्यों में केवल बुद्ध को ही सफलता प्राप्त हुई। बुद्ध और उनके शिष्य सदैव भूख से पीड़ित रहे और भोजन के लिए भिक्षा मांगते रहे। अपने अन्त काल तक उन्होंने कष्ट का जीवन बिताया। इस प्रकार इन सब लोगों ने अपने जीवन की उपेक्षा की, जिससे वे अपने पूर्वज्ञान द्वारा परवर्ती ज्ञान वालों को प्रबुद्ध कर सकें, और अपनी पूर्व-प्रज्ञा द्वारा परवर्ती प्रज्ञा वालों को अपनी प्रज्ञा प्रदान कर सकें, इसलिए हमें यह निरर्थक प्रश्न नहीं पूछना चाहिए कि वे सफल हुए या असफल।"

धर्म के नेताओं का कार्य केवल अपना ज्ञान दूसरों को देना है। यदि यह ज्ञान वास्तव में सत्य है, तो अन्ततः वह जय प्राप्त करके ही रहेगा।

ईसा, कनफ्यूशस और बुद्ध के धर्म यद्यपि एक दूसरे से भिन्न हैं, उन तीनों का सर्वोपरि ध्येय परम सुख को प्राप्त करना है। उनके संस्थापकों के बचनों में जो अन्तर प्रतीत होता है, वह निरा देश-काल-जन्य है। तान स्सु-तुंग ने लिखा है :—

"वास्तव में केवल बुद्ध ही सौभाग्यशाली थे। उनके देश में आरम्भ से ही

मूसा, यू, तांग, वेन, वू, चाउ के ड्यूक जैसे अन्य देशों के तथाकथित 'दिव्य महात्माओं' का अभाव रहा है, जो जनता की स्वाभाविक निर्दोषता और शुद्ध सरलता को नष्ट और विकृत कर डालते हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध अपने को एक ऐसा व्यक्ति मानते थे, जिसने गृहस्थाश्रम और संसार का त्याग कर दिया था और इस कारण जिसे लोकरीति के अनुसार आचरण करने की आवश्यकता नहीं रह गई थी ; अतएव सार्वभौमिक शान्ति के युग में विशाल एकता पर अपने उपदेशों को पूर्णरूप से व्यक्त करने में उन्हें सफलता मिली और उन्होंने आद्य-प्रतीत्य-समुत्पाद की स्थापना की । जहां तक इस विशाल एकता की शासन-पद्धति का सम्बन्ध है, उसमें केवल पिता को पिता और पुत्र को पुत्र ही नहीं माना जाता, उसमें पिता-पुत्र सम्बन्ध का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इस युग की दमघोट संस्थाओं और विवश करने वाले बन्धनों का, जो शासकों को निरंकुश, और जनता को डाकू बना डालते हैं, वहां कोई उपयोग नहीं रह जाता। बुद्ध का इस प्रकार सभी धर्मों के ऊपर अद्वितीय उच्च स्थान प्राप्त करने में सफल होना तात्कालिक देश-काल-परिस्थिति का अवश्यंभावी परिणाम है ; किन्तु इस सब का कोई भी सम्बन्ध धर्म-नेताओं के मूलगत परम सत्य से नहीं है, क्योंकि यह परम सत्य उन सब के लिए एक और केवल वही एक है। पूज्य टिमोथी रिचार्ड ने कहा है—'तीनों धर्मों के प्रवर्तक एक हैं। जब मैं उनमें से किसी एक को प्रणाम करता हूं, तो सभी को प्रणाम करता हूं।' व्यक्तिगत रूप से मैं इस वक्तव्य से सहमत हूं।"

यहां तान स्सु-तुंग ने बुद्ध के प्रति अत्युच्च श्रद्धांजलि समर्पित की है। जिसका कारण यह है कि उनकी शिक्षा कनफ्यूशस की उच्चतम शिक्षाओं के सदृश है ; अतएव तान द्वारा बौद्धधर्म की प्रशंसा वस्तुतः कनफ्यूशसवाद की ही प्रशंसा हो जाती है।

तान उन 'छः शहीदों' में से एक है, जिनको मान्य सम्राज्ञी की आज्ञानुसार २८ सितम्बर, १८९८ ई० को प्राणदंड दिया गया था। यद्यपि तानचु कांग यु-वाई और लिआंग चि-चाओ की तरह निर्वाचित होकर विदेश चला जा सकता था, लेकिन उसने घोषणा की—"कोई भी क्रान्ति या सुधार रक्तदान के बिना सफल नहीं हो सकता, इसलिए मैं पहली आहुति बनूंगा।"

अध्याय १३

चीन के प्रजातंत्र-युग में बौद्धधर्म

(क) बौद्धधर्म का प्रभात

१० अक्तूबर, १९११ ई० को होनकाउ और वूचांग में चिंग-वंश के विध्वंस के उपरांत क्रांतिकारियों की प्रतिनिधि राष्ट्रीय परिषद् ने डा० सुन यात-सेन को प्रजातंत्र का राष्ट्रपति चुना। उसी समय नई परिस्थिति का सामना करने के लिए चीन के समस्त बौद्धों को एकता के सूत्र में संगठित करने के उद्देश्य से, तिएन तुंग पर्वत के भिक्षु चिन-आन के नेतृत्व में, अखिल चीन बौद्ध-संघ की स्थापना हुई।

प्रजातंत्र के प्रथम वर्ष में चिन-आन में चीकिआंग और किआंग सु प्रांतों के मठों के प्रतिनिधियों का नेतृत्व ग्रहण कर बौद्धमठों की संपत्ति के आरक्षण के लिए प्रजातंत्र की अस्थायी सरकार को आवेदन-पत्र दिया; किंतु जेनरल युआन शिहकाई के पक्ष में डा० सुन यात-सेन के त्यागपत्र दे देने के कारण उसको उस समय सफलता नहीं मिली। अस्थायी सरकार के पीकिंग चले जाने पर आवेदन-पत्र फिर दिया गया; किंतु सफलता तब भी नहीं मिली। अतः चिन-आन अत्यंत क्षुब्ध होकर फ़ा युआन स्सु (धर्म मूल मठ) लौट गया, जहाँ दूसरे ही दिन ६३ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

भिक्षु चिन-यान बौद्धधर्म का प्रकांड विद्वान् और कवि था। उसकी मृत्यु ने एक ऐसा रिक्त स्थान छोड़ा, जिसको पूर्ण करना सहज नहीं था। डा० सुन यात-सेन के उत्तराधिकारी युआन शिह्-काई ने एक आज्ञा निकालकर गृह-विभाग को अखिल चीन बौद्ध-संघ की नियमावली को मान्यता प्रदान करने का आदेश दिया। प्रजातंत्र के चतुर्थ वर्ष में गृह-विभाग ने बौद्ध-मठों के आरक्षण के निमित्त एक घोषणा की और तब से उसका पालन बराबर हो रहा है। इस प्रकार अंततः चिन-आन को, जिसने संघर्ष में अपने जीवन की बलि दे दी थी, अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई।

इस महत्त्वपूर्ण घटना के बाद देश में बौद्धधर्म को सुधारने और पुनरुज्जीवित करने के लिए अनेक आंदोलन हुए। बहुत-से मंदिरों और मठों का पुनर्निर्माण

किया गया और बौद्ध-साहित्य के मुद्रण एवं वितरण तथा भिक्षुओं के कार्य को समन्वित करने का पूरा प्रयत्न हुआ। धर्म का उपदेश व्याख्यानों द्वारा दिया जाता है। इस पुनर्जागरण के श्रेष्ठ उदाहरण बौद्ध-उपासक-उद्यान और शंघाई का पवित्रलोक-बौद्ध-व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् हैं।

उपासक यांग वेन-हुई द्वारा संचालित नानकिंग का जेतवन विहार अब बंद हो गया है। चीकिआंग और किआंग्सु-प्रांतों के तत्कालीन राज्यपाल तु आन-फ़ांग ने नानकिंग में एक मठीय प्रशिक्षण-विद्यालय की स्थापना की और भिक्षु ति-हिएन को उसका प्रधानाचार्य नियुक्त किया : किंतु शीघ्र ही ति-हिएन ने भिक्षु युएह-हिआ के पक्ष में त्यागपत्र दे दिया, जो उसका उत्तराधिकारी बना। अन्य उल्लेखनीय बौद्ध-संस्थाओं में, भिक्षु ति-हिएन द्वारा संचालित तिएन-ताई संप्रदाय पर बल देने वाले निंगपो के कुआन-त्सु-उपदेश-भवन, चांग-चाउ के अवतंसक-महाविद्यालय, जिसका प्रधानाचार्य भिक्षु युएह हिआ था ; श्रद्धेय ताइ-हु द्वारा स्थापित वू-चांग की बौद्ध-परिषद् और चीनी-तिब्बतीय महाविद्यालय (जो अभी तक चल रहा है); चिंगलिंग बौद्ध एकेडेमी, जो अब चांग-चाउ से शंघाई चली गई है और जिसके अध्यक्ष भिक्षु यिंग-त्जे हैं ; प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् ओउ-यांग चिंग-वू द्वारा नानकिंग में स्थापित 'चीना आभ्यंतर विद्या-परिषद्', जो अभी तक धर्मलक्षण-संप्रदाय के अनुशीलन और प्रचार में संलग्न है आदि की गणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त चीन के अनेक शोध-मंडलों ने बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अपने-अपने मुख-पत्र निकाले हैं। उदाहरणार्थ, प्रजातंत्र के प्रथम वर्ष में 'बौद्धधर्म संग्रह पत्रिका' निकली, जो दो वर्ष बाद बंद हो गई। वू-चांग बौद्ध-परिषद् द्वारा प्रकाशित हाई चाओ यिंग (अर्थात् सागर ज्वार वाणी) अभी तक चल रही है। 'पवित्रलोक-बौद्ध व्यावसायिक प्रशिक्षण-संघ द्वारा प्रकाशित 'पवित्रलोक-व्यवसाय मासिक', और चीना-आभ्यंतर-विद्या-परिषद् द्वारा प्रकाशित 'आभ्यंतर विद्या-पत्रिका' चीन में सुप्रसिद्ध हैं।

बौद्ध-आंदोलन के सुयोग्य और उत्साही नेता ताइ-हु ने अपने शिष्यों को लंका, भारत और तिब्बत को चीनी बौद्धधर्म का प्रचार करने तथा हीनयान और गुह्य बौद्धधर्म का अध्ययन करने के लिए भेजा। इन लोगों को अपने कार्य में आंशिक सफलता प्राप्त हुई।

बौद्ध धार्मिक वाङ्मय के उत्कीर्णन का कार्य दो 'धर्मवाङ्मय-उत्कीर्णन-संमितियों' के जिम्मे है, जिनके कार्यालय पीकिंग और तिएन-त्सिन में हैं। वे
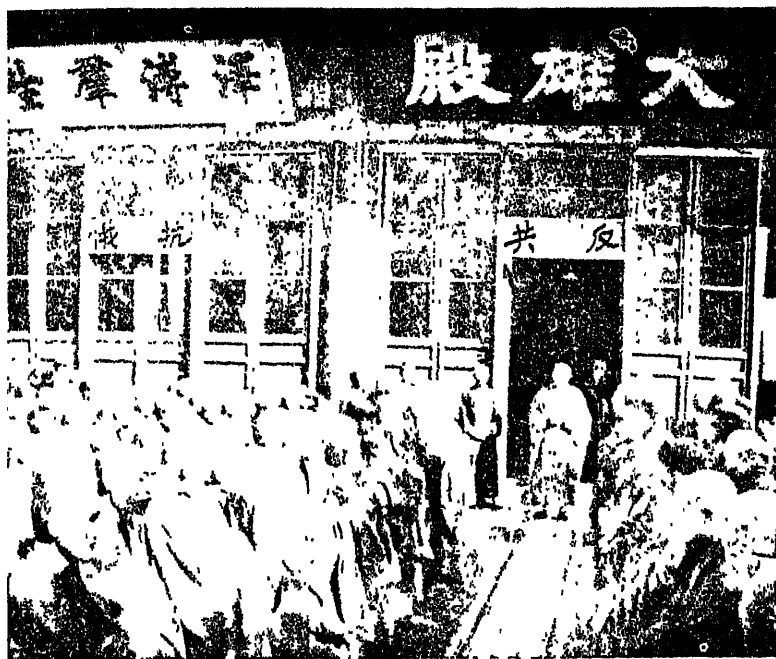
पीपिंग (चीन) के कुआंग-ची-मठ में चीनी बौद्ध साधु और उनकी प्रार्थना

धर्माचार्य वाई-ह्जू

उपासक यांग वेन-हुई की अंतिम आकांक्षा के अनुसार 'चीनी त्रिपिटक का सार-संग्रह' के मुद्रण और प्रकाशन में संलग्न हैं। शंघाई के कलविंक "विहार" न जापान के कोक्यो पुस्तक भवन के द्वारा बौद्ध त्रिपिटकों को छोटे-छोटे खंडों में प्रकाशित किया। कमर्शिअल प्रेस, लिमिटेड, ने अनुपूरक त्रिपिटक के जापानी संस्करण तथा 'मंचूरिआई, चीनी, मंगोल और तिब्बती भाषाओं से संगृहीत धारणियों के विराट् संग्रह' का फ़ोटो-मुद्रण किया है। चु चिंग-लान और यात कुंग-ची जैसे अनेक प्रसिद्ध उपासकों ने हाल में ही त्रिपिटकों के सुंग-संस्करण को मुद्रित करने की योजना बनाई है।

१९११ ई० के उपरांत देश में बौद्धधर्म का पुनर्जागरण हुआ। इसके कारण यह थे — (१) राष्ट्रीय संस्कृति और पुरातन साहित्य के प्रति परिवर्धनशील उत्साह, (२) तीव्र प्रचार और लोकप्रिय बौद्ध-साहित्य का व्यापक वितरण, (३) गृहयुद्ध-जन्य विनाश द्वारा भौतिक अभ्युदय की मूर्खता और निस्सारता प्रमाणित होकर नए आध्यात्मिक मूल्यों का पुनः प्रतिष्ठित होना। यहाँ तक कि कुछ उच्चतम अधिकारी भी सांत्वना पाने के लिए बौद्धधर्म की ओर उन्मुख हुए[1]।

(ख) भिक्षु ताई-हु और उपासक ओउ-यांग चिंग-वू

प्रजातंत्रीय युग में बौद्धधर्म के इतिहास में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति भिक्षु ताई-हु और उपासक ओउ-यांग चिंग-वू थे।

भिक्षु ताई हु ने, जो अपने समय के प्रकांडतम बौद्ध-विद्वानों में गिना जाता था और जिसे कभी-कभी "बौद्ध पोप" कहा जाता है, १८८८ ई० में चीकिआंग प्रांत के चुंग-ते जिले में जन्म लिया था, जहाँ बौद्धधर्म हान-सम्राट् मिंग-ती के शासन-काल (५६ ई०) में प्रविष्ट होने के समय से ही गहराई से जमा हुआ है और विगत २००० वर्षों के राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामाजिक क्रांतियों के बावजूद अक्षुण्ण बना रहा है।

सोलह वर्ष की आयु में ताई-हु ने तिएन तुंग शान-मठ में प्रवेश किया और विख्यात भिक्षु पा चिह द्वारा बौद्धधर्म के मूलभूत सिद्धांतों की दीक्षा प्राप्त की। तदुपरांत वह 'सप्त-पैगोडा मठ' को गया और वहां त्रिपिटकों के अध्ययन

१ इस विषय संबंधी सामग्री 'बौद्धधर्म संग्रह पत्रिका', 'सागर ज्वार वाणी मासिक' और 'आभ्यंतर विद्या-पत्रिका' इत्यादि से संगृहीत है।

और योगाभ्यास में तल्लीन रहा। अठारह वर्ष का होने पर वह कांग-यु-वाई, लिआंग चि-चाओ, सन यात-सेन, और कार सुन चांग आदि जैसे प्रसिद्ध विद्वानों के संपर्क में आया। बौद्धधर्म का प्रकांड विद्वान् होकर और तिएन ताई अवतंसक-संप्रदायों के सिद्धांतों को आत्मसात् करके उसने चीन में संघ के संगठन को सुधारने का संकल्प किया।

अपने इक्कीसवें वर्ष में भिक्षु पा-चिह के सहयोग से उसने चीन में बौद्ध-शिक्षा के एक केन्द्र की स्थापना की और उसी वर्ष चीन के महान् गृहस्थ बौद्धानुयायी और बौद्ध-विषयों के लेखक यांग वेन हुई के साथ बौद्धधर्म-संबंधी अनुसंधान-कार्य किया। एक वर्ष के बाद वह पाई युन (श्वेत मेघ) पर्वत के 'द्विधारा मठ' का, जो कैंटन के निकट है, प्रधान मठाध्यक्ष नियुक्त हुआ और वहाँ के बौद्ध अनुशीलन विहार का संचालक भी बनाया गया। उन्हीं दिनों उसने बौद्ध विचार-धारा का इतिहास लिखना भी आरंभ किया।

प्रजातंत्र के प्रथम वर्ष (१९११ ई०) में, २३ वर्ष की आयु में ताइ हु ने चीनी बौद्ध कांग्रेस की स्थापना की, जिसका प्रधान कार्यालय नानकिंग के वीर-मठ में था। १९१२ से १९१६ तक चार वर्ष वह चीकिआंग प्रांत के पु-तो पर्वत की चोटी पर स्थित ही लिन मठ में एक यती की भाँति रहा। वहाँ उसने चीन में संगृहीत समस्त बौद्ध-साहित्य, समस्त पुरातन चीनी उत्कृष्ट साहित्य और दर्शन, तर्क, प्रायोगिक विज्ञान आदि विषयों पर उस समय तक चीनी भाषा में अनूदित लगभग सभी पश्चिमी ग्रन्थों का अध्ययन किया।

इस प्रकार वह त्रिपिटकों में संगृहीत विशाल बौद्ध धार्मिक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन, तथा अधुनातन पाश्चात्य विचारधारा और बौद्धदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों में समानताओं की खोज में संलग्न रहा। उसने विज्ञान-मात्रवाद-सम्प्रदाय के आधार-सिद्धान्तों को पुनरुज्जीवित करने का भी प्रयास किया। इस सम्प्रदाय का, जिसके अनुयायी अब चीन में नहीं हैं, मूल सिद्धान्त यह है कि विज्ञान (चेतना) के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं है। चेतना का वैज्ञानिक विश्लेषण करने और आधुनिक मनोविज्ञान की कुछ प्रवृत्तियों से सादृश्य रखने के कारण इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों ने पश्चिम के अनेक विद्वानों को आकृष्ट किया है। बहुत-से अ-बौद्ध चीनी वैज्ञानिक, जो बौद्धधर्म के अन्य प्राचीन सम्प्रदायों में कोई अभिरुचि नहीं रखते, विज्ञानमात्र-वाद के सिद्धान्तों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। ताइ-हु ने यह अनुभव करके, कि अब युवक वैज्ञानिक प्रवृत्ति के होते जा रहे हैं, इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों

को पुनः प्रकाशित करने का निश्चय किया। उसको यह आशा थी कि वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किये जाने पर, नई पीढ़ी बौद्धधर्म की ओर आकर्षित होगी। इस भावना से प्रेरित होकर उसने अनेक पुस्तकें लिखीं, जैसे—'विकास-वाद की सही व्याख्या', 'दर्शन-शास्त्र का परम अर्थ', 'शिक्षा का नया आदर्श' आदि, जिन्होंने अपने प्रकाशित होने के समय से ही चीन के बौद्धिक वर्ग में व्यापक अभिरुचि जाग्रत रक्खी है।

उनतीस वर्ष की अवस्था में उसने फारमोसा और जापान की विशद यात्रा की और बौद्धधर्म के द्वारा अपने देश का आध्यात्मिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर वापस लौटा। चांग ताइ-येन, वांग यि-तिंग आदि प्रमुख व्यक्तियों के सहयोग से उसने शंघाई में बोधि-सोसाइटी की स्थापना की। उसने 'बोधि' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की, जिसका नाम आगे चलकर हाइ चाओ यिंग अथवा 'सागर ज्वार वाणी' हो गया। वह अपने विचारों को इस पत्रिका के माध्यम से व्यक्त किया करता था।

१९१८ ई० से १९२० तक तीन वर्ष उसने पीकिंग, वुचांग और हानकाउ की व्याख्यान-यात्रा की और अपने बहुसंख्यक श्रोताओं को परम, सार्वभौम और निरपेक्ष पूर्णत्व प्राप्त करने के विषय में उपदेश दिये।

१९२१ ई० में, जब उसकी आयु ३३ वर्ष की थी, उसने वूचांग में बौद्ध-परिषद् की स्थापना की, जहाँ बौद्धधर्म की सैद्धांतिक और क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त करने के लिए चीन के सभी प्रान्तों से विद्यार्थी आया करते थे। १९२४ ई० में उसने किआंगसी प्रान्त के एक सौन्दर्य-स्थल लू शान पर्वत में स्थित 'महा-उपवन मठ' में एक प्रचार-भवन की स्थापना की। वहाँ उसने एक अन्त-र्राष्ट्रीय बौद्ध-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें भारत, श्याम, जापान, जर्मनी, अमेरिका और फिनलैंड के बहुत-से बौद्ध सम्मिलित हुए।

१९२५ ई० में वह जापान में आयोजित पूर्व एशियाई बौद्ध-सम्मेलन में चीन का मुख्य प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। उसी वर्ष वह जर्मनी के फ्रैंक-फर्ट विश्वविद्यालय की चीनी संस्कृति परिषद् की कार्यकारिणी समिति का सदस्य चुना गया।

१९२८ ई० में उसने नानकिंग में चीनी बौद्धों का एक सम्मेलन किया, जिसमें बौद्धधर्म के संगठन और देशव्यापी प्रचार के विषय में विचार किया गया। उसी वर्ष बौद्धधर्म की ज्योति का प्रकाश पश्चिम को देने के उद्देश्य से उसने यूरोप की यात्रा की। अमेरिका होकर अगले वर्ष वह स्वदेश लौटा

और दक्षिण फ़ुकिएन की बौद्ध-परिषद् का अध्यक्ष बनाया गया। उसी वर्ष उसने 'विश्वयात्रा का अभिलेख' नामक अपनी पुस्तक प्रकाशित की।

१९३० ई० में उसने अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध-परिषद् और चुंकिंग के निकट चिन-युन पर्वत के एक मठ में चीनी-तिब्बती कालेज की स्थापना की। वह अपने विद्यार्थियों को बौद्धधर्म के अतिरिक्त ज्ञान की अन्य विद्याओं को पढ़ने के लिए भी उत्साहित किया करता था और त्रिपिटकों को रट लेने के बजाय उनके अर्थ को हृदयंगम करने पर बल देता था।

१९३८ ई० में उसने एक बौद्ध-सद्भाव-मंडल संगठित करके उसे ब्रह्मा, भारत, लंका और श्याम को, वहां के बौद्धों से विचार-विनिमय करने के लिए भेजा। यह मंडल बहुत ही सफल रहा और १९४० के ग्रीष्म में हिन्द-चीन से लौटा। आगे चलकर पाली और संस्कृत का अध्ययन करने के लिए उसने अपने शिष्यों को लंका और भारत भेजा।

१९४५ ई० में उसने अपने गृहस्थ शिष्यों के कार्यों का निरीक्षण किया, जिन्होंने चुंगकिंग चीन के 'यंग मेन्स बुद्धिस्ट एसोसियेशन' की स्थापना की थी। उसी वर्ष जापान पर चीन की विजय हुई। वह चुंगकिंग से नानकिंग वापस गया और वहाँ बौद्ध-सुधार-समिति के अध्यक्ष के पद का भार ग्रहण किया, जो चीनी बौद्धधर्म और बौद्ध-संघ को सुधारने और पुनर्संगठित करने के लिए नियुक्त की गई थी।

१९४७ ई० में वह चीकिआंग प्रान्त में निंगपो के बौद्ध नागरिकों के अनुरोध पर वहाँ गया। वहाँ 'सुदीर्घ सुख मठ' में उसने बुद्धानुशासन पर प्रवचन दिए और अपने उपासक शिष्य चाउ हिआंग-कुआंग के प्रति स्वरचित तीन कविताओं में समस्त मलों से रहित विशुद्ध मन की आवश्यकता का वर्णन किया। १७ फरवरी को वह निंगपो से शंघाई गया और 'हरित पाषाण बुद्ध मठ' में रहा। अगले महीने (मार्च) उसी दिन अकस्मात उसकी मृत्यु, ५९ वर्ष की आयु में हो गई और उसका कार्य अधूरा रह गया। शंघाई के 'सागर ज्वार मठ' में उसके शव की दाहक्रिया के उपरान्त उसके शिष्य कई दिन तक चिता की भस्म से उसके शरीर के अवशेषों की खोज करते रहे।

उन्होंने ३०० से अधिक अवशेष एकत्र किए और उनको उसकी वेदी के सामने आठ चीनी मिट्टी की प्लेटों में रक्खा। यह अवशेष विभिन्न आकार और रंगों के हैं। उनमें से एक मनुष्य के अंगूठे के बराबर और स्फटिक की तरह पारदर्शी तथा चमकदार है। दूसरा मनुष्य की मुट्ठी के बराबर और

चमकीले बैंगनी रंग का है तथा प्रताप के पुष्प पिओनी से मिलता है। उनमें से अन्य लघुतर अवशेष पांच आकर्षक स्फटिकीय रंगों के हैं। सब से आश्चर्य की बात यह हुई कि उसका पवित्र हृदय बिल्कुल जला ही नहीं। उसकी मृत्यु चीनी बौद्धधर्म के लिए एक महान् आघात सिद्ध हुई।

प्रजातंत्र-युग का सब से प्रसिद्ध गृहस्थ बौद्ध-उपासक ओउ-यांग चिंग-वू था। उसका जन्म १८७१ ई० में किआंग्सी प्रांत के ई-ह्वांग जिले में हुआ था। जब वह केवल चार वर्ष का था, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई और तदुपरान्त उसका लालन-पालन तथा शिक्षा उसकी माता की देख-रेख में हुई। अपनी किशोरावस्था में उसने नव्य-कनफ्यूशसवाद का अध्ययन किया, लेकिन आगे चलकर पुनर्जाग्रित होने वाले महायान ने उसे आकृष्ट किया। गुह्य-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् कुई-पो-ह्वांग के द्वारा वह प्रख्यात् उपासक यांग वेन-हुई के संपर्क में आया। अपने ३७ वें वर्ष में नानकिंग जाकर वह जेतवन विहार में प्रविष्ट हुआ और वहाँ यांग-वेन-हुई के निर्देशानुसार बौद्धधर्म का अध्ययन किया। वह चीन के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् और वाग्मी उपासक के रूप में प्रसिद्ध हो गया। दुर्भाग्यवश, यांग-वेंग-हुई की मृत्यु ७५ वर्ष की आयु में १९१० ई० में हो गई और उसके महत्त्वपूर्ण कार्य का भार उपासक ओउ चिंग-वू के कन्धों पर पड़ा।

बौद्ध-धार्मिक साहित्य के प्रकाशित करने के अतिरिक्त, ओउ-यांग-वू ने 'आभ्यंतर विद्या चीन परिषद्' तथा नानकिंग में धर्मलक्षण विद्यालय की स्थापना भी की, जहाँ वह "मन जीवन का केन्द्र है" इस सिद्धान्त की शिक्षा दिया करता था।

उसके लु-चेन, तांग योंग-तुंग और चेन-मिंग-हु आदि शिष्य अधुनातन चीन के प्रमुख बौद्ध-विद्वानों में गिने जाते हैं। चीन-जापान-युद्ध के समय वह चुंगकिंग के निकट किआंग चिन को गया, जहाँ उसने अपने 'आभ्यंतर विद्या चीन परिषद्' की शाखा खोली और युद्ध के उत्तरार्ध तक वहीं रहा। आजकल अनेक संस्थाओं में चीनी-दर्शन-शास्त्र की अनेक प्रमुख शाखाओं में बौद्ध-धर्म के अध्ययन को अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति है। ओउ-यांग का देहान्त ७३ वर्ष की आयु में २३ फरवरी, १९४३ ई० को हुआ। उसके ग्रन्थों की सूची निम्नलिखित है :—

१. आभ्यंतर विद्या-चीनी-परिषद् के विद्यार्थियों के लिए व्याख्यानक।
२. महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र भूमिका।

३. महापरिनिर्वाण-सूत्र भूमिका।
४. योगाचारभूमि प्रस्तावना।
५. आभ्यंतर विद्या पर प्रकीर्ण रचनाएं।
६. विज्ञानमात्रवाद का पाठ्यानुक्रम।
७. लंकावतार-सूत्र की निर्णायक टीका।
८. अभिधर्म कोष-शास्त्र भूमिका।
९. चतुः ग्रन्थ रीडर।
१०. मध्यम मार्ग रीडर।

वर्तमान युग में चीन में बौद्धधर्म-प्रचार करने के प्रायः सभी आंदोलन भिक्षु ताई-हु अथवा उपासक ओउ-यांग से सम्बद्ध संस्थाओं के स्नातकों द्वारा ही परिचालित होते हैं।

(ग) चीनी भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्धों का पुनः प्रतिष्ठापन

पंडित नेहरू का कथन है —"चीन और भारत को, जो इतिहास के उषाकाल से बंधु-राष्ट्र रहे हैं, अपनी संस्कृति और विचार-धारा के शांतिमय विकास की सुदीर्घ परम्परा के साथ, विश्व के इस नाटक में, जिसमें वे स्वयं जटिलता से उलझे हुए हैं, प्रधान भूमिका में कार्य करना है।" दुर्भाग्यवश पिछली कई शताब्दियों से आर्थिक और राजनीतिक विदेशी प्रभावों के कारण दोनों देशों की जीवन-शैली बहुत अधिक बदल गई है और हमारा शताब्दियों पुराना सांस्कृतिक संबंध विलुप्त-जैसा हो गया है; किन्तु वह पुनरुज्जीवित हो चुका है और हम नये संदेशवाहकों के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने डा० कालिदास नाग, श्री क्षितिमोहन सेन और श्री नन्दलाल बोस के साथ १९२४ ई० में चीन की यात्रा की। जहाँ-जहाँ वे गये, उनका भव्य स्वागत हुआ। उनकी अनेक कृतियों का चीनी भाषांतर किया गया है, जिन्होंने आधुनिक चीनी-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

(घ) तुंग हुआंग की गुफाओं में चीनी धार्मिक साहित्य का अन्वेषण

सम्राट् कुआंग-हु के राज्य के २५ वें वर्ष, १९०० ई० में, कांग्सु प्रान्त स्थित तुंग-हुआंग की सहस्र-बुद्ध गुफाओं में तांग-काल (७ वीं से ११ वीं शती ई०) की चित्रलिपि में लिखित बौद्धधर्म ग्रन्थों की बहुत-सी पान्डुलिपियां प्राप्त हुईं। यह घटना चीनी बौद्धधर्म के इतिहास में प्राच्यविद्या में रुचि रखने वाले

प्रे० चांग काई शेक, विश्वभारती—शान्ति-निकेतन में। १९३२ ई०
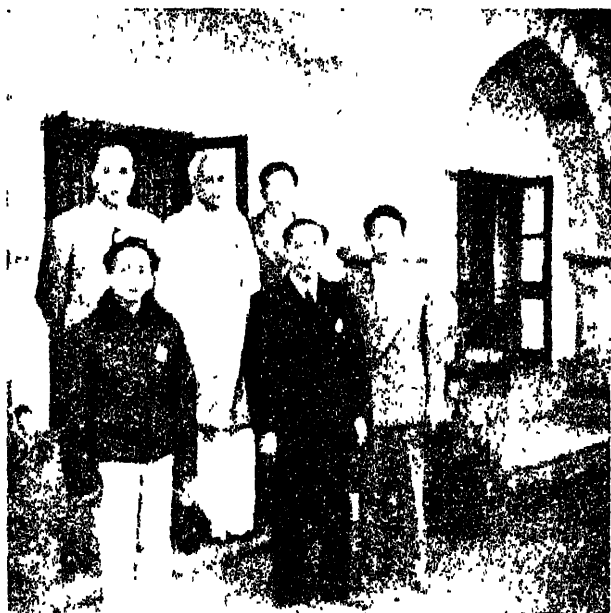
उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् चीन की युद्धकालीन राजधानी चुंकिंग में।
सन् १९४४ ई०

हांग चू के लिनयेन बौद्ध-मठ में पं० जवाहरलाल नेहरू

समस्त व्यक्तियों और विशेषकर बौद्ध-विद्वानों के लिए, बहुत महत्त्व रखती हैं। यह गुफाएं मिग-शान पर्वत की तलहटी में नगर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग ९ मील पर एक बन्जर उपत्यका में स्थित हैं। वहाँ लगभग एक सौ गुफा-मन्दिर हैं, जिसमें से कुछ चौथी शती ई० तक के पुराने हैं और सभी चट्टान के अग्रभाग में शहद के छत्ते की तरह क्रमविहीन फैले हुए हैं।

यह पांडुलिपियां सर आरेल स्टाइन को प्राप्त हुई थीं, जो हिन्दूकुश और काशगर होकर भारतवर्ष से चीन आया था। मरुस्थल में अनेक स्थानों पर खुदाई करवाने के बाद वह मार्च १९०७ ई० में तुंग-हुआंग के मरुद्यान में पहुंचा और तत्काल ही सहस्र बुद्धों की प्रसिद्ध गुफाओं को देखने चल पड़ा। गुफा-मन्दिर के मठाधीश को मरम्मत करवाते समय एक ऐसे बन्द कमरे का पता लगा, जो तब तक अज्ञात था। उसमें उसको लिखित लेख-पट्टों का एक विशाल संग्रह मिला। बड़ी कठिनाई के बाद सर आरेल स्टाइन ने उनमें से कुछ ऐसे पट्टों को प्राप्त किया, जिन में बौद्ध-धार्मिक वाङ्मय के अनेक अंश थे। अधिकांश पांडुलिपिया चीनी भाषा में थीं और यहां हम उन्हीं के विषय में कुछ कहने जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त तिब्बती और संस्कृत आदि अन्य भाषाओं में भी बहुत-सी पांडुलिपियां थीं।

१९०८ ई० में फ्रांस के बिब्लिओथीक नैशनेल की ओर से एक युवा पुरातन चीनी-विद्याविशारद, प्रो० पेल्बा ने इन गुफाओं की यात्रा की और तीन सप्ताह तक इन पट्ट-लेखों का अवलोकन किया। परिणाम स्वरूप इस संग्रह का सर्वोत्कृष्ट अंश, जिसमें ७००० ग्रन्थ थे, विभाजित होकर लंदन और पेरिस पहुंच गया। इन पांडुलिपियों को तीन वर्गों में रखा गया है—लगभग ८५ प्रतिशत बौद्ध, तीन से कुछ अधिक प्रतिशत ताओवादी और शेष १२ प्रतिशत में लौकिक अथवा धर्मनिरपेक्ष विषय समाविष्ट है।

तदुपरान्त अवशिष्ट संग्रह के लगभग १०,००० ग्रन्थ, चीन सरकार के शिक्षा-मंत्रालय की आज्ञानुसार पीकिंग के राष्ट्रीय पुस्तकालय में भेज दिए गए। किआंगसी प्रान्त के लि तुआन फु नामक बौद्ध-विद्वान् ने वहां जाकर ग्रन्थों का परीक्षण और वर्गीकरण किया। वे चीनी त्रिपिटकों के आधुनिक अनुवाद में समाविष्ट नहीं हैं। लितुआन फु ने अपना कार्य समाप्त करने के अनन्तर 'तुंग-हुआंग गुफाओं में प्राप्त बौद्ध-पान्डुलिपियों का परीक्षण और वर्गीकरण, के नाम से एक निबन्ध लिखा; किन्तु पीकिंग में थोड़े ही समय तक रुक पाने के कारण वह सब पांडुलिपियों का

अवलोकन नहीं कर सका। फिर भी, उसने इस संग्रह में महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र, वज्र-सूत्र, विमल कीर्ति-निर्देश-मूत्र आदि पर ऐसी टीकाओं का पता लगाया, जिनकी व्याख्याएं साधारण संस्करणों से भिन्न हैं, और इसलिए उनका अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

इस बात का विवरण देना मनोरंजक होगा कि इन पांडुलिपिओं में से कौन किस समय विशेष लोकप्रिय थी। छठी शताब्दी ईसवी में महापरिनिर्वाण अग्रगण्य था, किन्तु तांग-वंश के अनन्तर उसकी लोकप्रिता बहुत घट गई, और ७ वीं शती के उत्तरार्ध में उसका स्थान निश्चित रूप से सद्धर्म पुंडरीक सूत्र ने—विशेषकर कुमारजीव द्वारा अनूदित संस्करण ने—ले लिया। चीन के विविध भागों में इस ग्रन्थ की १०४६ प्रतियाँ उपलब्ध हैं। सातवीं शताब्दी के आरंभ से वज्र-सूत्र का कुमारजीव-कृत अनुवाद भी काफ़ी लोकप्रिय हो गया था। इस लघु सूत्र की कम-से-कम ६३३ प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें १३ में लेखन-तिथि दी हुई है और २१ प्रतियाँ अखंडित हैं। ८ वीं शती के आरम्भ में ई-त्सिंग कृत सुवर्ण-प्रभास-सूत्र के नूतन भाषांतर को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। सामान्य से अधिक प्रचलित हो पाने वाले सूत्रों में यह संभवतः नवीनतम सूत्र था। प्रसिद्ध यात्रिक हुआन-त्सांग द्वारा अनूदित ६०० खंडों वाली विराट् महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र की ७६० प्रतियां प्राप्त हैं, लेकिन उनमें से किसी में भी लेखन-तिथि नहीं दी हुई है। इस संग्रह में प्रचुरता से मिलने वाली पांडुलिपियाँ प्रज्ञापारमिता हृदय-सूत्र, जो उपर्युक्त वृहत्तर ग्रन्थ का अत्यन्त संक्षिप्त सार-संग्रह है, विमल कीर्ति-निर्देश-सूत्र और सुरांगम-सूत्र आदि ग्रन्थों की हैं।

चीनी प्रजातन्त्र के सप्तम वर्ष में तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री फ़ान युआन-लिएन ने उपासक चिआंग वाई-चाओ के सुझाव के अनुसार पीकिंग के राष्ट्रीय पुस्तकालय में संगृहीत पांडुलिपियों को छाँटने और उनकी परीक्षा करने के निमित्त श्री किआंग-तु को नियुक्त किया, जिसने वहाँ दो वर्ष तक कार्य किया। उसने संग्रह में सालिस्तंब-सूत्र की टीका और ताओ चेंग तथा सेंग-चाओ आदि कृत चिन मिंग चिंग (बुद्ध याचना) की सामूहिक व्याख्या-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्राप्त किया। यह दोनों ग्रन्थ अभी कुछ दिन पहले शंघाई के कमर्शियल प्रेस द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

महायान-सालिस्तंब (?)-सूत्र के अनुवादक श्रमण फ़ा-चेन के जीवन का विवरण किसी भी अभिलेख में नहीं मिला है। उपर्युक्त सूत्रों की टीकाओं के अनुवादक के विषय में भी हमें कोई सूचना नहीं प्राप्त है ; किन्तु पीकिंग की

सूत्र-उत्कीर्णन-परिषद् द्वारा प्रकाशित 'प्रज्ञापारमिता हृदय-सूत्र के सप्तमुखी अनुवाद' के अन्तर्गत तुंग-हुआंग गुफाओं में प्राप्त एक ग्रन्थ है, जिसमें यह अनुलिखित है कि इसका अनुवाद महान् पुण्यशील पंडित त्रिपिटक धर्माचार्य फ़ा-चेन ने किया। इसकी शैली के आधार पर, जो प्रसिद्ध पर्यटक हुआन-त्सांग से मिलती है, हम कह सकते हैं कि संभवतः फ़ा चेन हुआन-त्सांग का ही दूसरा नाम था।

चीनियों और भारतीयों के उज्ज्वल भविष्य के प्रति अपनी उत्कट आशा अभिव्यक्त करते हुए डॉ० टैगोर ने एक बार कहा था—

"जैसे प्रथम विहग, जब उषा अन्धकार में ही होती है, गा उठता है और सूर्योदय का उद्घोष कर देता है, उसी प्रकार मेरा हृदय हमारे महान् भविष्य के आगमन के उद्घोष में गा रहा है। और वह भविष्य तो हमारे समीप आ चुका है। उस नवयुग का स्वागत करने के लिए हमें तैयार हो जाना चाहिए।"

अपनी लम्बी यात्रा से लौटते समय वे सिंगापुर पहुँचे, जहाँ उनकी भेंट पुरातन चीनी साहित्य के विद्वान् प्रो० तान युन-शान से हुई। सांस्कृतिक संबंधों को पुनरुज्जीवित करने के सम्बन्ध में कवि की कल्पना से प्रो० तान बहुत ही प्रभावित और प्रेरित हुए और उन्होंने १९३४ ई० में चीन और भारत दोनों देशों में चीनी-भारती सांस्कृतिक परिषदों का संगठन किया। कवि के निर्देशन और प्रेरणा के अनुसार इस सांस्कृतिक परिषद् ने १९३७ ई० में शान्ति-निकेतन में चीन-भवन की स्थापना की और आरम्भ से ही प्रो० तान युन शान को उसका प्रधानाचार्य नियुक्त किया। चीन-भवन में दूर और निकट के देशों—चीन, तिब्बत, थाईदेश, इंडोनेशिया, लंका और भारत—से विद्वान् और विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते रहे हैं। इन में से कलकत्ता-विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने चीन-भवन के आरंभिक दिनों में उसके अनुसंधान-विभाग के अवैतनिक प्रिंसिपल के पद पर कार्य किया था। डा० वी० वी० गोखले, और पंडित एन० ऐया स्वामी शास्त्री ने भी अनुसंधान-कार्य के निर्देशन में सहायता की है। १९४५ ई० में चीन-भवन को अनुसंधान के निर्देशन और शिक्षण-कार्य के लिए डा० पी० सी० बागची और पूना विश्वविद्यालय के डा० पी० वी० बापट का सहयोग प्राप्त हुआ। अनुसंधान करने वाले विद्यार्थी तथा विद्वान् अध्ययन की सुनिर्धारित दिशाओं में कार्य करते हैं और चीनी, संस्कृत, तिब्बती, हिन्दी और बंगाली भाषाएँ पढ़ने में एक दूसरे की सहायता पहुंचाते रहे हैं।

१९३९ ई० में पंडित नेहरू ने चीन की युद्धकालीन राजधानी चुंगकिंग की

यात्रा की। चीन में अपने चौदह दिन के प्रवास में वे स्ज़ीच्वान प्रान्त की राजधानी चेंग-तु को भी गए। चीन नें पंडितजी का बहुत ही शानदार स्वागत हुआ। राष्ट्रपति और मैडम चिआंग काई-शेक भी १९४२ में भारतवर्ष आए। उन्होंने कलकत्ता, दिल्ली, शान्ति-निकेतन और तत्कालीन उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश की यात्रा की। जहाँ-जहाँ वे गए, उनका महान् स्वागत हुआ। उनकी यात्रा का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को भारत को स्वतंत्र कर देने के लिए राजी करना था। राष्ट्रपति चिआंग ने कहा—"मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि हमारा मित्र ग्रेट ब्रिटेन, बिना भारतवासियों द्वारा माँग प्रस्तुत किए जाने की प्रतीक्षा किए, उनको यथासंभव शीघ्र सच्ची राजनीतिक शक्ति प्रदान करेगा, जिससे वे अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक संपदा को और भी अधिक बढ़ा सकें, तथा इस प्रकार यह अनुभव कर सकें कि उनका युद्ध में भाग लेना केवल आक्रमण-विरोधी राष्ट्रों की विजय के लिए ही नहीं है, वरन् भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए उनके संघर्ष में क्रान्तिकारी विन्दु भी है। एक तटस्थ दृष्टि से विचार करने पर मैं समझता हूँ कि यही नीति सर्वोत्तम सिद्ध होगी और ब्रिटिश साम्राज्य को गौरव प्रदान करेगी।" (जेनेरैलिज़मो का भारत को संदेश)।

इसके पूर्व परमपूज्य ताई-ह्न की अध्यक्षता में एक चीनी बौद्ध-मंडल और डा० ताइ चि-ताओ के नेतृत्व में, जो चीन की राष्ट्रीय सरकार की युआन-परीक्षा के प्रधान थे, एक चीनी सद्भाव-मंडल भी भारत में आ चुका था। इन मंडलों के आगमन से भी भारत और चीन के सांस्कृतिक संबंधों के पुनरुज्जीवन में सहायता मिली।

इन के अतिरिक्त १९४३ ई० में डा० कु यु ० हिऊ के नेतृत्व में एक शिक्षा और संस्कृति मंडल भारत में आया और उसने यहाँ के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगर और विश्वविद्यालय की यात्रा की। इस मंडल की यात्रा से भी चीन और भारत के मध्य घनिष्ठ संबंधों की पुष्टि हुई। आगामी वर्ष चीन की राष्ट्रीय सरकार ने डा० राधाकृष्णन् को चीन में एक व्याख्यान-माला देने और वहाँ के प्रमुख विद्वानों से मिलने के लिए आमंत्रित किया। वे वायुयान द्वारा ६ मई को कलकत्ते से चुंकिंग गए और चीन में दो सप्ताह बिताकर २१ मई को भारत वापस आए। अपने प्रवास-काल में उन्होंने अपने सम्मान में आयोजित प्रीति-भोजों और जलपान गोष्ठियों में अनौपचारिक वार्ताओं के अतिरिक्त विविध विषयों पर बारह व्याख्यान दिए, जो 'भारत और चीन' के नाम से पुस्तक-रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

चीनी-भारती-सांस्कृतिक-परिषद् चीन और भारत के मध्य विद्यार्थियों और विद्वानों के विनिमय में भी सहायता पहुँचाती रही है। १९४३ ई० में चीन और भारत की सरकारों ने उच्च शिक्षा के लिए अपने विद्यार्थियों का आदान-प्रदान किया। १९४५ ई० में चीन की राष्ट्रीय सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय और शान्ति-निकेतन में चीन संबंधी विषयों के अध्ययन के लिए दस छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। १९४७ में भारतीय सरकार ने चीन में अध्ययन करने के लिए दस विद्यार्थियों को फिर चुना। उन्होंने पीकिंग के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में डा० पी० सी० बागची के निरीक्षण में अध्ययन किया, जिनको उस समय भारत सरकार ने उक्त विश्वविद्यालय के प्राच्य-विद्या-विभाग को संगठित करने के लिए नियुक्त किया था।

१९४९ ई० में भारत सरकार के शिक्षा-विभाग ने डा० कारसुन चांग को भारत आने के लिए आमंत्रित किया। वे आधुनिक चीन के महान् व्यक्तियों में से हैं और उस समय चीन की डेमोक्रेटिक लीग के अध्यक्ष थे। १९४९ ई० में चीनी कम्युनिस्टों के हाथ में शक्ति आने के बाद वे भारतवर्ष आए और यहाँ के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा विद्वत् परिषदों में चीनी तत्त्वज्ञान एवं राजनीतिक विचार-धारा पर व्याख्यान दिए। वे माओ त्से-तुंग की "एक-पक्ष-में-हो-जाओ" की नीति से सहमत नहीं थे, क्योंकि इससे चीन को सोवियत की आक्रामक नीति का यंत्र और दास बन जाने को विवश होना अनिवार्य था। जनतंत्री समाजवादी होते हुए भी उनका समाजवादी कार्यक्रम जनता को मार्क्सीय जीवन-शैली अपनाने के लिए बाध्य नहीं करता। परम तत्त्व के प्रति इस जीवन शैली का दृष्टिकोण नास्तिक है, मनुष्य के प्रति उसका दृष्टिकोण प्रकृतिवादी है और व्यक्तित्व की पवित्रता में वह विश्वास नहीं करती। इसलिए वे पीकिंग की नई सरकार से दूर ही रहे, यद्यपि उनके दल के जो सदस्य कम्यूनिस्टों से मिल गए थे, उनम से कोई उप-राष्ट्रपति है, कोई उप-प्रधान मंत्री अथवा मुख्य-चीन की राष्ट्रीय लोक- सभा की स्थायी समितियों का सदस्य है।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष में भी चीन-संबंधी अध्ययन की रुचि और इच्छा बढ़ रही है। विश्वभारती के चीन-भवन के अतिरिक्त, जहाँ अध्ययन के लिए चीनी पाठ्यक्रम है ही, कलकत्ता और प्रयाग-विश्वविद्यालयों ने अपने यहाँ चीनी विभाग स्थापित किए हैं। भारत सरकार के तत्त्वावधान में सुरक्षा-विभाग के विदेशी भाषा विद्यालय में और देहरादून के सैनिक महाविद्यालय में चीनी भाषा पढ़ाई जाती है। अभी कुछ दिन हुए तब काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय ने

एशियाई देशों के मध्य सद्भाव और सांस्कृतिक संबंधों को पुष्ट करने के उद्देश्य से एक एशिअन-स्टडीज़-स्कूल खोला है, जहाँ चीन संबंधी विषयों का अध्ययन भी किया जाता है।

१९५० ई० में तिब्बत के दलाई लामा की महापूज्य माता ने चीन, भारत और तिब्बत के मध्य सांस्कृतिक सद्भाव को प्रोत्साहित करने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय को एक निधि प्रदान की। दिल्ली-विश्वविद्यालय ने इस निधि का उपयोग चीनी-विद्याओं के अध्यापन के लिए तीन वर्ष तक एक आचार्य-नियुक्त करने में किया। इस पद पर इस ग्रन्थ का विनम्र लेखक काम कर रहा था।

यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि चीन और भारत के मध्य सद्भाव को और भी घनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से चीनी विद्वानों ने भारतीय विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। भारतीय महाकाव्य महाभारत का सार-रूप में चीनी अनुवाद पहले ही हो चुका था और कालिदास के शाकुन्तल का भी भाषांतर कर लिया गया था। आज-कल भी वे धर्म, नाटक, संगीत आदि पर प्रसिद्ध ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद करने में व्यस्त हैं। कुछ पुस्तकों के नाम निम्नलिखित हैं:—

१. आधुनिक भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन—कारसुन चांग कृत
२. कनफ्यूशसवाद, ताओवाद और गांधीवाद—कारसुन चांग कृत
३. भारत की प्रज्ञा—लिन युतांग कृत
४. भारतीय-दर्शन—लिआंग शुएह्-मिंग कृत
५. दिव्य संत गांधीजी—तान युन-शान कृत
६. हिन्द स्वराज (होम रूल) —तान युन-शान कृत
७. भारत-यात्रा अभिलेख—तान युन-शान कृत
८. वेदान्त-दर्शन— चाउ हिआंग-कुआंग कृत
९. भारतीय स्वतंत्रता के प्रमुख व्यक्ति और उनकी सैद्धान्तिक पृष्ठ-भूमि—चाउ हिआंग-कुआंग कृत
१०. महाभारत—मी वेन-काई कृत
११. सरोजिनी नायडू की कविताएं —मी वेन-काई कृत
१२. शकुंतला—लु चिएन कृत
१३. प्राचीन और आधुनिक भारत की प्रसिद्ध नारियाँ—कुमारी लिली मी कृत
१४. भारतीय कथाएं—व० पा-चाउ कृत

डा० कुन्मुन चांग, लेखक के साथ।
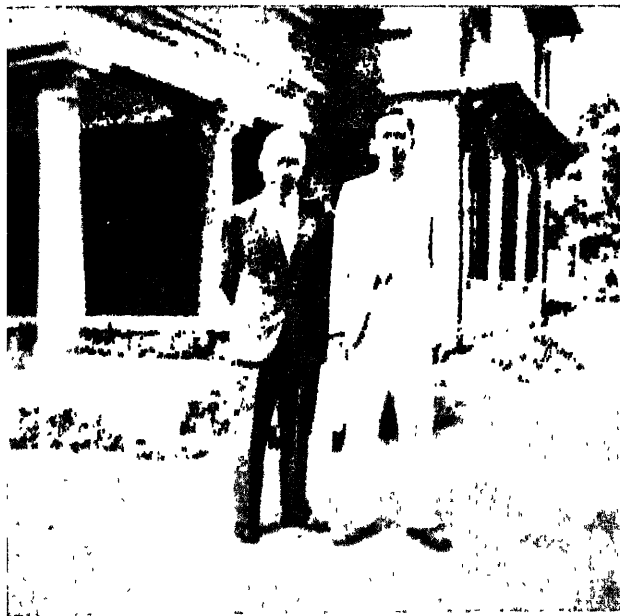
(भारत सरकार से निमंत्रित होकर आप सन् १९४९ में भारत आये थे)

१५. भातीय स्वतंत्रता और चीन तथा भारत के सम्बन्ध—वू चेन-त्साई कृत

१६. आधुनिक भारत—चिआंग चुन-चांग

इन पुस्तकों का दक्षिण-पूर्वी एशिया और राष्ट्रीय चीन के क्षेत्रों में रहने वाली चीनी बस्तियों में अच्छा स्वागत हुआ।

यहां इस बात का उल्लेख करने में प्रसन्नता हो रही है कि भारत में कुछ चीनी भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी हैं, जिन्होंने बौद्ध तीर्थ-स्थानों में मठों का निर्माण करवाया है, उदाहरणार्थ शाक्यमुनि द्वारा धर्मचक्र-प्रवर्तन के स्थल सारनाथ में चीनी बौद्ध-मन्दिर ; शाक्यमुनि के बोधि-प्राप्ति के स्थान बोधगया में ता-चिआओ स्ज़ू अथवा महाबोधि-मठ ; सहेत-महेत (उत्तर प्रदेश) में हुआ क्वांग स्ज़ू अथवा जेतवन का 'पुष्पित प्रकाश मठ'। बिहार के प्राचीन विश्व-विद्यालय नालंदा में भी, जहां हुआंग-त्सांग ने अध्ययन किया था, एक चीनी मन्दिर है। और अन्तिम 'महासुख मठ' कसिया में है, जिसको प्रो० वोगल ने मल्लों की प्राचीन राजधानी और शाक्यमुनि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के स्थल कुशीनगर से अभिन्न माना है।

संप्रति प्रवासी चीनी उपासकों ने भारत में चीनी मठों की सहायता और संचालन के निमित्त तथा प्रचार कार्य के लिए 'भारतीय चीनी बौद्ध परिषद्' की स्थापना की है।

जिस प्रकार ईसाई मठवासियों ने यूरोप के मध्ययुग में क्लासिक पुनरुत्थान के निमित्त ग्रीक और लैटिन साहित्य को सुरक्षित रक्खा था, उसी प्रकार बौद्ध भिक्षुओं ने भारत और चीन के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान का शिलारोपण कर रक्खा था। अब इन पुरातन सूत्रों को पुनरुज्जीवित करना, विद्वानों के ऊपर निर्भर करता है।

उपसंहार

बौद्धधर्म और चीनी संस्कृति का समन्वय

चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश कम-से-कम १८ शताब्दियों पूर्व हुआ था और उसके विशाल बौद्ध-साहित्य तथा उसमें बौद्धधर्म के बहुमुखी विकास के परिमाण के कारण उस को बौद्धमत का दूसरा स्रोत माना जाता है।

अतः हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है—बौद्धधर्म का चीनी रूप किस सीमा तक चीन तक ही सीमित न रहकर जापान, कोरिआ, अन्नाम आदि देशों में फैला और उसने तिब्बतीय बौद्धधर्म को कहाँ तक प्रभावित किया ?

अतएव, एक समान सभ्यता के सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए चीन और भारत में कोई उभयनिष्ठ आध्यात्मिक आधार अवश्य होना चाहिए। और इस आधार की जड़ें, जितना प्रायः स्वीकार किया जाता है, उससे कहीं अधिक गहराई में हैं। उस को इस प्रकार अद्वितीय लक्षणों से युक्त बनाने वाले असाधारण कारण अवश्य ही रहे होंगे। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:—

(१) चीन में बौद्धधर्म के प्रवेश को सहज बनाने वाली परिस्थितियां—हान-युग के आरम्भिक काल में चीन का जैसा राजनीतिक एकीकरण संपन्न हुआ था, वैसा पहले कभी संपन्न नहीं हो सका था। इसके अतिरिक्त, जिन सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों का सूत्रपात चुन-चिउ-काल में हुआ था, उनके परिणाम क्रमशः घनीभूत हो चुके थे। इस एकीकरण और स्थिरता के संपन्न होने के बाद विचार-जगत् में भी एक समानुरूप एकीकरण का आविर्भाव होना स्वाभाविक ही था।

१४० ई० पू० में हान-सम्राट् वू-ती के राज्यारोहण के उपरान्त प्रसिद्ध कनफ्यूशसमतानुयायी तुंग चुंग-शु ने एक योजना बनाई। उसका कहना था कि, "जो कनफ्यूशस के षट्धर्मों या कलाओं की सीमा के अन्तर्गत नहीं हैं, उसको समाप्त कर देना और आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए[१]। और, "विद्वानों की शिक्षा के लिए एक ताई-हुएह से बढ़कर महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं है। ताई-हुएह पुण्यशील

---

१ दे० 'पूर्वकालीन हान-वंश की पुस्तक की तुंग चुंग-शु की जीवनी'

विद्वानों की शिक्षा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है, और शिक्षा की आधार-शिला है ।..............महाराज के सेवक की इच्छा है कि श्रीमान् एक ताई-हुएह का निर्माण करवाएं और उसमें साम्राज्य के विद्वानों की शिक्षा के लिए श्रेष्ठ अध्यापक नियुक्त करें[1] ।

सम्राट् वू-ती ने तुग चुंग-शुन के आवेदन-पत्र को स्वीकार कर लिया ; कनफ्यूशस मत को उच्च स्थान दिया गया तथा दर्शन की अन्य विचार-धाराएं तिरस्कार की पात्र बन गई । इसके उपरान्त सरकारी नौकरियां पाने के लिए कनफ्यूशस-मत का अवलम्बी होना अनिवार्य हो गया ; और यही नहीं, इस मत को भी उस तरह का होना अनिवार्य था, जैसा सरकार ने निर्धारित कर दिया था। इस प्रकार "साम्राज्य के सभी प्रमुख व्यक्ति एक ही जाल में जकड़ गए" और वाणी तथा विचार-स्वातंत्र्य का वह वातावरण जो चुन-चिऊ के समय से चला आ रहा था, विलुप्त हो गया । आगे चलकर कनफ्यूशस को मनुष्य के स्तर से उठाकर एक दैवी पुरुष के उच्च पद पर आसीन कर दिया गया और कनफ्यूशसीय विचार-धारा को धर्म का रूप दे दिया गया।

यद्यपि तत्कालीन चीनी विचार-धारा अधिकतर कनफ्यूशस मत के आस-पास केन्द्रित हो गई थी, लाओ-त्जे और चुआंग-त्जे के विचार भी अन्तःसलिला धाराओं की तरह प्रसारित होते रहे और अनेक महान् विचारकों ने उनकी महत्ता स्वीकार की । उदाहरणार्थ—यांग-हिउंग नामक हान-कालीन कनफ्यूशसवादी ने जो दो पुस्तकें, 'अगोचर तत्त्व' और 'धर्म-सूक्तियाँ,' लिखीं, उन में लाओ-त्जे तथा चुआंग-त्जे के विचार पूर्णरूप से संगृहीत हैं । हान-वंशीय वांग-चुंग के समय में ताओवाद का प्रचार सब से अधिक था। स्वयं वांग-चुंग ने अपनी लुन हेंग (आलोचनात्मक निबन्ध-माला) नामक पुस्तक में तत्कालीन संकीर्ण कनफ्यूशसवाद की आलोचना की है और ताओवाद का प्रतिपादन किया है । इससे यह सिद्ध होता है कि उदारमना विद्वान् दूसरी विचार-धाराओं के नए विचारों और सिद्धांतों के प्रति जागरूक थे ।

मैं यह पहले ही बतला चुका हूँ कि चिन (२५५-२०७ ई० पू०) और हान (२०६ ई० पू०—२२० ई०) युगों में राजनीतिक एकीकरण संपन्न होने के साथ-साथ विचार-जगत्, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी एक समानरूप एकीकरण घटित हो गया था । तदुपरान्त, राजवंशों के सतत बदलते रहने पर

---

१ दे० 'पूर्वकालीन हान-वंश की पुस्तक की तुंग चुंग-शु की जीवनी'

भी, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में कोई मौलिक उलट-फेर नहीं हुआ। इन सभी क्षेत्रों में अतीत-परम्परा अक्षुण्ण रही और इस कारण परिवेश तथा अनुभूति के नए विकास की गुंजाइश पहले की अपेक्षा बहुत कम रह गई। इस स्थिरीकरण के साथ विचार-जगत् भी एक तद्वत् गतिरोध से आक्रान्त हो गया, और पूर्वगामी युग की उदारता तथा विविधता की तुलना में, वह हान-युग में तथा उसके बाद अतीत का सनातनी अनुगामी-मात्र होकर रह गया। कनफ्यूशसीय पुरातन विद्यानुराग के इस युग में चीनी विचार-धारा को विदेशी बौद्ध-धर्म के रूप में एक नितान्त नूतन तत्त्व प्राप्त हुआ।

(२) **ताओवाद का महायान से सादृश्य**—ताओवाद के सिद्धान्त अनेक प्रकार से महायान संप्रदाय के सिद्धान्तों से मिलते हैं। प्राचीन चीनी विद्वानों ने ताओ की परिभाषा 'मनुष्य का मार्ग, अर्थात् मानवीय नैतिकता, आचार अथवा सत्य' कहकर की है; किन्तु हमें ताओ ते चिंग अर्थात् 'मार्ग और उसकी शक्ति' (नामक ग्रन्थ में) 'ताओ' का दार्शनिक अर्थ मिलता है। उसके अनुसार सृष्टि के उत्पन्न होने के पहले एक पूर्ण आदि तत्त्व अवश्य रहा होगा और वही आदि तत्त्व ताओ है। हान फाई त्जे के 'लाओ-त्जे की व्याख्या' नामक अध्याय में लिखा है :—

"ताओ वह है, जिसके कारण सभी वस्तुएँ ऐसी हैं, और सभी तत्त्व जिसके अनुरूप हैं। तत्त्व-सिद्ध वस्तुओं के चिह्न हैं। ताओ वह है, जिससे सभी वस्तुएँ सिद्ध (पूर्ण) होती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि ताओ वह है, जो तत्त्व प्रदान करता है।"

जो भी वस्तु है, उसका एक अपना तत्त्व है, किन्तु वह सर्वसमावेशी आदि तत्त्व, जिससे सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं, ताओ है। ताओ ते चिंग में कथन है :—

"[illegible] और स्वर्ग की सृष्टि के पूर्व किसी ऐसे तत्त्व की सत्ता अवश्य थी, जो पूर्ण [illegible] अलक्षण था। वह निश्चल और निर्विकार, एकाकी और (क्षय से) निर्भय था। उसे सभी वस्तुओं की जननी कह सकते हैं।

"मैं उसका नाम नहीं जानता, मैं उसे 'ताओ' (मार्ग) की संज्ञा देता हूँ। उसको नाम देने का (और) प्रयत्न कर के, मैं उसे 'विराट्' की संज्ञा देता हूँ[1]।"

चुआंग-त्जे लाओ-त्जे का एक शिष्य था। उसने भी यही प्रतिपादित किया

---

१ दे० जेम्स लेज कृत 'ताओवाद के ग्रन्थ'

है कि ताओ ही सर्वव्यापी आदि तत्त्व है, जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई है। यदि वस्तुएँ हैं, तो ताओ अवश्य होना चाहिए। अत: "कोई भी स्थान नहीं है, जहां वह न हो।" चुआंग-त्ज़े की पुस्तक में लिखा है :—

"ताओ की सत्ता और प्रमाण तो हैं ; किन्तु क्रिया और आकार नहीं। वह संप्रेषित तो किया जा सकता है, लेकिन प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह स्वयंभू और स्वावलम्बी है। वह स्वर्ग और पृथ्वी के पहले था, वह अनादि है। वह देवताओं के दिव्यत्व और जगत् की उत्पत्ति का कारण है। वह खमध्यबिन्दु के भी ऊपर है ; किन्तु ऊँचा नहीं है। वह अतल के अधोबिन्दु के भी नीचे है, फिर भी नीचा नहीं है। वह स्वर्ग और पृथ्वी के पूर्व था ; किन्तु पुरातन नहीं है। वह पुरातनतम से भी पुराना है ; किन्तु पुराना नहीं है।"

"सृष्टि को उत्पन्न करने वाला सर्वव्यापी आदि तत्त्व होने के कारण वह स्वयंभू और स्वावलम्बी है। अनादि और अनन्त होने के कारण वह शाश्वत है और संसार की सभी वस्तुएँ अपनी सत्ता के लिए उस पर अवलम्बित हैं।"

ताओवाद के अनुसार जगत् का प्राक्तन रूप "सूक्ष्म, आत्मिक, गूढ़ और बेधक है" लाओ-त्ज़े ने कहा है कि "हम ताओ को देखते हैं ; किन्तु नहीं देख पाते। ताओ को सुनते हैं ; पर सुन नहीं पाते। ताओ को टटोलते हैं ; किन्तु पकड़ नहीं पाते।.............ताओ सदा नामातीत रहता है, और बारम्बार असत् को प्राप्त होता है। इसी को निराकार का आकार, अरूप का रूप कहा गया है। इसी को लोकोत्तर दुर्ज्ञेय कहा गया है। सामने इसका आरम्भ नहीं दिखाई पड़ता, न पीछे इसका अन्त दिखाई देता है।"

ताओ को असत् कहा जाता है, किन्तु यह असत् भौतिक पदार्थों के "सत्" भाव से विरोध दिखलाने के लिए प्रयुक्त होता है, उसका अर्थ-मात्र शून्य या अभावात्मकता नहीं है ; क्योंकि समस्त वस्तुओं का मूल अं [illegible]ो आदि तत्त्व होते हुए वह "कुछ नहीं" कैसे हो सकता है ?

ताओ ते चिंग अथवा 'मार्ग और उसकी शक्ति' का कथन है :—

क्रियाशीला शक्ति के भव्यतम रूप
प्रसूत होते हैं ताओ से, जो है उनका एकमात्र उत्स।
ताओ के स्वरूप को जान सकता कौन ?
भागता है वह हमारी दृष्टि से, स्पर्श से।
दृष्टि से करता पलायन, स्पर्श से करता पलायन
फिर भी सब वस्तुओं के रूपाकार लेते शरण उसी के क्रोड़ में।

दृष्टि से करता पलायन, स्पर्श से करता पलायन,
किन्तु आभास उनके सत्य लगते ।
गूढ़ है वह, तमस्वी, और है दुर्ज्ञेय,
स्थिति उसी में है वस्तुओं के सार की ।
वे सार ही करते अनावृत सत्य को,
कौन, देखा गया कब, जाना वहां ही जाएगा,
नाम उसका, नष्ट होता नहीं जो ।
इस भांति लेतीं जन्म
और रहतीं अपरिचित अवसाद से,
वस्तुएँ निज शोभन व्यूह में ।
किन्तु कैसे जान पाता हूँ
कि सत्य यह है
वस्तु मात्र के सौन्दर्य का ?
इसी (ताओ) से[1]।"

पलायन करने का अर्थ है कि उसकी सत्ता भौतिक नहीं है, और 'वस्तुओं के सार' का आशय है कि वह शून्य जैसा असत् नहीं है ; अथवा १४ वें अध्याय के यह शब्द "निराकार का आकार, अरूप का रूप" अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे। ताओवादी वांग-पी ने उसी ध्वनि में कहा है—

"यदि हम यह कहना चाहें कि वह असत् है, तो हमारे सामने वस्तुएँ विद्यमान हैं, जो उस से उत्पन्न होकर पूर्णता प्राप्त करतीं हैं। और यदि हम यह कहें कि वह सत् है, तो हम उसका रूप अनुभव नहीं कर पाते।"

उपर्युक्त उद्धरण हमें "धर्म" के संबंध में बौद्ध दार्शनिक विचार-धारा का स्मरण दिला देते हैं, जो ताओ से मिलता-जुलता है। धर्म एक ही साथ प्रस्तुत भी है और आदर्श भी है; वह "है" भी है और "होना चाहिए" भी। वह प्रकृति में उपलब्ध भी है, और प्रयत्न द्वारा सिद्ध किए जाने वाला भी कुछ है। वह स्वयं रूप, स्वभाव, स्वलक्षण है। स्वलक्षण होने के कारण वह किसी अन्य के लक्षण द्वारा निरूपित नहीं हो सकता ; अतः वह विचारातीत, वर्णनातीत और अपरिमेय है। वह तथागत गर्भ है, भूततथता अथवा सत्य रूप है। संक्षेप में, वह जगज्जननी है। जगत् का मूल होते हुए भी वह सभी लक्षणों के परे है। अश्वघोष

---

१ दे० 'ताओवाद के ग्रन्थ'

के अनुसार वह भूततथता है। नागार्जुन के अनुसार वह शून्य है। इसलिए श्रद्धोत्पाद-शास्त्र में कहा गया है :—

"भूततथता की आत्मा अथवा मन गोचर और अगोचर जगत् का परम-सार है। सभी रूपों में यह एक ही रहती है, यही इस एकात्मा का स्वरूप है। यह सोचना कि भिन्न रूपों में वह भिन्न-भिन्न है, मिथ्या विचार है। रूपों के व्यवधान के परे दृष्टि पहुँचाने पर हमें स्पष्ट हो जाएगा कि जगत् के नाना रूप आत्मा के यथार्थ भेद नहीं हैं, वरन् एक ही शक्ति के विविध प्रस्फुटन हैं। इसीलिए इस आत्मा के विषय में पर्याप्त रूप से कुछ भी कह सकना, उसको नाम देना या उसके विषय में सोच सकना असम्भव रहा है, क्योंकि वह पदार्थों का परम सार, अविकारी और अविनाशी है; इसलिए हम उसे भूततथता अथवा सत्य आकार कहते हैं, किन्तु उसको नाम देने के सारे प्रयत्न अपूर्ण हैं और गहराई में न जाने से, सच्चा अर्थ प्राप्त नहीं हो सकता। उसको भूततथता का नाम हमने अवश्य दिया है, किन्तु वह है निराकार। साधारण विचारों के जाल से बचने के उद्देश्य से ही हमने इस नए शब्द को गढ़ा है; किन्तु आदिरूप एक अविनाशी तत्त्व है और सभी पदार्थ सत्य हैं, यद्यपि ज्ञानेन्द्रियों को सबका अनुभव नहीं कराया जा सकता। सभी रूप एक ही भूततथता के विविध प्रस्फुटन हैं। स्मरण रखना चाहिए कि वह सामान्य भाषा, सामान्य विचार के परे है और इस कारण हमने उसको भूततथता का नाम दिया है[1]।"

जगत् के प्राक्तन रूप की परिभाषा है—"सभी पदार्थ सामान्य भाषा और सामान्य विचार के परे हैं।" किन्तु, "आदि रूप का स्वरूप एक ऐसा सत्य है, जिसका नाश नहीं होता, क्योंकि सभी पदार्थ सत्य हैं, यद्यपि उनका यथार्थ अनुभव ज्ञानेन्द्रियों को नहीं कराया जा सकता और सभी रूप भूततथता के विविध प्रस्फुटन हैं।"

यद्यपि हम उसे भूततथता कहते हैं, उसका कोई रूप नहीं है। यदि जगत् का प्राक्तन रूप शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता, तो वह उस प्राक्तन रूप का सत्य अर्थ नहीं है; अतएव श्रद्धोत्पाद-शास्त्र में कहा गया है :—

"हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि भूततथता अथवा सत्य रूप असत्य प्रतीत होता है, किन्तु सत्य है। दूसरे शब्दों में, वह यथार्थ चित्त है; चिरन्तन, अविकारी और विशुद्ध है और इसलिए हमने उसे सत्य अद्वैत कहा है, किन्तु वह निरा-

---

१ दे० रिचार्ड कृत श्रद्धोत्पाद-शास्त्र

कार है। पदार्थों के असत्य ज्ञान को त्याग देने पर ही, हम इस सत्य का अनुभव कर सकते हैं।[1] जगत् का प्राक्तन रूप अस्पष्ट, इंद्रियातीत और निराकार होने के कारण उसको भाषा के माध्यम से नहीं व्यक्त किया जा सकता। जगत् के नानात्मक रूप आत्मा के सत्य भेद नहीं हैं, वरन् एक ही शक्ति के विविध प्रस्फुटन हैं; इसलिए इस अभिन्न आत्मा के विषय में यथार्थ भाषा, नाम और विचार का प्रयोग असंभव रहा है। किन्तु, यदि हमें कुछ के धर्म का प्रचार करना है, तो हमें काम चलाऊ नाम गढ़ने पड़ेंगे, जिससे लोग उसे समझ सकें। ताओवादी और बौद्ध एक ही प्रस्थान बिन्दु से चलते हैं। ताओ ते चिंग का कथन है :—

"वह ताओ, जिसको ताओ कहा जा सकता है, शाश्वत ताओ नहीं है। वह नाम जिसका नाम रक्खा जा सकता है, शाश्वत नाम नहीं है। वह अनामी स्वर्ग और पृथ्वी का मूल है। नामी असंख्य पदार्थों का जनक है। इसीलिए कहा गया है, कि 'जो इच्छारहित है, वही जगत् के आध्यात्मिक सत्य को जान सकता है, किन्तु जो इच्छाओं के जाल में फँसा हुआ है, वह अपने चारों ओर फैली वस्तुओं के छिलके मात्र को जान पाता है'। यह दोनों मूलतः एक हैं, केवल नाम से भिन्न हैं। उनकी अद्वयता एक रहस्य है। निस्संदेह वह रहस्यों का रहस्य है। समस्त आध्यात्मिकता का वह द्वार है।"

पूर्वगामी पृष्ठों में जैसा बतलाया जा चुका है कि सर्व पदार्थों का मूल तत्त्व स्वयं भी स्वर्ग, पृथ्वी और अन्य असंख्य पदार्थों की तरह कोई पदार्थ या वस्तु नहीं हो सकता। पदार्थों को सत् कहा जा सकता है, किंतु ताओ पदार्थ नहीं है और इसलिए उसे असत् ही कहा जा सकता है। किन्तु, दूसरी ओर ताओ से ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई है, अतः उसको एक अर्थ में सत् भी कह सकते हैं। इसी कारण ताओ को सत् और असत् दोनों ही कहते हैं। असत् उसके सार-तत्त्व को व्यक्त करता है, सत् उसके सक्रिय रूप को। वस्तुतः सत् और असत् दोनों ताओ से उद्भूत हुए हैं; अतः ताओ के ही दो पक्ष हैं। इस सिद्धांत का प्रतिरूप श्रद्धोत्पाद-शास्त्र के इस कथन में मिलता है :—

"उस अद्वय आत्मा के दो पक्ष हैं। एक शाश्वत अगोचर आत्मा है और दूसरा अस्थायी अन्तर्भूत आत्मा है। यह दोनों पक्ष प्रत्येक पदार्थ में संयुक्त होते हैं, क्योंकि वे वस्तुतः एक ही हैं।"

लाओ-त्ज़े के अनुसार जगत् के पदार्थों के नाम और रूप मनुष्य के विभेदक

---

१ दे० 'रिचार्ड कृत श्रद्धोत्पाद-शास्त्र'

मन जन्य हैं। ताओ ते चिंग अथवा 'मार्ग और उसकी शक्ति' में उसने कहा है :—

"प्रत्येक पदार्थ से यह स्पष्ट है कि यदि सुन्दरता सुन्दरता का प्रदर्शन करती है, तो वह निरी कुरूपता हो जाती है। उसी तरह यदि शुभ शुभ का प्रदर्शन करता है, तो वह अशुभ हो जाता है।"

अपने मन को असत्य नाम-रूपों से कैसे मुक्त करें ? ऐसा अहंता के नाश की स्थिति प्राप्त कर लेने से ही हो सकता है। लाओ-त्ज़े ने कहा है —

"मेरे अपने शरीर के कारण मुझे बड़ी पीड़ा सहनी पड़ती है। जब मेरा शरीर ही नहीं रहेगा, तब कौन-सी पीड़ा रह जाएगी !"

और सचमुच, यदि हमारा शरीर न रहे, तो हमारे चित्त से असत्य नाम-रूप का उद्भव ही न हो। यह विचार महाप्रज्ञापारमिता-हृदय-सूत्र के निम्नलिखित कथन के ठीक समान है :—

"प्रज्ञापारमिता की साधना पूर्ण होने पर हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि पंच स्कंध शून्य, भ्रामक और असत्य हैं। इसके फलस्वरूप हम दुःख और बाधा से मुक्त हो जाते हैं।"

पंचस्कंध अर्थात् सत्ता के पांच तत्त्व यह हैं—रूप-स्कंध, यानी ज्ञानेन्द्रियां और उनके विषय ; विज्ञान-स्कंध, यानी बुद्धि या संवेदना की चेतना ; वेदना-स्कंध, यानी पीड़ा और परितोष अथवा उनका अभाव ; संज्ञा-स्कंध, यानी नाम और शब्दों द्वारा उत्पन्न होने वाला ज्ञान अथवा विश्वास ; और संस्कार-स्कंध, यानी घृणा और भय जैसे मनोविकार। यदि यह पंचस्कंध शून्य हैं, तो पदार्थों का वाह्य रूप शून्य और असत्य है ; इसलिए जो भ्रामक बुद्धि के विकृत प्रभाव से मुक्त हो गया है, उसको किसी अमंगल से भय नहीं रह जाता।

चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश हान-काल में हुआ था। उस समय लाओ-त्ज़े की विचार-धारा व्यापक रूप से प्रचलित थी। चेन-ली (१८१०–१८८२ ई०) ने इस बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि हान-वंश के उदय के समय ह्वांग लाओ अर्थात् ह्वांग का मत, जिसको ताओवादी अपना संस्थापक मानते हैं तथा लाओ-त्ज़े की विचारधारा बहुत लोकप्रिय थी और वेंग तथा चिंग दोनों सम्राट् उसका प्रयोग राजदरबार में करते थे। बौद्धधर्म में भी वैसे ही विचार-सूत्र की सृष्टि हुई ; इसलिए तथा अधिक स्पष्ट होने के कारण उसने ताओवाद पर विजय प्राप्त कर के उसे हज़म कर लिया। लेकिन, ताओवाद एकदम

विलुप्त नहीं हुआ, विलुप्त होने की आवश्यकता भी नहीं थी। चीनियों ने दोनों से अपनी आध्यात्मिक क्षुधा तृप्त की।

(३) **कनफ्यूशसवाद और महायान का सादृश्य।** इन दोनों की विचार-धाराओं में भी अनेक समानताएं हैं। हमारी समझ में कनफ्यूशस के नीति-दर्शन की सब से बड़ी सफलता मध्यम मार्ग को ऐसा सूत्र-रूप देने में है, जो पुरातन उत्कृष्ट ग्रन्थों में नही मिलता। इसका सारा श्रेय उसी को है। उसका प्रतिपादन 'साहित्य-सीकर' और 'मध्यम पथ' में हमें बारंबार मिलता है। एक बार त्ज़े-कुंग ने उससे पूछा—"क्या ऐसा कोई एक शब्द हो सकता है, जो सारे जीवन में सदाचारण के लिए पथ-प्रदर्शक का काम कर सके ?" कनफ्यूशस ने उत्तर दिया —"क्या पारस्परिकता ऐसा शब्द नहीं है ? जैसा व्यवहार तुम स्वयं अपने साथ किया जाना पसंद नहीं करोगे, वैसा ही किसी दूसरे के प्रति न करो।" उसने अन्यत्र कहा है:—

"मनुष्य के नैतिक जीवन में चार बातें हैं, जिनमें से एक का भी पालन मैं अपने जीवन में नहीं कर पाया। अपने पिता की ऐसी सेवा, जैसी मैं अपने पुत्र से अपने लिए चाहता हूं, मैं नहीं कर सका। अपने राजा की ऐसी सेवा, जैसी मैं अपने मंत्री से अपने लिए चाहता, मैं नहीं कर सका; अपने बड़े भाई के प्रति ऐसा व्यवहार करना, जैसा मैं अपने छोटे भाई से अपने प्रति चाहता हूं, मैं नहीं कर सका; अपने मित्रों के प्रति ऐसा व्यवहार करने में प्रथम रहना, जैसे व्यवहार की मैं अपने प्रति उनसे अपेक्षा रखता हूं, यह भी मैं नहीं कर पाया।"

"सर्वव्यापी अनिवार्य पांच कर्तव्य हैं, और जिन नैतिक गुणों द्वारा वे संपादित किए जाते हैं, उनकी संख्या तीन है। कर्तव्य पांच प्रकार के हैं— राजा और प्रजा के मध्य, पिता और पुत्र के मध्य, पति और पत्नी के मध्य, बड़े और छोटे भाई के मध्य और मित्रों के मध्य। सर्वव्यापी अनिवार्य यह पांच कर्तव्य हैं। और विवेक, सदाचरण तथा साहस मनुष्य के तीन सर्वत्र मान्य नैतिक गुण हैं।"

यही कनफ्यूशस का तथा-कथित प्रत्यक्षवाद है। उसने ईश्वर के विचार का परित्याग कभी नहीं किया। यहाँ हमें एक ऐसे नीतिविधान की रूपरेखा मिलती है, जो चीन में छठी शताब्दी ई० पू० से प्रचलित रहा है और इतनी पीढ़ियों के बाद रूढ़िग्रस्त हो गया है। चीन के प्रसिद्ध विद्वान् कु हुंग-मिंग ने 'चीनी जाति की प्रवृत्ति' नामक अपनी पुस्तक में इसे "अच्छी नागरिकता" का धर्म कहा है।

यहाँ यह स्मरण दिला देना मनोरंजक होगा कि बौद्ध-साहित्य के शील और विनय शब्द कनफ्यूशस की 'मर्यादा' के ठीक समानार्थक हैं और दीर्घनिकाय-सूत्र में वर्णित अष्टांगिक मार्ग के कुछ नियम कनफ्यूशस के नीतिशास्त्र के भी अंग हैं। इसका विस्तृत विवरण हमें मंगल-सूत्र, धर्मपद और सिगलवाद (?) से मिल सकता है। उनमें माता-पिता और संतान, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, मित्र-मित्र, स्वामी-सेवक, गृहस्थ-धर्म संस्थान आदि के मध्य कर्त्तव्यों की विवेचना की गई है। कनफ्यूशस के नीतिविधान ने सामाजिक गुणों का विकास करके चीन में विनय-संप्रदाय की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

चीन के अतीव पुरातन काल, फ़ु ही के समय (२७५७ ई० पू०) से लेकर कनफ्यूशस तक उसकी दार्शनिक विचार-धारा में जगत् के सतत परिवर्तनशील और धाराप्रवाहवत् होने का विचार विद्यमान रहा है। 'कविता की पुस्तक' का एक पद है :—

"ऊँचे तट बन जाते द्रोणी,
गह्वर हो जाते शैल शृंग"

इन पंक्तियों के अनुसार पर्वतों की ऊंचाई, नदियों की गहराई, चर्मचक्षुओं को परिवर्तित होती नहीं लगतीं, किन्तु वस्तुतः वे सतत परिवर्तित होती रहती हैं। इसी भाव का समर्थन तांग-कालीन विख्यात बौद्ध फ़ा-युएन ने अपनी प्रसिद्ध कविता में किया है :—

"आकाश दाहिनी ओर देखता है
और पृथ्वी बाईं ओर
अपगामी अतीत से लेकर आगामी क्षण तक
उन्होंने इस तरह कितनी बार देखा है?
सूरज उड़ता रहता है,
चांद भागता रहता है,
और जैसे ही उड़ते-उड़ते वे समुद्र के ऊपर पहुंचते हैं,
नीले पहाड़ों के पीछे डूब जाते हैं।
यांग त्ज़ी और पीत नदी की बड़ी बड़ी लहरें,
हुआई और चि की अनन्त उर्मियां,
सागर में समाती रहती हैं, रात दिन।"

इस कविता में प्रकृति और सृष्टि के व्यापारों का सुंदर चित्रण हुआ है।

सूर्य और चंद्र उदय-अस्त होते रहते है, बादल तैरते रहते हैं, वर्षा होती रहती है, नदियां बहती रहती हैं, फूल खिलते रहते हैं, यह सब तथा शेष सारी प्रकृति परिवर्तन और चक्रमण की चिरंतन धारा में बहती रहती हैं। स्टष्टि के अनंत व्यापार अपार आकाश में दूर-दूर तक विकीर्ण और वितग्ति हैं और अनंत कालक्रम में एक-दूसरे का स्थान लेते रहते है। काल के इस निरवधि विस्तार में समुद्र सूखकर खेत और फिर समुद्र बन जाता है। जातियाँ उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं। और काल का कोई भी लघुखंड असंख्य पलों में बांटा जा सकता है। स्वयं मेरी सत्ता विगत क्षण में वही नहीं थी, जो आगामी क्षण में होगी। प्रसिद्ध सुंगकालीन बुद्धिवादी शाओ कांग-चिएह् ने ठीक ही कहा है :—

"अतीत में जिसे 'मैं' कहा जाता था
वही आज का 'वह' है,
कौन जानता है कि आज का 'मैं'
आगे कौन होगा ?"

एक निमिष में मेरी आँखों में न जाने कितने कोषाणुओं का जन्म-मरण हुआ होगा। बौद्धधर्म के अनुसार समस्त वस्तुएं प्रत्येक क्षण में चार अवस्थाओं को प्राप्त होती हैं—जन्म, विकास, क्षय, विनाश। (क्षण = १ मिनट का ४५०० वां अंश, या एक विचार का ९०वां अंश)। काल की एक दीर्घतर अवधि में किसी वस्तु की आभासी सत्ता इन चार अवस्थाओं के परस्पर संबंध और अनुक्रमण की तीव्र गति जन्य होती है ; अतः हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि गोचर जगत् में प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती रहती है, किन्तु इस अनित्य जगत् के परे एक नित्य प्राक्तन सत्ता है, जिससे समस्त अनित्य और गोचर की उत्पत्ति हुई है। कनफ्यूशस ने ईश्वर और इष्टदेव का प्रत्याख्यान कभी नहीं किया ; किन्तु स्वर्ग के विषय में वह कहा करता था—

"वांग-सुन चिआ ने पूछा—यह कहने का क्या अर्थ है कि 'कमरे के देवता के देवता को प्रसन्न करने की अपेक्षा चूल्हे के देवता को प्रसन्न करना कहीं अधिक उत्तम है ?' गुरु ने उत्तर दिया—'ऐसा नहीं है। जो स्वर्ग के प्रति पाप करता है, उसके पास प्रार्थना करने के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।' मैं स्वर्ग की कोई शिकायत नहीं करता, न मनुष्यों को दोष देता हूं, क्योंकि मेरी विद्या भले ही निम्न स्तर की हो, मेरा मन ऊँचा उड़ता रहता है। और जो मुझे जानता है, क्या वह स्वर्ग नहीं है ?"

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि स्वर्ग से कनफ्यूशस का आशय स्वर्ग का शासन करने वाली संकल्प-युक्त सत्ता है। इस मत से मेनकिअस भी सहमत है, क्योंकि उसने भी कहा है—"याओ ने स्वर्ग को शुन भेंट किया।" कभी-कभी प्रतीत होता है कि वह एक नीतिमय स्वर्ग में विश्वास करता है। मेनकिअस के अनुसार सभी लोगों में चार आदि 'गुण विद्यमान हैं—मानव-हृदयता, सदाचार, मर्यादा और प्रज्ञा ; अतः मानव-प्रकृति शुभ है। मनुष्य में इन चार आदि गुणों के होने तथा फलतः उसकी प्रकृति शुभ होने का कारण यह है कि हमारी "प्रकृति को हमें स्वर्ग ने प्रदान किया है।" यह मानव-प्रकृति के शुभत्व की तात्त्विक व्याख्या है। मेनकिअस का कथन है—

"अपने मन से सम्यक् कार्य लेने वाला ही अपनी प्रकृति जानता है। अपनी प्रकृति को जानकर वह स्वर्ग को जान लेता है। मन को सुरक्षित रखना और अपनी प्रकृति को पुष्ट करना ही स्वर्ग की सेवा का द्वार है। चाहे अकाल मृत्यु से मरना हो, चाहे दीर्घकाल तक जीना हो, मन द्वन्द्वरहित होना चाहिए ; अपने चरित्र को परिष्कृत करके जो भी घटित होने वाला हो, उसकी प्रतीक्षा करना—ऐसा करना (स्वर्ग की) इच्छा के अनुरूप चलना है।"

'मन मनुष्य का उत्कृष्ट अंश है। जो उसका सम्यक् उपयोग करता है, वही प्रकृति को जान पाता है।' यही वह है 'जो स्वर्ग ने हमें प्रदान किया है'। इसलिए अपने मन, बुद्धि और स्वरूप के सदुपयोग द्वारा हम स्वर्ग को जान सकते हैं। मेनकिअस ने फिर कहा है—

"उत्तम व्यक्ति जहां-जहां जाता है, रूपान्तर की प्रक्रिया उसका अनुसरण करती है। जहां भी वह निवास करता है, वहां वह एक आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत सिद्ध होता है। और यह शक्ति स्वर्ग और पृथ्वी, ऊपर और नीचे सर्वत्र प्रवाहित होती रहती है।"

"हमारे अन्दर सभी वस्तुएं पूर्ण हैं। आत्म-निरीक्षण करने पर अपने में सच्चाई पाने से बढ़कर कोई सुख नहीं है। यदि कोई मानवीय सहृदयता को प्राप्त करने के लिए परहित में जुट जाए, तो उस सहृदयता को ही वह अपने समीपतम पाएगा।"

"हमारे भीतर सभी वस्तुएं पूर्ण हैं" जैसे वाक्यांश और "स्वर्ग तथा पृथ्वी, ऊपर तथा नीचे प्रवाहित होने वाली" शक्ति के निर्देश निश्चित रूप से ज्ञान की अवस्था का संकेत करते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति समष्टि के साथ एकीकृत हो जाता है, और आत्मा-अनात्मा, बाह्य-आंतर आदि विभेद विलीन हो जाते

हैं। समष्टि व्यष्टि की आत्मा से आंतरिक संबंध रखती है। व्यष्टि की आत्मा आरंभ में समष्टि की आत्मा से अभिन्न थी, किंतु अवांतर बंधनों और विभाजनों के कारण वे दोनों वियुक्त हो गई हैं। बौद्धों की अविद्या और सुंग बुद्धिवादियों की 'स्वार्थी इच्छा' इस अवांतर बंधनों की समरूप हैं। अपने को इन बंधनों से मुक्त कर लेने पर मनुष्य समष्टि के साथ फिर अभिन्न हो सकता है। इस अभिन्नता की स्थिति को बौद्धों ने तथागत का नाम दिया है और सुंग-बुद्धिवादियों ने उसे 'स्वार्थी इच्छाओं से मुक्त, स्वर्ग के धर्म के स्वच्छन्द प्रवाह से युक्त' माना है। तथागत अवस्था अनिर्वचनीय है, बुद्धि के प्रकाश के परे है। इसी सत्य को कनफ्यूशस ने भी दूसरे शब्दों में व्यक्त किया है—'स्वर्ग की क्या भाषा है?' कनफ्यूशसवाद, ताओवाद और बौद्धधर्म ने ज्ञान की अवस्था को परमोच्च और रहस्यानुभूति को साधना का चरम लक्ष्य माना है। उनके द्वारा निर्दिष्ट साधनों में भेद अवश्य है। कनफ्यूशसवादी प्रेम के द्वारा स्वार्थयुक्त इच्छाओं से मुक्ति पाने में विश्वास करते हैं। बौद्धमतानुयायी शास्त्रों के मनन, कुटी में प्रवेश करके किसी विषय पर मन को एकाग्र करने, विनयानुशासन का पालन करने, गुह्य-संप्रदायों के मंत्र जपने और अमिताभ का नाम लेते रहने को बुद्धत्व प्राप्ति के लिए साधन मानते हैं। अहंकार-शून्य और स्वार्थ-रहित होकर समष्टि के साथ अपनी अभिन्नता का साक्षात् करके मनुष्य बुद्धत्व प्राप्त कर सकता है। चीन और भारत की इसी उभयनिष्ठ आधारभूमि में बौद्धधर्म चीन में फैल सका। तांग और सुंग-वंशों के महान युगों में भी कनफ्यूशसमत और ताओवाद के विद्वान् ध्यान-संप्रदाय के सिद्धांतों के अवगाहन में दत्तचित्त रहते थे। ध्यान-सिद्धांतों में दक्ष होकर वे अपने-अपने संप्रदायों की ओर फिर लौटे और उन्होंने एक ओर 'शरीर और मन के समानांतर संप्रदाय' तथा दूसरी ओर सुंग बुद्धि-वाद की स्थापना की। इस प्रकार ध्यान संप्रदाय, जो समस्त चीनी बौद्ध संप्रदायों में सबसे अधिक मौलिक है, तांग-काल से चीनी विचार-धारा का अविभाज्य अंग बन गया।

एक अंग्रेजी कवि ने कहा था—'**पूर्व पूर्व है, और पश्चिम पश्चिम, और दोनों कभी भी नहीं मिलेंगे।**' किंतु पूर्व का चीन और पश्चिम का भारत आध्यात्मिक स्तर पर अभिन्न हैं, जैसे हिमालय ने उन्हें एक करने के लिए ही उनको अलग किया हो।

परिशिष्ट १

हुआन-त्सांग के जीवन का रेखाचित्र

(क) आरम्भिक जीवन

६१८ ई० में जब सम्राट् ताई-त्सुंग उन युद्धों में व्यस्त था, जिनके फलस्वरूप उसको साम्राज्य की प्राप्ति हुई, उत्तरी चीन को जीर्ण-शीर्ण करने वाले गृहयुद्ध से अपनी जान बचाकर एक युवा भिक्षु स्ज़ीच्वान पहुंचा। एक पर्वत द्रोणी में स्थित इस सुदूर प्रांत में, युद्ध की विभीषिका के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने के लिए उसे अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण आश्रय मिला।

इस शरणार्थी का जन्म होनान प्रांत की वर्तमान राजधानी में हुआ था, उसके कुटुंब का गोत्रनाम चेन और स्वयं उसका नाम यी था। उसका धर्मनाम हुआन-त्सांग, जिससे वह संसार में प्रसिद्ध है, सम्राट् ताई-त्सुंग के नाम के साथ देश के अन्यतम नामों की श्रेणी में स्थान रखता है। यात्री और सम्राट् यश में सहभागी हैं।

वह उत्तर चीन में होनान प्रांत के एक चीनी विद्वान् चेन-हुई का चौथा पुत्र था। उसने अपनी बाल्यावस्था में ही प्रखर बुद्धि और आध्यात्मिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। उसकी धार्मिक शिक्षा की देख-रेख करने के लिए, उसका दूसरा बड़ा भाई उसको अपने मठ को ले गया, जो पूर्वी राजधानी लो-यांग में स्थित था। बालक ने वहां अपनी मेधा और आध्यात्मिक रुचि का इतना अच्छा प्रमाण दिया कि तेरह वर्ष की अवस्था में ही वह नव-शिष्य बना लिया गया। (दो शताब्दी पूर्व फ़ा-हिएन केवल तीन वर्ष की आयु में ही नव-शिष्य स्वीकार कर लिया गया था)।

हुआन-त्सांग के जीवन की रूप-रेखा अब निश्चित हो गई थी। उसने भारतीय दर्शन का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया। उस समय प्रत्यक्षवादी हीनयान से लेकर रहस्यवादी महायान के अंतर्गत अनेक और विविध बौद्ध संप्रदाय थे। हुआन-त्सांग ने महायान का अनुसरण किया। निर्वाण-सूत्र के रहस्यवादी शून्यवाद और महायान-संपरिग्रह-शास्त्र के निरपेक्ष विज्ञानवाद ने उसको इतने उत्साह से भर दिया कि वह खाना और सोना ही भूल गया। किंतु, लो-यांग का जीवन योगा-

भ्यास के लिए उपयुक्त नहीं था ; इसलिए हुआन-त्सांग और उसके बड़े भाई ने सूज़ीच्वान पर्वत में शरण ली। वह हुंग हुई मठ में विविध बौद्ध-दर्शनों का अध्ययन करते हुए दो-तीन वर्ष रहा। इस समय से उसके दार्शनिक विचार निश्चित हो गये, क्योंकि यद्यपि उसने प्रत्यक्षवादी और वस्तुसत्यवादी संप्रदायों के अभिधर्म-कोष-शास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था, तथापि उसको महायान संपरिग्रह के विज्ञानवाद ने ही सब से अधिक आकृष्ट किया।

६२२ ई० में बीस वर्ष का होने पर हुआन-त्सांग ने, जिसको अब हम 'धर्माचार्य' के नाम से निर्दिष्ट करेंगे, (सूज़ीच्वान प्रांत की राजधानी) चेन-तु में मठीय अनुशासन को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया। गृहयुद्ध अब अपनी समाप्ति पर था और उसमें तांग-वंश विजयी हुआ था। सूज़ीच्वान से हुआन-त्सांग नए वंश की राजधानी चांग-आन (शांसी प्रांत के वर्तमान सिआन) की ओर गया। अपने मन में उठने वाली शंकाओं के समाधान के निमित्त ज्ञानी पुरुषों से मिलने के लिए पश्चिमी देशों की यात्रा करने का निश्चय उसने किया। इस निश्चय पर पहुंचकर, उसने कुछ अन्य भिक्षुओं के साथ चीन से बाहर जाने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए सम्राट् के पास एक आवेदन-पत्र भेजा। किंतु सम्राट् ने आज्ञा नहीं दी। इस अस्वीकृति ने उसकी महदाकांक्षा पर तुषार-पात कर दिया ; किंतु वैधानिक राज्यशासन की अवज्ञा की चिंता किए बिना, धर्म की पुनः प्रतिष्ठा, और जो धर्म के अनुयायी नहीं थे, उनको धर्म में लाने के उद्देश्य से, २४ वर्ष की आयु तथा यौवन के मध्यान्ह में, उसने संतों के पदचिन्हों पर चलने का ध्रुव संकल्प किया।

रात्रि में एक स्वप्न ने उसके संकल्प को और भी दृढ़ कर दिया। सम्राट् ताई-त्सुंग के चिन कुआन कालीन चौथे वर्ष (६३० ई०) में उसने एक बार स्वप्न में सागर के मध्य सुमेरु पर्वत को देखा। उसके शिखर पर पहुंचने की इच्छा से प्रेरित होकर वह समुद्र के तल में कूद पड़ा। उसी समय एक अलौकिक कमल उसके पैरों के नीचे प्रकट हुआ, जिसने उसको उठाकर पर्वत के किनारे पहुंचा दिया ; लेकिन पर्वत इतना दुर्गम था कि वह उस पर चढ़ नहीं सका। किंतु, इतने ही में एक रहस्यपूर्ण वात्याचक्र ने उसे उड़ाकर चोटी पर पहुंचा दिया। वहाँ उसने अपने को एक विशाल क्षितिज के मध्य पाया, जहाँ दृष्टि को रोकने के लिए कोई व्यवधान किसी ओर नहीं था। यह असीम क्षितिज उन असंख्य देशों का प्रतीक था, जिन पर उसके धर्म की विजय होने वाली थी। और आनंदातिरेक में उसकी आँख खुल गई।

इसके कुछ दिन बाद उसने पश्चिम यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

(ख) विस्तीर्ण पश्चिम की दुस्साहसिक यात्रा

तीर्थाटन के लिए प्रस्थान करते समय यात्रिक की आयु २६ वर्ष की थी। सभी आपदाएं झेलकर अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध होकर वह गोबी मरुस्थल और कोको-नोर के बीहड़ पठार के, मध्य घासों के देश को शंकु-वत् विभक्त करने वाले, चीन के पश्चिमांत प्रांत (आधुनिक कान्सु) की ऊंची उपत्यकाओं और गिरिकंदरों में पहुंचा। कान्सु के बाद चीन की सीमा समाप्त हो गई और नमक के पाषाणी मरुस्थल गोबी से, जिसे चीनवासी बाल की नदी कहते हैं, मध्य एशिया अथवा बीहड़ पश्चिम का आरंभ हुआ। देश भीषण रूप से अतिथिविमुख था। वहाँ न तो एक चिड़िया दिखाई पड़ती थी, न कोई चौपाया जानवर ; न वहाँ जल था, न हरियाली। दो दिन की यात्रा के उपरांत मरुभूमि को पार कर के हुआन-त्सांग हामी पहुंचा। तुर्फ़ान राज्य के राजा ने तीर्थयात्रिक को अपने राज्य में आमंत्रित करने के लिए अपने दस अफ़सरों को श्रेष्ठ घोड़ों पर भेजा। उसने राजा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और तारान्ची, पि-चांग आदि को छः दिन में पार कर के तुर्फ़ान पहुंचा, जहाँ के लोग पहले से ही बौद्धधर्मावलंबी थे। वे अनेक भारतीय धर्मग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत से तोखारिश भाषा में कर चुके थे। लेकिन उनकी लौकिक सभ्यता बहुत कुछ चीन और ईरान की ऋणी थी। यहाँ उसने दो महीने व्यतीत किये और मठवासी भिक्षुओं से धार्मिक विषयों पर विचार-विनिमय करता रहा।

तुर्फ़ान से चलकर वह येन-चि नगर पहुंचा और वहाँ केवल एक रात बिताई। अगले दिन उसने कु-चा की ओर प्रस्थान किया, जिसे चीनवासी कियू-त्से कहते हैं और जो उस समय मध्य एशिया का सबसे महत्त्वपूर्ण नगर था।

हुआन-त्सांग के आगमन के समय भी कु-चा में तोखारिश-वंश का एक राजा राज्य कर रहा था। राजा का नाम चीनी भाषा में सु फ़ा-तिएन और संस्कृत में सुवर्णदेव था। उसने यात्रिक का बड़ा सत्कार किया।

कु-चा में प्रचलित बौद्धधर्म हीनयानीय था। तदुपरांत मुज़ार्त नदी पार कर के वह तिएन शान पर्वत की ओर गया। तिएन शान के उत्तरी ढाल से उतरता हुआ वह उष्ण-झील की ओर मुड़ा और उसके दक्षिणी तट के किनारे अपनी यात्रा जारी रक्खी। सुइ-येह के निकट वह पश्चिमी तुर्कों के प्रधान खान से मिला, और उसी वर्ष (६३० ई०) पश्चिम की ओर आगे बढ़ा। सिकन्दर

पर्वत के उत्तर के मैदान को पार करके, तलस नदी पार की और फिर दक्षिण-पश्चिम जाकर वह चाश पहुंचा। वहाँ से समरकंद जाने के लिए उसको लाल रेगिस्तान के, जिसे चीनवाले सो मा कान कहते हैं, पूर्वी भाग को पार करना पड़ा। समरकंद के बाद वह सीधे दक्षिण गया और शब्र-ए-स्वाज़ के उपरांत पामीर पर्वतमाला के असंलग्न अंश कोतिन कोह् पर्वत पहुंचा। हुआन-त्सांग के जीवन-चरित के अनुसार, "इन पर्वतों में सड़कें दुर्गम और खतरनाक हैं, इन पर चरण रखते ही यात्री को न कहीं पानी दिखाई पड़ता है, न हरियाली। इन पहाड़ों में ३०० ली चलने के बाद लौह् दर्रा आता है," जो उस समय पश्चिमी तुर्कों के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा था और इस प्रकार मध्य एशिया तथा भारत के बीच सारे यातायात पर नियंत्रण करता था।

लौह् दर्रे के दक्षिण ऑक्सस नदी को पार करके हुआन-त्सांग ने बैक्ट्रिआ में प्रवेश किया, जो (आधुनिक अफगानिस्तान का उत्तरी भाग है) पहले ईरान का एक ज़िला था और बाद को एक ग्रीक देश हो गया था। बैक्ट्रिआ के बाद उसने हिंदुकुश पर्वत को, जिसको उसने "हिम पर्वत" का नाम दिया, पार किया। उसकी यात्रा का यह अंश संपूर्ण यात्रा के सर्वाधिक कष्टपूर्ण अंशों में था। "यहाँ मार्ग रेगिस्तानी और हिमानी देशों से भी दूना कठिन है। शिलीभूत मेघों और हिम के वात्या-चक्रों के कारण एक क्षण भी स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता। अगर संयोगवश कोई विशेष सुगम स्थल पर पहुंच भी जाए, तो उसका विस्तार कुछ पग समतल धरती से अधिक नहीं होता।" इसी देश के विषय में पुरातन काल के सुंग-युन ने लिखा था — "पहाड़ों की इतनी ऊंची बर्फ जमी है, हज़ारों ली तक हिम का तूफ़ान चला करता है।" अंत में कारकोत्तल और दंदानेशिकन दर्रों को पार करके हुआन-त्सांग बामियान पहुंचा, जहाँ दस बौद्ध मंदिर थे, जिनमें कई हज़ार धर्मार्थी तथा भिक्षु रहते थे।

बामियान से चलकर उसने शिबर दर्रे को पार किया, जो ९००० फ़ीट की ऊंचाई पर स्थित और काबुल नदी की उपसहायक घोरलंद नदी की ऊपरी उपत्यका का प्रवेश-द्वार है। तदुपरांत काबुल की अन्य सहायक नदियों की उपत्यकाओं में होता हुआ, लंपक और नगरहार को पार कर गांधार पहुंचा।

गांधार पूर्व के इतिहास में प्रसिद्धतम स्थानों में से एक है। वह ग्रीक-बैक्ट्रिअन शक्ति का एक केन्द्रस्थल बन गया था। हुआन-त्सांग की यात्रा के केवल दो सौ वर्ष पूर्व गांधार में ही महायान के दो प्रमुख दार्शनिकों — असंग और वसुबंधु — का आविर्भाव हुआ था, जो दोनों पेशावर के निवासी थे। इस तथ्य

की स्मृति हुआन-त्सांग को बहुत प्रिय थी, क्योंकि जिस रहस्यवादी विज्ञानवाद का वह भक्त था, उसके प्रमुख प्रवर्तक यही दो आचार्य थे।

दुर्भाग्यवश जिस समय हुआन-त्सांग पेशावर पहुंचा, गांधार पर हूणों के आक्रमण की एक शताब्दी बीत चुकी थी, जिसमें गांधार की सारी भव्य सभ्यता नष्ट हो गई थी। "राजवंश का सफ़ाया हो चुका है, और राजभवनों पर कपिसा राज्यका अधिकार है। ग्राम और नगर जनशून्य तथा परित्यक्त से लगते हैं, तथा देश में बहुत थोड़े निवासी दिखाई पड़ते हैं।...अधिकांश स्तूप भी खंडहर हो रहें हैं," ऐसा हुआन-त्सांग ने दुखी होकर लिखा है।

पेशावर से चलकर हुआन-त्सांग ने काबुल नदी पार की और सबसे पहले पंजाब की महानगरी तक्षशिला को देखने गया। यह प्राचीन राजधानी सिकंदर के समय में यूनानियों को ज्ञात थी और आगे चलकर भारत के सम्राट् अशोक ने उसे अपने साम्राज्य के पश्चिमोत्तर भाग की राजधानी बनाकर और भी अलंकृत किया था। अशोक की मृत्यु के उपरांत शीघ्र ही तक्षशिला पर यूनानियों का अधिकार फिर हो गया और वह यूक्राटाइडीज़, हीलिओक्लीज़, और एन्टिआल-किडास के वंश के अधीन एक भारती-यूनानी राज्य की राजधानी हो गई। यूनानी-बौद्ध कला की चूर्ण-लेप निर्मित जो लघुमूर्तियां सर जान मार्शल को यहां से सैकड़ों की संख्या में प्राप्त हुई हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि इस नगर के मूर्तिकारों ने गांधार-कला की गौरवशाली परंपरा को हूणों के आक्रमण के समय (५ वीं शती ई०) तक जारी रक्खा था।

राजनीतिक दृष्टि से सातवीं शताब्दी में तक्षशिला काश्मीर राज्य के अन्तर्गत था, जो सदा से धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र रहा है। नवीं शताब्दी में वह शैव सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान था। हुआन-त्सांग के समय में वहां बौद्धधर्म ही प्रबल था।

जब हुआन-त्सांग काश्मीर की राजधानी प्रवरपुर (वर्तमान श्रीनगर) पहुंचा, तो वहाँ का राजा उससे मिलने स्वयं आया। अगले दिन धर्म के गूढ़ प्रश्नों पर प्रवचन देने के लिए उसने हुआन-त्सांग को आमंत्रित किया। "जब उसने यह जाना कि विद्यानुराग ही उस (हुआन-त्सांग) को सुदूर देश से खींच लाया है और पढ़ने के लिए उसके पास ग्रन्थ नहीं हैं, तो उसने उसकी सेवा में, बौद्ध-ग्रन्थों तथा अन्य उत्तरकालीन दार्शनिक ग्रन्थों को प्रस्तुत करने के लिए बीस लिपिक नियुक्त कर दिए।"

हुआन-त्सांग वहां मई, ६३१ ई० से अप्रैल ६३३ तक दो वर्ष रहा,

जिनका उपयोग उसने असली यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व अपने दार्शनिक ज्ञान को पूर्ण करने और योगाभ्यास में किया। अन्त में बहुसख्यक धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों के संग्रह से सुसज्जित होकर उसने काश्मीर से उतर कर भगवान् बुद्ध के स्मारकों का दर्शन करने गंगा की पवित्र भूमि में पदार्पण किया।

(ग) पवित्र भूमि

काश्मीर से उतरकर हुआन-त्सांग जिन स्थानों में रुका, उनमें पंजाब का नगर साकल मुख्य है। वहाँ से वह व्यास के पश्चिमी तट पर स्थित चीन-भुक्ति को गया। ६३३–६३४ ई० के मध्य १४ महीने बिताकर वह पंजाब के अंतिम नगर जालंधर को गया, जो एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध-केन्द्र था। उस जिले में ५० से अधिक बौद्ध-मन्दिर थे।

दक्षिण-पश्चिम की ओर चलकर यात्रिक यमुना की उपत्यका में पहुंचा और तत्काल ही वहाँ के प्रधान नगर मथुरा गया, जिसको हिन्दू भगवान् श्रीकृष्ण का स्थान मानते हैं। मथुरा के बाद वह स्थानेश्वर (वर्तमान थानेसर) गया। प्रागैतिहासिक काल में गंगा पर आधिपत्य के लिए, महाभारत महाकाव्य में वर्णित, कौरवों और पांडवों में युद्ध यहीं हुआ था। (आधुनिक बिजनौर जिले में स्थित) मतिपुर होकर वह कान्यकुब्ज (वर्तमान कन्नौज) पहुंचा। नगर की सुन्दरता देखकर वह चकित रह गया। "उसका प्राचीर ऊंचा और परिखा ठोस है। चारों ओर स्तंभ और मंडप दिखाई पड़ते हैं। कई स्थानों पर पुष्पित उद्यान और निर्मल जल से पूर्ण सरोवर हैं। इस देश में अन्य देशों के दुर्लभ पण्य प्रचुर मात्रा में सुलभ हैं। नगर-निवासी सुख और समृद्धिपूर्वक रह रहे हैं।" सर्वोपरि, उस समय कन्नौज सम्राट् हर्षवर्धन का निवास-स्थल और इस कारण भारतवर्ष की राजनीतिक राजधानी था। हर्ष एक सिंहासनारूढ़ संत था। उसका लक्ष्य बौद्धधर्म के अनुशासन, शील, करुणा और उदारता को प्रतिष्ठित करना था।

हुआंग-त्सांग का कथन है—"उसका शासन न्यायपूर्ण और दयालु था। सत्कर्मों में संलग्न होने पर उसे खाने-पीने की सुध नहीं रहती थी।"

"ग्रामों और नगरों में, चौराहों पर और नगरों के चौक में, उसने जनता के लिए सेवागृहों का निर्माण करवाया था, जिनमें यात्रियों, निर्धनों और दीन जनों के लिए भोजन, जल और औषधियों की व्यवस्था थी।"

हुआन-त्सांग के कन्नौज पहुंचने के समय हर्ष नगर से बाहर था, इसलिए उसकी भेंट सम्राट् से नहीं हो सकी। फिर भी वह वहां के भद्र-विहार-मठ में, त्रिपिटकों तथा उनकी टीकाओं को फिर से पढ़ने के लिए, ६३६ ई० में तीन महीने रहा।

अपनी यात्रा फिर आरम्भ करके गंगा पार कर उसने प्राचीन नगरी अयोध्या के देश अवध में प्रवेश किया, जहां असंग और वसुबन्धु की कीर्ति अभी तक व्याप्त थी। अवध से वह गंगा के किनारे-किनारे फिर चला। बीस सहयात्रियों के साथ नौका द्वारा वह प्रयाग (आधुनिक उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद) पहुँचा। प्रयाग से चलकर जंगली जानवरों और हाथियों से भरे एक वन-खंड को पार कर वह एक अन्य गुप्तकालीन राजधानी, यमुना-तट स्थित कौशाम्बी नगर (वर्तमान कोसम) को गया। वहां उसने बुद्ध के आगमन के स्मारकों, अशोक के स्तूप, दुमंजले मंडप, जिसमें वसुबन्धु ने अपना एक ग्रन्थ लिखा था ; आम्रवन, जहां असंग कुछ दिन रहा था, आदि के दर्शन किए।

कौशाम्बी के बाद हुआन-त्सांग श्रावस्ती गया (राप्ती के दाहिने तट पर वर्तमान सहेत-महेत)। बुद्ध के समय वह प्राचीन राज्य, कोसल (वर्तमान उत्तर प्रदेश के अवध) की राजधानी थी। श्रावस्ती में ही जेतवन था। इसे बुद्ध के एक समकालीन धनाढ्य श्रेष्ठी अनाथपिंडक ने समर्पित किया था ; किन्तु इतनी शताब्दियाँ बीतने के बाद भी उसके निर्मल सरोवर, श्यामल हरीतिमा और असंख्य फूलों को देखकर हुआन-त्सांग ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। अशोक ने इस स्थान पर एक लेखयुक्त प्रस्तर-स्तम्भ स्थापित करवाया था, जिस पर वृषभ और धर्मचक्र बने थे ; किन्तु हुआन-त्सांग के समय में एक जर्जरीभूत मठ के निकट केवल यही स्तम्भ अवशिष्ट थे।

तदुपरान्त उत्तरपूर्व की ओर चलकर वह अन्ततः बुद्ध के जन्म-स्थान कपिलवस्तु पहुँच गया। यह तो विदित ही है कि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने कितनी कठिनाई से इस प्रसिद्ध स्थान की एकात्मकता नेपाल की तराई में स्थित तिलौराकोट से स्थापित की है। इस क्षेत्र में सब से पवित्र स्थल लुम्बिनी उद्यान था। यह कपिलवस्तु के उत्तरपूर्व में स्थित उसका उपनगर था और यहीं भगवान् तथागत का जन्म हुआ। यहीं पर रानी मायावती ने, बौद्ध-मूर्ति-कला द्वारा कल्पित खड़ी हुई मुद्रा में, अशोक वृक्ष की डाल पकड़े हुए, भगवान को जन्म दिया था।

बुद्ध के निर्वाण से सम्बन्धित स्थान भी उसी क्षेत्र में स्थित हैं, जहाँ उन्होंने

अपना यौवन-काल बिताया था। हुआन-त्सांग कपिलवस्तु के बाद कुसीनगर गया, जहाँ बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। कुसीनगर से वह गंडक तथा घाघरा और गोमती के मध्य के विस्तीर्ण जंगलों को पार करके बनारस आया। बनारस के समीपस्थ सारनाथ में स्थापित बुद्ध की अद्‌भुत प्रतिमा की उसने अवश्य ही प्रशंसा की होगी। इस तीर्थ को श्रद्धांजलि समर्पित करके, वह बनारस से उत्तर की ओर थोड़ा चलकर गंडक के किनारे स्थित वैशाली नगर पहुंचा। यह नगर बुद्ध के प्रिय निवास-स्थानों में से था और हुआन-त्सांग के लिए दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वहाँ बुद्ध के निर्वाण के १०० वर्ष बाद दूसरी बौद्ध-संगीति हुई थी।

७ वीं शती में संसार-भर में, बोधगया के उत्तरपूर्व में स्थित, नालंदा-विश्वविद्यालय के तुल्य कोई भी विद्यापीठ नहीं था। नालंदा में हुआन-त्सांग का बन्धुवत् स्वागत हुआ। पताकाओं, छत्रों, धूप और पुष्पों सहित दो सौ भिक्षुओं और एक सहस्र उपासकों ने एक जुलूस बनाकर उसका स्वागत किया। उसने ६३७ ई० का चतुर्मास वहीं बिताया और राजगृह से लौटकर वहाँ पन्द्रह महीने फिर रहा। उसने आचार्य शीलभद्र के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त की और उन्होंने उसको विज्ञानवाद के सारे रहस्य समझा दिए।

महायानी विज्ञानवाद के संस्थापक असंग और वसुबन्धु का, जिनकी कृतियाँ डा० सिल्वाँ लेवी और प्रो० ताकाकुसु के अनुसार ५ वीं शती की हैं, उत्तराधिकारी तर्काचार्य ज्ञान हुआ; ज्ञान का शिष्य नालंदा का प्रधानाचार्य धर्मपाल (मृत्यु लगभग ५६० ई०), और धर्मपाल का शिष्य शीलभद्र था। इस प्रकार हुआन-त्सांग को बौद्ध विज्ञानवाद का संपूर्ण रिक्थ प्राप्त हुआ। उसकी महान् दार्शनिक कृति "सिद्धि" महायान मत का एक रत्न और भारतीय विचार-धारा की सात शताब्दियों का चूड़ामणि है।

राजगृह से नालंदा आने के बाद हुआन-त्सांग मगध की ऐतिहासिक राजधानी पाटलिपुत्र गया। यह नगर विख्यात था। यहीं प्रथम मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजदूतों को अंगीकार किया था और यहीं से उसके पौत्र अशोक ने समस्त भारतवर्ष पर शासन किया था। पाटलिपुत्र से हुआन-त्सांग गंगा पार करके बौद्धधर्म के हृदय बोधगया पहुंचा, जहाँ भगवान् बुद्ध ने बोधि प्राप्त की थी। वहाँ उसने बोधिवृक्ष के दर्शन किए, जिसके नीचे वह अद्‌भुत बोधि अवतीर्ण हुई थी और अन्य पवित्र स्थलों की पूजा की।

उसने ६३८ ई० का ग्रीष्मकाल, पश्चिमी बंगाल में बिताया और गंगा

पार करके सीधे पूर्वी बंगाल गया। अन्त में बंगाल की खाड़ी में उतरकर ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बन्दरगाह पहुँचा और वहां से जल-मार्ग द्वारा लंका जाने का विचार किया। इसी मार्ग से फा-हिएन भी लंका गया था; लेकिन हुआन-त्सांग ने इस समुद्र-यात्रा के खतरों का इतना लोमहर्षक वर्णन सुना कि अपने साथ संगृहीत ज्ञान की निधि की सुरक्षा के हित में उसने स्थल-मार्ग द्वारा दक्षिण भारत जाने और वहाँ से पाक जलडमरूमध्य पार करके लंका पहुंचने का निश्चय किया; अतः वह अन्तर्देश में भागलपुर तक फिर लौटा, वहाँ से वह उड़ीसा की ओर गया।

गोदावरी और उसकी सहायक नदियों से सिंचित महाकांतार को पार करके हुआन-त्सांग आंध्र पहुंचा, जो बौद्ध-संस्कृति का एक केन्द्र था। ५ वीं शती के उत्तरार्ध में विख्यात बौद्ध-पंडित ज्ञान ने तर्क और ज्ञानालोचन पर अपने ग्रन्थों का प्रणयन अमरावती मे किया था। कुछ महीनों के बाद हुआन-त्सांग पल्लव राज्य की राजधानी, महानतम महायानी दार्शनिकों में से एक, हुआन-त्सांग के गुरु शीलभद्र के गुरु धर्मपाल की स्मृति से पूत कांचीवरम् पहुंचा।

पल्लव-राज्य से निकलकर मलाकोट्टाई होता हुआ, वह महाराष्ट्र आया, जहां अद्‌भुत भित्ति-चित्रों से अलंकृत अजंता की गुफाएं स्थित हैं। महाराष्ट्र के बाद वह कुछ दिन भरोच में रुका, जहाँ से वह संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट कवि, शकुन्तला तथा अन्य अमर काव्यों के रचयिता, कालिदास की—जिनकी ख्याति उस समय भी अम्लान रही होगी, क्योंकि वह हुआन-त्सांग के केवल सौ वर्ष पूर्व, ५ वीं शती में हुआ माना जाता है—जन्मभूमि मालवा गया। पश्चिम में मालवा की सीमा गुजरात प्रायद्वीप के वल्लभि राज्य से मिलती थी। हुआन-त्सांग गुजरात भी गया और वहाँ से सिन्धु नदी के मध्य तक पहुंचा। मगध की ओर पुनः लौटने के पूर्व वह सिन्ध और मुलतान भी देख आया। दूसरी बार नालन्दा में वह फिर रहा और उसका दूसरा प्रवास भी पहले की भाँति सफल रहा। कामरूप के राजा ने दार्शनिक और धार्मिक विवादों में उसकी कुशलता की ख्याति से आकर्षित होकर, चीन लौटने के पूर्व अपने राज्य में कुछ सप्ताह व्यतीत करने के लिए हुआन-त्सांग को आमंत्रित किया। हुआन-त्सांग ने कामरूप होकर अपने देश लौटने का विचार किया, किन्तु पर्वत-श्रेणियाँ उत्तरी साल्वीन तथा पूर्वार्ध यांगत्जी की सहायक नदियों की द्रोणियों द्वारा उत्तर-दक्षिण दिशा में सीधी कटी हुई होने के कारण अतीव दुर्लंध्य थीं;

इसलिए उसने इस खतरनाक मार्ग से जाने का विचार त्याग दिया और गांगेय प्रदेश में लौट आने के लिए सम्राट् हर्ष के आमंत्रण को तत्काल स्वीकार कर लिया।

शीलादित्य हर्ष ब्रह्मपुत्र से गुजरात और विन्ध्य पर्वत तक प्रायः समग्र उत्तर भारत का शासक था। हुआन-त्सांग हर्ष के स्थान को गया। उसके पहुंचने पर हर्ष ने पृथ्वी तक नमन करके उसका स्वागत किया और श्रद्धा के साथ उसके चरणों का चुंबन किया। हुआन-त्सांग ने महायान के हीनयानी तथा हिन्दू प्रतिपक्षियों के खंडन में एक ग्रन्थ लिखा था, अतः हर्ष ने एक विराट् दार्शनिक शास्त्रार्थ का आयोजन किया, जिसमें हुआन-त्सांग के प्रमुख भाग लेने और विरोधियों को पराजित कर नास्तिकों तथा हीनयानियों की "अंधता को नष्ट" तथा हिन्दू और ब्राह्मण-सम्प्रदायों के मतावलम्बियों के "आत्यंतिक दर्प को विचूर्ण" कर देने की आशा की जाती थी।

६४३ ई० के आरम्भ में हर्ष की राजधानी कन्नौज में आयोजित इस शास्त्रार्थ तथा गंगा-यमुना के संगम, प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) में आयोजित दूसरे शास्त्रार्थ के समाप्त होने के बाद हुआन-त्सांग ने, जैसा कि वह तुर्फ़ान के राजा से प्रतिश्रुत था, मध्य एशिया के मार्ग द्वारा, चीन लौटने का निश्चय किया। तुर्फ़ान-नरेश ने तोखारिश और तुर्क देशों में उसकी यात्रा के लिए प्रबन्ध कर रक्खा था।

हुआन-त्सांग को उपहारों से लाद देने के उपरान्त हर्ष ने उसे जाने की आज्ञा दी। यमुना तट स्थित कौशाम्बी होकर वह कन्नौज के उत्तर बिलसर पहुंचा और वहाँ ६४३ ई० के वर्षा-काल के दो मास व्यतीत किए। जालंधर और तक्षशिला होते हुए अपने पुराने मार्ग से उसने पंजाब पार किया। ६४४ ई० के आरम्भ में उसने सिन्धु नदी पार की और उड्डीयान और उद्भंड होता हुआ , गांधार की छोटी-छोटी रियासतों के स्वामी कपिसा के राजा द्वारा प्रतिरक्षित नगरहार और लम्पक पहुंचा। गांधार के इन सामन्तों द्वारा हुआन-त्सांग के प्रति प्रदर्शित इस आदर-भाव का कारण केवल धार्मिक न होकर राजनीतिक भी था। इसका प्रमाण हमें तांग-मंत्रालय के कार्यों का अध्ययन करने-मात्र से मिल सकता है।

(घ) प्रत्यावर्तन

कपिसा के राजा से विदा होकर हुआन-त्सांग ने ६४६ ई० के जुलाई में,

हिन्दुकुश और पामीर होकर काशगर जाने वाले कारवाँ मार्ग पर प्रस्थान किया। उसने वहाँ की संकटपूर्ण चढ़ाइयों और हिन्दुकुश के भयानक, ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम पहाड़ों का वर्णन किया है। उसने लिखा है :—

"यह पर्वत ऊंचे, और द्रोणियां गहरी हैं, सीधी खड़ी चट्टानें और खड्ड बहुत ही खतरनाक हैं। आंधी और बर्फ की वर्षा बराबर होती रहती है। पूरी गर्मी भर बर्फ जमी रहती है, और हिमानी द्रोणियों में गिर कर सड़कों को अवरुद्ध कर देते हैं। पर्वतों के भूत-प्रेत कुपित होकर सभी प्रकार की आपदाओं की वर्षा करते हैं; यात्रियों के मार्ग में आ जाने वाले डाकू उनके प्राण ले लेते हैं।"

हिन्दुकुश के उत्तर पहुंचकर हुआन-त्सांग तोखारिस्तान और बदख्शां होते हुए अन्दरब और कुन्दुज़ की ओर गया। यह प्रान्त पश्चिमी तुर्कों के ख़ान के कुटुम्ब के एक राजकुमार के राज्य में थे। हुआन-त्सांग इस सामंत के शिविर में एक महीना रहा, जिसने पामीर (चीनी भाषा में त्सुग लिंग, प्याज़ पर्वत) पार करने के लिए उसके साथ एक प्रतिरक्षक कर दिया। उसके और पूर्व की ओर मुख्य पामीर की द्रोणी आरम्भ हुई, जो पेन्ज़ के उत्स से लेकर उसके पूर्वार्ध तक उसकी उपत्यका है।

ताश-कुर्गहार और मुस्ताघ माला के पश्चिमी ढालों में होकर वह काशगर पहुंचा, जहाँ के निवासी हीनयानी थे। काशगर से चलकर क़िज़िल-दरिया पार कर के वह यारकन्द पहुंचा, जहाँ के निवासी महायान के अनुयायी थे। फिर लगभग सितम्बर ६४४ ई० में वह खुतन पहुंचा और सात-आठ महीने वहाँ रहा। खुतन एक प्राचीन और सभ्य देश था। उसकी प्रशंसा कनफ्यूशसीय विद्वानों ने की है। हुआन-त्सांग ने लिखा है :—

"वहां के निवासियों को शिष्टाचार और न्याय का ज्ञान है। वे स्वभाव से ही शांत और श्रद्धालु हैं, साहित्य और कला के वे अनुरागी हैं, और इन विषयों में उन्होंने अच्छी प्रगति की है। यह देश अपने संगीत के लिए विख्यात है। वहां के निवासी नृत्य और गायन के प्रेमी हैं।"

तदुपरान्त यात्रिक ने कुन-लुन और अक्कर-चेक्यलतांग की उत्तरी सीमा से तकला-मकान मरुस्थल के दक्षिण तक के मध्य अर्धवृत्ताकार फैले भूभाग से होकर स्वदेश की ओर प्रगति जारी रक्खी। यह क्षेत्र पहले एक कलात्मक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। सर ऑरेल स्टाइन को खुतन के पूर्व दंदान उइलिक में प्राप्त भित्ति-चित्रों, रेशम और काष्ठ पर बने चित्रों से—जो ७ वीं और ८ वीं शती के हैं, और इस कारण हुआन-त्सांग के समकालीन हैं—यह प्रमा-

णित होता है। खुतन का दूसरा कला-केन्द्र मीरान था, जो कुछ और पूर्व में निया पर स्थित था। यहाँ विशुद्ध यूनानी-रोमन कला का प्रचलन था, जिसकी प्रशंसा हुआन-त्सांग ने की। यहाँ अनेक भित्ति-चित्र ४ थी शती के भी हैं।

हुआन-त्सांग लोउ-लान में फिर पहुँचा, जो कभी समृद्ध था और अब पुरातात्त्विक महत्त्व के अवशेषों से पूर्ण है। यात्रियों का कारवाँ किसी विशेष कठिनाई के बिना ही तुंग-हुआंग पहुंच गया, जो उस मार्ग का एक प्रमुख केन्द्र था और जहाँ बीहड़ पश्चिम यात्रा से श्रांत यात्री विश्राम लेते थे। वह एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध-केन्द्र भी था, जो श्री पील्वा द्वारा म्यूज़ गाइमे और सर ऑरेल स्टाइन द्वारा ब्रिटिश म्यूज़ियम में लाए भित्ति-चित्रों और रेशम की पताकाओं पर बने चित्रों से तथा नगर के दक्षिण-पूर्व में आठ मील की दूरी पर बने सहस्र बुद्ध-प्रतिमाओं की कलात्मक निधि, से प्रमाणित होता है।

यह स्मरण रखना उचित होगा कि तुंग-हुआंग में अनेक चीनेतर कलात्मक प्रभाव भी सक्रिय थे। वे प्रभाव गांधार, सासानिएड होकर आए यूनानी-रोमन और गुप्तकालीन भारतीय थे। शिलोत्कीर्ण मूर्तियों में इन प्रभावों और प्राचीन चीनी शैली के समन्वय का अच्छा उदाहरण मिलता है।

हुआन-त्सांग ने कुछ समय तक तुंग-हुआंग में विश्राम किया और चीन-सम्राट् को, जिसके आदेश की अवज्ञा करके वह चीन से भारत चला गया था, भेजे हुए अपने आवेदन-पत्र के मनोवांछित उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु सम्राट् ताई-त्सुंग बहुत उदारचित्त था, अतः हुआन-त्सांग की इस अवज्ञा से अप्रसन्न नहीं हुआ।

अन्त में, १६ वर्ष की तीर्थ-यात्रा के उपरान्त, सैकड़ों स्थानों को देख-कर, बीस हजार मील चलने के बाद हुआन-त्सांग, तांग-सम्राट् ताई-त्सुंग के चिनकुआंन-कालीन १७ वें वर्ष (६४५ ई०) के वसन्त में एक दिन चांग-आन पहुँच गया। उसके भक्तगण पताकाओं और झण्डों से उसका स्वागत करके उसे 'महासुख मठ' में ले गए।

कुछ दिनों बाद सम्राट् की अभ्यर्थना करने की आज्ञा हुआन-त्सांग को मिली। यह समादर समारोह तांग-वंश की पूर्वी राजधानी लो-यांग के फीनिक्स राजमहल में आयोजित हुआ था। हुआन-त्सांग के समीप आने पर सम्राट् ने उसको मानवता के कल्याण और मोक्ष के निमित्त अपने जीवन को खतरे में डालने पर साधुवाद दिया।

(च) 'महाकरुण अनुकम्पा मठ' में शांतिमय जीवन

हुआन-त्सांग ने सम्राट् से कई बार भेंट कर के उसको पश्चिमी जगत् का वर्णन सुनाया। तदुपरान्त वह अपने साथ लाए ६५७ विभिन्न ग्रन्थों के संग्रह, अनुवाद और सम्पादन में संलग्न हुआ। ग्रन्थों की तालिका निम्नलिखित है :—

१.	महायान-सूत्र	२२४ ग्रन्थ
२.	महायान-शास्त्र	१९२ "
३.	स्थविरवाद-सूत्र, शास्त्र और विनय	१४ "
४.	महासांघिक	१५ "
५.	महीशासक	२२ "
६.	सम्मितीय	१५ "
७.	काश्यपीय	१७ "
८.	धर्मगुप्त	४२ "
९.	सर्वास्तिवादी	६७ "
१०.	हेतुविद्या	३६ "
११.	शब्दविद्या	१३ "

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए हुआन-त्सांग ने 'महाकरुण अनुकंपा मठ' में बहुसंख्यक अनुवादकर्त्ताओं को एकत्र किया, जो सभी संस्कृत के ज्ञाता थे। इस मठ का निर्माण सम्राट् ताई-त्सुंग ने चुंग-आन में किया था। ६४७ ई० के अन्त तक उसने अग्रलिखित ग्रन्थों का अनुवाद पूर्ण कर लिया था—(१) बोधिसत्त्व पिटक-सूत्र, (२) बुद्धभूमि-सूत्र, (३) शतमुखी धारणी, तथा कुछ अन्य ग्रन्थ। ६४८ ई० के अन्त तक उसने सि यु की अथवा 'महा-तांग-वंश-काल में (रचित) पश्चिमी देशों के अभिलेख' सहित कुल मिला कर ५८ ग्रन्थ पूर्ण किए और उन्हें तत्काल सम्राट् के सम्मुख प्रस्तुत किया। ६५० ई० में ताई-त्सुंग की मृत्यु के बाद नए सम्राट् काओ-त्सुंग के स्नेह-भाव के बावजूद, अवशिष्ट ग्रन्थों के भाषांतर-कार्य को अपना सम्पूर्ण समय देने के उद्देश्य से हुआन-त्सांग ने अपने को 'महाकरुण अनुकंपा मठ' में पूर्ण-रूपेण अवरुद्ध कर लिया।

सम्राट् काओ-त्सुंग के लिन ती-कालीन प्रथम वर्ष (६६४ ई०) के १३ अक्टूबर को, जब हुआन-त्सांग प्रज्ञापारमिता-सूत्र का अनुवाद समाप्त कर रहा था, उसने यह अनुभव किया कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है और अन्त निकट है। तब अपने शिष्यों को बुलाकर उसने कहा—"मैं अपने जीवन

के अन्त पर पहुँच गया हूं। जब मैं प्राण त्याग दूं, तब मुझे मेरे अन्तिम निवासस्थान चांग-आन ले जाना और यह सब बहुत ही शालीनता से करना। मेरे शरीर को एक चटाई में लपेटना और किसी शांत एवं एकांत स्थान में, उपत्यका की गहराई में रख देना।"

अपनी मृत्यु के कुछ घंटे पूर्व, जैसे किसी स्वप्न से जगकर, उसने कहा— "मैं अपनी आँखों के आगे एक सद्योन्मीलित पवित्र सौन्दर्य युक्त कमल का पुष्प देख रहा हूं।" फिर उसने अपने शिष्यों को बुलाकर "हुआन-त्सांग के इस अधम और निद्य शरीर को प्रसन्नतापूर्वक विदा" देने के लिए कहा। "वह जो अपना कार्य समाप्त कर चुका है, वह और जीने का अधिकारी नहीं है। मैं तुषित स्वर्ग में जन्म लेने और मैत्रेय मे प्रविष्ट होकर प्रेम तथा करुणामय बुद्ध की सेवा करने की इच्छा करता हूं। जब इस पृथ्वी पर अन्य जन्म पाऊँ, तब प्रत्येक जन्म में अपरिमित उत्साह से बुद्ध के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन, तथा प्रज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न करूं।" शिष्यों से विदा लेकर वह पूर्ण रूप से शांति और ध्यान में मग्न हो गया। उसने इस अन्तिम प्रार्थना का उच्चार किया और उपस्थित लोगों को उसको दुहराने की आज्ञा दी "सारी भक्ति तुझ प्रज्ञाशाली को अर्पित हो। सभी मनुष्यों के सदृश मैं भी तेरे प्रेमपूर्ण मुख-मंडल का दर्शन करना चाहता हूं। मैत्रेय तथागत सारी पूजा तुझे अर्पित हो। इस जीवन के उपरान्त मैं तेरे समीप रहने वाली चमू में लौट आना चाहता हूं" इसके बाद शीघ्र ही प्राण निकल गए। उसके मुख-मंडल में एक गुलाबी प्रभा बनी रही, और उसके सभी अंगों से परमानन्द और शांति व्यक्त हो रही थी।

सम्राट् काओ-त्सुंग ने उसको 'महाकरुण अनुग्रह मठ' में असाधारण सम्मान के साथ समाधि दी। हुआन-त्सांग का प्रमुख शिष्य हुई-ली वार्त्तालाप के टिप्पणों और आलेखों के आधार पर अपने गुरु का जीवन-चरित्र तैयार कर रहा था, किन्तु मृत्यु ने उसके कार्य को भंग कर दिया। तब येन-त्सुंग ने उसके अपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लिया; तथा हुआन-त्सांग और हुइ-ली की पांडुलिपियों का क्रमबद्ध संग्रह करके, हुई-ली के पाँच खंडों की अशुद्धियों और कमियों को ठीक किया और जीवनी को बढ़ाकर दस खंडों में पूर्ण कर दिया। इस ग्रन्थ का फ्रांसीसी अनुवाद श्री जुलियाँ और अंग्रेजी अनुवाद श्री एस० बील ने किया है।

परिशिष्ट २

चीनी राजवंश

टिप्पणी—इस तालिका में अल्प महत्त्व के केवल उन्हीं ससामयिक राजवंशों का उल्लेख है, जिनके समय में त्रिपिटकों के किसी ग्रन्थ का अनुवाद हुआ था।

राजवंश	प्रारंभ	अन्त	राजधानी
हिआ	२२०५ ई० पू०	१७६६ ई० पू०	यांग-हिआन
शांग	१७६६ ई० पू०	११२२ ई० पू०	पोह्
चाउ	११२२ ई० पू०	२५६ ई० पू०	लोह यिह्
चुन चिउ-काल	७२२ ई० पू०	४८१ ई० पू०	

चाउ-वंश की राजशक्ति नष्ट होने के उपरान्त कतिपय प्रमुख सामंतों न "पा" (रक्षक-अधीश्वर, अथवा यूनानी अभिव्यंजना में "टाइरैंट", निरंकुश) की उपाधि धारण कर अन्तःराज्यव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया।

युद्धरत राज्यकाल	४०३ ई० पू०	२२१ ई० पू०	
चीनी दर्शन का सुवर्ण युग			
चिंग	२५६ ई० पू०	२०६ ई० पू०	हिएन-यांग
पश्चिमी हान	२०६ ई० पू०	२४ ई०	चांग-आन
पूर्वी हान	२५ ई०	२२० ई०	लो-यांग
त्रि-राज्य			
शुह हान	२२१ ई०	२६३ ई०	चेंग-तु
वाई	२२० ई०	२६५ ई०	लो-यांग
वू	२२० ई०	२८० ई०	किएन-येह्
पश्चिमी त्सिन	२६५ ई०	३१७ ई०	लो-यांग
पूर्व-कालीन लिआंग	३०२ ई०	३७६ ई०	कु-त्सान
पूर्वी त्सिन	३१७ ई०	४२० ई०	किएन-कांग
पूर्वकालीन चिंग	३५० ई०	३९४ ई०	चांग-आन
उत्तरकालीन चिंग	३८४ ई०	४१७ ई०	चांग-आन
पश्चिमी चिंग	३८५ ई०	४३१ ई०	यआन-च्वान

उत्तरी लिआंग	३९७ ई०	४३९ ई०
उत्तरी और दक्षिणी राजवंश		
दक्षिणी राजवंश—		
लिउ सुंग	४२० ई०	४७९ ई०
चि	४७९ ई०	५०२ ई०
लिआंग	५०२ ई०	५५७ ई०
चेन	५५७ ई०	५८९ ई०
उत्तरी राजवंश—		
उत्तरी वाई	३८६ ई०	५३४ ई०
पश्चिमी वाई	५३५ ई०	५५७ ई०
पूर्वी वाई	५३४ ई०	५५० ई०
उत्तरी चि	५५० ई०	५७७ ई०
उत्तरी चाउ	५५७ ई०	५८१ ई०
सुई	५९० ई०	६१७ ई०
तांग	६१८ ई०	९०६ ई०
पांच वंश	९०६ ई०	९५९ ई०
उत्तरी सुंग	९६० ई०	११२६ ई०
दक्षिणी सुंग	११२७ ई०	१२७५ ई०
युआन (मंगोल)	१२८० ई०	१३६७ ई०
मिंग	१३६८ ई०	१६४३ ई०
चिंग (मांचू)	१६४४ ई०	१९११ ई०
प्रजातंत्र	१९१२ ई०	वर्तमान